

रंचारम्भिजि

भारतीय नाट्य सौन्दर्य

डा. लक्ष्मीनाश याणलाल

रंगभूमि
भारतीय लाट्य-सौदर्य

रुद्राम्भिकी भारतीय नाट्य-संदर्भ

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल



नेशनल
प्रिलियरिंग
हाउस
23, विधानगंगा, नयो विल्लो-110002



क्रम

गुरारंग	1
सूषि	13
रंगभूमि : रानातन द्विल्ट	19
सोक : याम्या बिना त पश्चाति	29
हपकत्व और नाटकत्व	40
नाटक : नाट्यकृति	48
रंग रचना और करना	67
कथा अदा : विश्वसणा	76
अभिनव	90
असुरि	103
संशोधन	113

शुभारंभ

अपनी रंगभूमि की भूमिका

आजो इस भूमिका का गंवान लगते ही कितने भूले-विलगे रंगसूखों में रह, जो हुमारी नेनहा-भूमि पर बिल्ले पहुँचे हैं। उस विक्राय के चौन लड़े रक्फ़र उन्हींगा तो सतर के अंत तक एक विसर्ग याद आ रही इलाहाबाद दी, जहाँ हमने 'नाट्य बेद' से यह स्वर्ज देखा था। कि एक दिन अपना नाट्य, जिसी नाट्य, आमोंय नाट्य होइया। वहाँ विनारी याद तभी दिल्ली में आयी, लज्जित हो गया। उदाहरण भर गया। नमी, दूसरे ही सज्ज मुझे अपने किसी पुराले की याद आयी, सिरान कहा, गुना, भूली-विलगी याद से ही। पृथिव्यास होता है, अपनी स्मृति की कल्पत्रीत प्रक्रिया का जब उल्लंगत में मंथन होता है तो भावी आकांक्षाओं की गोच, किसी नभी रचना-दृष्टि का होनु चाहता है।

स्मृतियों के इनी डिवाय में पहली बार एक मंसून में 'हनुमत गारण' पढ़ा। रावण और रुद्रवर्ण के इस दृश्य और अंदाद पर रह गया। रावण कहता है—कुभकरण उठो, तिन तिकल अथवा है। बेधों, राम की पन्नी को मैं ले आया हूँ, कुभकरण प्राप्त है। उत्तर करने दिया? रामण अवश्य देता है—हह हो। किसी तरह काढ़ में ही नहीं भानो। राम के मिवा और कुछ गोचती ही नहीं। इस पर कुभकरण समाह देता है कि रावण तुम राम क्यों नहीं बन जाओ? रावण शोका है, गुनों व्यापे।

बालाघात श्यामल चारांग भजते:
समार्ग कुटिलो भालोनि न जायते।

जैगे हैं मैं राम की भगवन्ना धरेण करने चलता हूँ युध्में बुरे शाब ही पैदा कहाँ
होते।

जिसी की जगद्गुण चारण करने मात्र से उसकी गायत्रा में चाँगल-गिरनेन
आ जाग, यह किस हेतु और नाट्य का निवेदा है, जो शब्दर्थचाकित रह गया।

ब्रौडबन जा
यांजगापुरो
मन्त्र बनाते
प्रतिलिपि
है। अधिकारी
कुम आधुनिक

इस इ
नाटक और
एककृति के
को, नाटक
हमना था ज
कुमारस्वामी

जब तक मुझ
नव तक ना
हास्या-थियेट
वह पक्ष एवं
देश में,

मैंने देख
संपूर्ण संग्रह
रामाह और
का विजाका
दीर में हुम्हें
ली, जो हम
तुरा गे कि ह
नवल में ह
निर्देशक, मन
देखा, वहाँ
प्रशिक्षण पान
चाहे भी उन
आदर्शों के दि

लैभ-जैन आदि धार्मों का नाड़ी और शास्त्र का अध्ययन-प्रयत्न। कर्तव्य गया,
वैष्णवों एवं चूनियादी वात राष्ट्र हांडो चली गयी कि हमारी नाट्य-दृश्य नाटकम्
को नहीं धर्म-नाटकों कही जा सकता है। हमारी अपनी दृश्य गहरा है कि वो ऐसी वाला मुख्यम्
एक लूप है, अतः एक धर्म है। उसका यह लूप किसी भी प्रत्यक्ष चालक से अलग नहीं
है। उसका यह कुछ गर्वनाहीन है, समाज हृषा है सब विनिकार, दंडक, धीरों,
समय ताल और अवश्य पूरी।

भगु गन्त के अनन्द-पान, मैं अपनी जान्म-प्रदत्तता करने लगा कि देखूँ मैं क्या
बात कर रहा हूँ? क्यों कर रहा हूँ? किस प्रेमणा और उत्साह से कर रहा हूँ? जो
नाड़ी कर रहा हूँ उसमें मेरी आपनी भूमिका स्थित है।

देखा जीर्ण पाना कि नाड़ी लोक में एक अजोव 'वडश-गाहूर' निर्दिष्ट है। एकलव
पांडाइ के नाम पर वहाँ यह कुछ आगोपन है। धूपा हृषा है नारी वह नायन
नाड़ी शास्त्र द्वा, नारी परिवर्मा नाड़ी जायन। यह कुछ विष-प्रावड़, किन-
विक्षिन। मत कुछ उग धीर न गह-हृषारे न अलग ध्ययग।

उनांच वडकर और वह अजानना और मुर्लना हो जाना है कि आदा में जन्म
किए, यहाँ और कर नाड़ीकरण कर रहा हूँ एवं आरंभिक नाड़ी-हृषारे गही
अपार्टेंट हूँ।

जग भीचिप, विचार कीजिए, ऐसा अविकार देखा रघुनाथ-गृजन कर भवना
है, जिसे जान का वर्णन (परिवर्ती) लिख नहीं है, वैकिंग जैन धर्मा
पहना। इसन ही त लिखा हो? चाहे वह कितना ही सौयन्वत्तार करे और कितना
ही दलाल और सौर ने लिख लिया उसको अपने नाड़ी और रंग जान का सोधा
और जायें मार्ग-प्रमाणा, कर्मों उस अर्थमें न हो। (जागुर्नाम काल) और दिया
हृषा का आंखिलोड अधेश दिख रहा है। कलाएँ उसे अंधकार के सिवा और कुछ
न दिखेगा।

एवं निम कदम। जो अपनी गहरा का जान हो, और अपने गुणों की गहनाएँ हों,
दरभाल वही अपने जान के लाभि। और जो जान अवलम्बन ही और उसकी वर्तमान
तत्वरूपा का। वही अपने सवन में वस्तुर्वति यह अनुभव कर देख लकता है कि जिस
दृश्य-विकल्प के पैमाने पर वह आन नाड़ी की गोदी, विषयन या गहा है पा अपने
जीवनिक्षेपण मानन के काम के लिये अपनी निष्ठाका का। निष्ठाका बनाये हुए हैं,
जिसके बाहर वह अपनी जड़ी भूमि के कटकर दिखायी नाड़ी प्रगति की अवसरा का
हृषा हृषा है, वही अपनी अहनी दरक्षाहा है। और जो अपनी रंगभूमि की
गहनता, नाड़ी गीदर्व-दृश्य, आवश्यक्षाम उपर्यं गया है, और जिसकी तरफ
उसका उदात नहीं है, वही उम्ही एवं दर्दिना है।

(अध्यात्म-मनन करता गया।
कह सती नाद्य-पूर्ण परिवर्त्तन
यह है कि कठुंभो कल मूलतः
भी भो व रह जीवन से अलग नहीं
बल्कि इतना रह, लगता, भिन्नता,

जीवन बदलने लगा। कि दूसरे में जीवा
और उत्पाद से कि रहा है? तो
क्या है।

विद्वत्ता पूर्ण स्थिति है। नाद्य
देखा हूँ था है जाहे वह सबसे
मव रह उत्पाद, उत्तम-
वास्तव।

गही नहीं है कि आख में जीव
पर भावी नाद्य उत्पाद ही है

बाहर बढ़ा रनना-गृजन कर सकता
है दूसरा है, नैकत उन अपनी
ही संवेदितावाले और विजना
अपनी हाथ से रह जीवन का सीधा
प्रयोग हो (आद्यमिक वाच) 'जीवितम्
हुः उमे नामाद् एं गिवा और कुछ

हो, और आज गुणों की पहचान ही,
जान नकारा है और उत्तरके बनेपान
अद्यमव कर देव सकता है कि जिस
कारण विजन या रहा है या अपने
ही कंपनावा का देखा बनाये हुए हैं
इत्यादि नाद्य प्रवानों की जातियों का
होता है। और जी उपनी रामर्षि की
से हवके नाम है, और विजही यहीं
होता है।

जीवन नाद्य के प्रसंग में उनके दृष्टान्त-ज्ञान से युक्त रूप हुआ कि वे
योजनागृहीत दग में हमें आशुतिकता की जो दीक्षा देते हैं, उसमें इस तरह हमारा
मन बदलता है कि जो तुनहरा था, वह नी प्राप्ति था, उमहे अब तुमहरा ज्ञान
मनवत? तुमहारे युक्ता प्राचीन में कठकर वर्णन-त्याग से आशुतिक बनने वे ही
हैं। अपर्युक्ते हीं आशुतिक बनने के लिए आशुतिक तभी बनता, पुर्व बनते हैं कि
तृप्त आशुतिकता के नाम में परिचम पर अनन्तिक रहती।

इस प्रथाय वे उत्तमामयों तहीं के उत्तरार्द्ध से नर्वान समय तक, अपना गुण
मात्र, और एक देवे तो नाम होगा कि नायायित गैरिहासिकता, वैज्ञानिकता
तक तुम जो जो एक इन्सिट है, वह निश्चित दग में रुपकल्प के दधान पर बरतु
करे, नाटकता के दधान पर गति की ही महत्त्व देना है। ठीक उनके विपरीत वर्षे
रुपक का जो नाटकत्व है, उनका सूत वह है व्रजानन्द अनुभव। उसींलगे तो
कुना दृष्टि में ग्रहण संस्करण में जिज्ञान है, गुण में ज्ञान।

जब तक सूक्ष्म अगती रामर्षि, अपने नाद्य, अपने रंग-इन्सिट का आभास न था,
तब तक नाटक और रंगमंडल के नाम पर भारत में जिज्ञान कुछ गाढ़ाप मत्तर पर
उत्तम-प्रियेत्तर ला प्रदर्शन हो रहा था, उमका मैं एक गवा दर्शन था। मेरे जिज्ञा
वह एक देवा औरमितिगत-सौन्दर्यमिक नाटक था, जो जला जो जा रहा था भारत
देश में, या उत्तरार्द्ध उत्तरार्द्ध नंदन में बैठा आसी अंगेज न जिज्ञान था।

मैंने देखा और अनुभव 'क्या है कि मूर्तियांजन इंग रो जानादी के अस-गाया
संपूर्ण स्थानमिता हृप पर नारी था' थीं थीं। नैकूकात्त वा रवतंत्र भारत वहे
उत्पाद और नीचन के साथ। [प्रियं विजन के आशुतिक विपरीत-दृष्टा, और उसके शास्त्र
का आजाकर्ता हुये ने नामकरण कर रखा था।] उमसे युक्त जैसे सोंग भी थे। उम
बीच में बृहंग रामर्षि द्वारा नाम नकली पर्याचक्षमों, गाँवी बहुत सारी चाँड़े हमने गीचु
की, जो हमाने विजन प्रसूत और नामन प्रकृति के विलक्षण विभाग थी। इस पर
तुर्गी ये कि हमारी यह सोंव बन नुकी थी कि हमारे आगीय नाद्य की शुद्धता उसी
नकल पर है। हम इव हिंदू नाटक लिपिने थे जो दृग्मारी विहन में परिचम थे, रंग-
निदेशन, संचालनी और उत्तर शास्त्र होता था। हसने जहां-कहीं प्रियं विजन के देवा,
वहां अप्रेत्ति-प्रियं, संव, प्रकाश, अविनय, निदेशन वे ही आधार पर
प्रशिद्ध गाने जानों को देखा। जहां हिंदू नाटक हो, जाहे गंकुल, चाहे गालीय,
जाहे नामकरण, गवकर उत्तरार्द्ध और प्रसूतीकरण उसी अवेद्धी किनाबों वे दिगे रहे
आदर्शों के विभाव में।

1. नामन पर्याप्त विवरण उत्तरार्द्ध विवरण वाले दर्शें।

गुभारेम / 3

इतना एहत है कुकुर आ हमारी।

अंगेजी नाट्य प्रदर्शनों में, जिनमें से गुलमा, प्रदर्शन, खोजने, चित्तान, एवं एक दूसरी शब्दों और नामों की वीचकर बराम गोप्ता पर ले आकर छान से एक दूष्य है। इन तत्त्वों और नामों को वीचकर बराम गोप्ता पर अधिक बल देना नहीं और तथा दूसरे दृष्टि देवा। परं किंवदं हार सज्ज के दर बोलने पर अधिक बल देना कि हम आवेदन रो भर जावे। यह कौना दृमा है, था, बैसा दृमा, जिसके प्रदर्शन, निर्देशन के नामे एवं तत्त्व भक्ती, विभाषण, शोभन, फिल्म जो विभिन्न पारमी विद्येश के रान्ते हायार गायकविल आशुद्धिक रंगबंधे पे जाय।

बच अपने भारतीय नाट्य को पढ़ा और उन्हें उपर देने से अपनी रंगभूमि की जाता है अनुभव कर रंग रह गया कि अपने नाट्य और रंगभूमि में कही कोई देसों तो वह अनुभव कर रंग रह गया कि अपने नाट्य और रंगभूमि में कही कोई देसों तो वह अनुभव कर रंग रह गया कि अपने नाट्य और रंगभूमि की इकट्ठी थी, कही रिपोर्ट ही, जिसके नाट्य नामग लगान, कार्य और अभिनव की इकट्ठी थी, कही रिपोर्ट ही, जिसका है, अपने विभिन्न भूमि है। राष्ट्रीय एकलालन, साधारणता, एवं तात्त्विक है, दृष्टिगति है, जाहाज तात्त्विक है, वहा एक और अवधारणा है, जिसे हास्यकथा कहते हैं। इसीलिए जाहे युद्ध है, यहा एक कि बोधन है, यहाँ कला-आनन्दाद्वय है। सीध्ये है।

तभी नहीं जाना यह है कि यह क्या है। उसमें कलाई उत्तो और आनन्दित्वाद्वय है। इनमें से यह है कि एक वायरी, एक उत्तर एक रंग को उत्तमों और आनन्दित्वाद्वय है। इनमें से यह है कि एक वायरी, एक उत्तर एक रंग की उत्तमों त्रिमिति एवं उत्तमता है, तो दर्शकों की इनमी अंदर्दी के इनमें रंग विल कर उत्तर एक रंग की वृद्धिभावी, वृद्धिभी बनते हैं।

हैये ?

क्यों ?

अपनी 'भूमि' पे कारण। अपने जिन की इन्वेट के लाभण, नमृति और अनुशृति एवं भाव के लाभण।

जैकिन 'रंगभूमि' पर हो घटनाएँ थीं। एहसी घटनाएँ हैं इस भूमि पर सात नी वारी का गुलामना गया। जिसके कारण प्रविधान रंगभूमि पर पठाक्षेप रहा। वह नेष्टल में एक अंगरेज मंडी के पालम से अपनी अंगरेजीमें देखी रही। इसी वर्ष नेष्टल में एक अंगरेज मंडी के गुलाम अंगरेजी, जल्लाडी और उनमें बोलियों में, अंगरेज, नायर कड़ा न हुए, मारवारी के गुलाम अंगरेजी, जल्लाडी की इनमें बोलियों में, अंगरेजी पर्याप्ति एवं अंगरेजी लोलहमी नाट्य इष्टोंमें, दर्शक वही। कही धर्म के दर्शक की पर्याप्ति एवं अंगरेजी लोलहमी नाट्य इष्टोंमें, दर्शक वही। कही धर्म के दर्शक की पर्याप्ति एवं अंगरेजी लोलहमी नाट्य इष्टोंमें, दर्शक वही। परं जाने हुए में एक लोलहमी रहे हैं, जिले गुजरात गुलाम के लिए। परं जाने हुए में एक लोलहमी रहे हैं, जिले गुजरात गुलाम के लिए। एवं जाने हुए में एक लोलहमी रहे हैं, जिले गुजरात गुलाम के लिए। एवं जाने हुए में एक लोलहमी रहे हैं, जिले गुजरात गुलाम के लिए। एवं जाने हुए में एक लोलहमी रहे हैं, जिले गुजरात गुलाम के लिए।

कहाँदीर्घी।

कुमार खटना है, जाना ने अंगरो राजन। एक ऐसा अभ्यासने राजन, जो अपने देश प्रीत दूरों देश के वंश एवं अनिवार्य विद्योग्य और देव मानना है। नथा अपनी

ताकत से दूसरे देश से सन्व का विनाश है, जिसे

सुनिन में एक अवधि अकलियों अनुभव आकाशत भी। उस अनुभव में सिर ते दबो जाना। स्वरूप हम अपेक्ष कंपनी पर्याए, परिचयी विचार हो गये।

उसी प्रकार में गाल्य की, अपने एक वेव वह नवी शुभआन विल बचवा न लगे, जोग विंगटर के पार्टी के देसों गया। उसमें राष्ट्रीयत तमाम नहीं बाहर गये परवान गर्व उपरांत ताम-जान कटी में

हारके खिलाफ अताय वी। अन्नाज अंगरेज विकार बाहर गुण उपरांत हैं। और तहे

लखरे रिम्बर्स अलग नाट्य परंपरा अंगरेजी विंगटर के विनीजिण अंगरेजी की बासी की अभासा में खामोर, जिस साधेक मध्यवर्ती का दर्शकों अपनी रंगभूमि में पूर्ण में हीन और अंगरेजी को विविजित है। और उ

इसमें, में रेकाल शारणां और वहाँने

न, चौकते, चिल्लाने, एका-
लीया पर ले जाकर झान गे-
लते तर अधिन बत देना
कहा हामा इम्हे प्रदेश।
जो विश्वनुगामी थियेटर

मे उपने रणभूमि की जाना
रणभूमि मे कही काँड़े सें
अंगनी की हकार मे, वहीं
खना, नांगनांवाना, छुट्टा,
सांग चाहे युद हो, यहा तक

जाऊ और, आनंदन्धना
पर रण राह रंग को इको
तरी अंगों के डूने रण मिल

इकट्ठे बहाना, भूति और
यहां है, इन भूमि पर सात
में रणभूमि पर पठारेष रहा।
आंगन्धित देनी रही। तुमरी
नपर्दे और उल्लिखी बोलियों मे,
जो बैठ रही। वहीं पथे के
सीलकृष्णाम और कहीं
मव जोड़ी रहे हैं, जिन्हे
उन बानों का प्रगति किया है।
और ममता गे राहें बैदा हूई
जब चाह लकृत पोलेनी से

ऐगा अभूति रहा, जो अपने
तीर पर, सागना है। नथा अपने

ताकत मे दूसरे रण-गाहु हो नष्ट करने मे एव अपने अनन्द वास्तविक गहराय
सच का बिनाग है, बिल्कुल नहीं मानता।

मुट्ठि ने एक अम्बद देने की गत्ता मानत वाले भारतवर्ष के लिए यह एक
धूमलप्पनोग अनुभव था और उम भूमि पर वह एक अभूतिपूर्व मानांक बोलिक
आधारित था। उम अनुभव को हम बोलिक ६५ से नैन्व-ममते-बुझे जि हाके पहले
हमें चिर मे दबो चर. हमी से लग्ना करा देया कि हो ल। एव नैन्व-ममता। फत्त-
खरूप हम अंगें लगाने ८५ मे लुह ने दी अंगें चिरजिन भान्नीवृनि के उहत
पार्द, परिनष्टी विचार, जीवत मे बना, रामा-दृष्टि को अपनाने के लिए बेकम
हो गये।

उमे प्रक्रिया मे आनंदन्धन मे शोपनियशिक दबाव के दोने दिक्की, भारतीय
नाट्य का, अपने मूल मे कटी, इष्टी हुई एक अभूतिपूर्व शुन्नान हुई। अभावतः
वह नवी गुरुत्वान किल्कुल यांगोंपांग दाढ़े पर हुई। यांगोंपांग लमाज को मानांकिक
घड़का न नग, दोग अंगें चाल को ममझन जाए, दस्तिग यह काम पारम्परा
थियेटर के पटी के पोछे से शोजनापूर्ण लंग न बड़े घटवर्ष गुरुत्वानी डग से किया
गया। उमे राम्पुरायती, अ गो-गौरव, भारत नवी-यान, दुआजोगम अंदि के
लमाम नद्दु बाटे गये। मानाना धमे, बीर्म भमान, गांधी जी खार्दि के अनक पनाके,
परवर्म फहेजों गम और पूरे देया को अंगें राजनीतिक चाल मे अनिष्ट रखने के
लिए शान्त-शत बढ़े) मे आनागाना की जै-कैरार कहां है।

इष्टक बिलास अधर अद्देले भारतोन्दु हैरित्वान्दु जी भारतीय सान, सामनीय
नाट्य की आवाज और लहर दर्दी ने उमे चिम राहह नृनियोर्द्दा देंग से, तप अंगें जो
पद्धति निकले हुए गुलाम बुद्धिजीवियों द्वाया देव दो गये— इष्टी नमाम पमाम
उपलब्ध है। और वही आव गक हो रहा है कही ज्यादा बड़े साते पर।

गबसे विलचना मलोंपामा हुआ ऐसे भागा और दर्जन्नप की दो पग्गर
अतग नाट्य परंपरा ओं की कमी बोई मुठभेड ही लहीं हुई। भी-भी के भी-भ मे पारस्तां
थियेटर के बिधीलाल्पन से एक घुटनांक समावय का भासता जह / दृढ़ गया।
बयांकि बीसीवी सर्वी जाते-कर्ते बेलन रवीन्द्रनाथ ठाकुर को लह देश के बिसी भी
भाषा मे बासकर, हिंदी मे, कोई एक भी नाट्यकार नहीं दुशा जो काँड़े सर्जनाम्बका
गांधेंक गमन्या का रासना दुः सके। उमका मुख्य व विष, वर्जिन गर्नीयूनि और
अपनो ज्याम्पुरि के मूल मे डाल्लन तो हमने अपने स्वप्न, अपने जाट्य को परिनम
मे होग लीय अंखिकमि पानकान अंगें जान के द्रामा-थियेटर की सपाट नवाह की
कोशिश की। और उमे अपने नाम दे दिये— द्रामा को नाटक नाम, थियेटर को
रंगमच नाम।

इसमे, ऐसे फाल मे आधुनिकता को लेकर उम नग्ने दे दिया। जिस तरह की
धारणाएं और बहाने हमे गहां पनपी, उम मे लह नग्न को और राहवाटियों देना

भी उसका अंतिम

पर अधिनियम

अनिकमण्ड करने

से लेकर बताए

जीवन ने मरोक

तिक, मरोकाम्प

होता रहा है।

आम्भिष्वास

जापान, बन्दीका

करना जायेगा,

बर्नस्ट्रान गफ, जि

सुझा है। उसका

इसी अधिनियम

लगाने ही जगद्दे

अवश्यकाधीन क

उनार के जैन श्री

पा।

है। अधिनियम नाट्य कलाओं में हमारे पढ़ाएँ एक शोक के साथ परिवर्तन ने जो नीजे आयी, वह हाह। मैं नहीं था, हमारे बोध ने मैल नहीं लायी थी। अंडिलग वो रखकला को ही अधिनियम और अमरिका भास जैन के कारण ऐसों हुमल अपने चारों तरफ, अपनी दूनोहर की एक देखना होइ दिया जा चुका थुक्क अनदेशा कर गये। हमारे दृष्टि धृष्टिली हुई। दगड़े रचनात्मकों के गवाहों को भी चोट पहुंचो। नाट्यकला की रचना के संदर्भ में देखा, मापय (मूल) में बदल दिया गया। इन प्रकार हम एक गिरंग सुनार में बिछरे जहां राज कुछ नहीं भासता है। यही अकार लेतिहासिक दायित्व से जैन रंग कला नामकरित्व नाट्यकला मार्गदर्शना या प्रसोंन वा रंग थड़ा। भागत्र जीवन के प्रति सून दायित्व को बात उल्लास देने लगो, जो हमारे बाहर थी।

इन शिविरों में देखकर और काफी हुद तक अवानवशा, हमें लगते भगवानि के अद्वारीय नाट्य, भास्त्रोप रूपक भासीनीय नाट्यकला जैसा है। लिंग-एफ-प्रितिहासिक बाल है। उच्चोक जीविक रूप में प्रजिवम का ड्रामा-प्रिंटर हमें बोल लगता चाहिए था। जो दाचाल में बोला है, युनानी है, सोमा है, डमसी लालह आगता चाहिए था। जो दाचाल में बोला है, युनानी है, सोमा है, डमसी लालह आगता चाहिए, आगता सीदर, आगती अभिमत, बीज और युनानी लगते लगे यहीं जो है युनानी गीत, अपनी बोलक बहुदि जो अपेक्षा रेत है। जो अपनी आंगनीक दुर्बलता की दृष्टिहास पर आरंभित करते हैं, वहमें भासीनीय भूल ने आच्छान करते हैं। गगा। प्रयत्न वा नीरहाइ है। अपीलक नसे मानुन है कि दा नी बर्धों के रंगेन कठान रे वाचवृद्ध भासीनीय रंगयुक्त बहों-न-हही अथ भी लगा है। यह हंगमाम अर्थ तक बंदर करों गहरे हुई, परिष्वेषी देणा को घातकार अपसोक की बहुदि बिना है।

उसनीमवीं गदी में प्राचीवंशं दुमा और धियंटर जा जो एक रंग भगव भारत में ले आकर आयोग्य। नियमा रखत, उह गोरोग का रेत और पद्मप्रैति धियेतर था। वह कही आन मी हमारे भासीनले शून्य भासीं चालन म दिक्षा बैठा है। नकिन दृम वीय हमारी आगती मांस्त्रिन गद्दर्तों के मुनाविय। च्वभावतः उस परवेशी, अद्वारीन ड्रामा-प्रिंटर की युलामी लोडकर डमकी नीमा का अविकल्पना नहीं कर पाते हैं। कारण यों अपनी है ही यहों, उमे केलन अपने लंगे त उपार किंवा जी जा नहना है। किंतु भी क्षेत्र एवं दो दोहों भूमि लिये हुए, उसन रंगवर्तन न कोई परिवर्तन नहिया जा सकता है, न उसमें शोर्ट ड्रामा दिया जा सकता है।

उस बोल को न भुलार करते के लिये एक बहरा बालण है। हमारा नव्यकर्तिल अधिनियम नाट्य, अपने आवानीय नाट्य के उन 'लंग' से कटा हुआ हुआ है। उसको अनुभव करनामते कोई भी बाल-बोध और बोलन वापर दोनों अपनी 'मूर्मि' पर आकर हुगा जात्वा थी। आवानीकल वर्त जीती है। इसों का गुणतत्व यह है कि दृग्में किसी भी भौमि और गवर्नरी देश का अतिक्रमण करके उन्हें अपना नाट्य बनाता है। यहेमात्र में रहते हुए, उगायो प्रवाल्लोकना वा प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए

ओंके के नाम गणितमें जो नहीं होती वही थीं। गणितमें की जीवन के कारण जैसे हमने अपने द्वितीय बद्रुम तुल्य अवधारणा के समक्ष के बगालों जौं भी नोट , मस्त (एफ) के घटन दिया था एक गुरु योग्यमान भी है। वही द्वितीय गुरु योग्यमान भी है। यही द्वितीय गुरु योग्यमान भी है। प्रथम द्वितीय गुरु योग्यमान भी है।

अब आज आज, इसे लगाए जाना कि तात्पर्य हमारे 'लाएक द्वितीय' के लिये द्वितीय हमें योग्य लगता जाना, उसकी तरफ आज आज, सारांश लगाए गए हैं, तो यह एक सम-कानूनिक दृष्टिकोण की इन्हीं हारणों पर निर्भए। प्रथम प्रथम करनी पड़ती है। आज आज के द्वितीय भाग योग्य राजनीति करने का नहीं हुई, परिवर्तनी

हुआ। आज आज उस समय भारत में दूसरी जननीयता की विवरण की जाए जाए और हम तभी सिरे से एक दौड़ते हुए हो जाएंगे कि राजनीति में कांग। कुछ अपनाएं जौं छोड़कर दूसी गारी की गारी जगन्नाथ के दर्शनाल में कांग। किसी भारतीय गल्लूप की गारी की गारी के लिए उमं अपनी तरीका गया है। जो आज आज की जननीयता की जीवन इसमें सी जगदान्त कांग आज आज की मर्जनाभक्त मार्गी धर्मिण न हो गयी। २०२ यह भारतीयाना विदेशी प्रेषकों के लिए नहीं जो हो। मार्जनीय दर्विजों की उन्होंनी ही जगता और जो हो हुए

गहरा रखा है। हमारे नवाचारण उस 'आंग' में दूसरा दूसरा हुआ है, और दैवत वापर दीना अपनी गुरु विवरण। ऐसी एक पूजन्यता यह कि अंतर्वासन विवरण दूसरा दूसरा लक्ष्य शीघ्रता का प्रत्यक्ष अभिभव करते हुए

भी उसका अविष्करण करता, वही हमारी परवाना की पहचान रही है।

पर आधुनिक भारत, व्यवस्था भवनमें भी अपने धोंड को उत्तर देने, उसका अभिभव करने की धमकी रही रही। ठीक इनके विवरण विवरणी स्वीकृति के प्रारंभ से लेकर वर्तमान यमदार, योरोपीय नाट्यमें अपनी योरोपीय जहरतों और जीवन से सरीकार के बारण वाले उनके पूर्वापिक वलत्यक में चतुर्मुख, वैभागिक, योरोपीय, दूसरे नाट्यालार पौराणिक और अपनी गोसाडों का अविष्करण होना चाही है। योरोप देशी जामाना नाट्य अवधारणाओं, जन्मों रों भवततापूर्वक आनंदकिञ्चनाम के गाय आजाना चाही है, जो इसमें कर्की रुप (भास्त, चीन, तापान, अफ्रीका आदि) के हैं। ऐसा यारोप इसीलए कर सकते और लगातार लगाना जायेगा, क्योंकि वह अपने नाम-निवेदि के मूल में अवाधि दूने से अधिक से बनेगा तक, विनार, कर्म और आन्मनिष्याम के गाय सर्वान्मुख दूने में जुड़ा हुआ है। उसका नाम है, उसी उसमें आनंदकिञ्चनाएँ हैं।

उसी आनंदभवन के कारण या द्वितीय विवरण कुछ तरीके कर सकता। भारत अपने ही जननीयता अपने लोक, अपने जाताजा करों गुरुं देखो ये नाट्यनन्दनों और अवधारणाओं जौं नहीं आपना नहीं। जबकि ये द्वितीय के लिए औपनिषदिक्षिक शोक उत्तर देनें और अपनी 'मुर्मि' पर नवाचारणगुरुं लड़े देने के लिए वह द्वितीय प्राप्ति।

इसके उद्देश्य हुआ। आजादी विलय के याद हम लोगों को नहर योग्यीय नाम-निवेदि को जौं गर्भित, प्रयोगी, एवं वर्तनी की जांच देती ओ। हम तभी सिरे से एक दौड़ते हुए हुए हो जाएंगे कि राजनीति में कांग। कुछ अपनाएं जौं छोड़कर दूसी गारी की गारी जगन्नाथ के दर्शनाल में कांग। किसी भारतीय गल्लूप की गारी की गारी के लिए उमं अपनी तरीका गया है। जो आज आज की जननीयता की जीवन इसमें सी जगदान्त कांग आज आज की मर्जनाभक्त मार्गी धर्मिण न हो गयी। २०२ यह भारतीयाना विदेशी प्रेषकों के लिए नहीं जो हो। मार्जनीय दर्विजों की उन्होंनी ही जगता और जो हो हुए

अपनी भारतीय नाम-दूसरि करा है, जोप्रत वर्त उगली देखने, अनुभव करने नों इसी अविवरणी ने मूल इन और विवरण दिया। अपने गुरुओं ने गुरु यह कियाना दिला है कि अपनेवन नीं आजम वीं गमति, अनुष्य की वश्यमुक्ति कर अवधारणापूर्वक जीने दूने में वडो गहरायक होनी है। जो अपने गवन को भूल जाना है, अपन आदि स्वामी कर जाए। है, उसका कोई अविवय नहीं होना। क्योंकि उमं अपने वरेमान से जुड़े रहने का कांटे आन्मानुग्राम नहीं प्राप्त होगा।

इस भागोंविज्ञान और नन्दवान भी असता है कि मनुष्य में ऐसे कुछ सूक्ष्म हैं, जिनमें से बहुत अलग हैं। परंतु ये जड़ी हैं, वृक्ष में जड़ी हैं, हम किसी भी गहरे कायं, इट की भवानिता विषयादी नहीं देती। परन्तु हर वृक्ष में उसका मध्य है, जो कायं, इट की भवानिता विषयादी नहीं देती। हर वृक्ष में उसकी रूप है। विषयादी न देते, पर भी हर वृक्ष में हर वृक्ष में, हर वृक्ष में वह है। उतना रस, उतना मध्य नहीं हो सकता, अगर वह जड़ी है। उस जड़ी को काटकर उस चाहे सोने में गढ़ दें, ताहे हम सर्वमरमर के घासों के रस में, जिकिन वृक्ष सूख जाएगा। ऐसा ही कृष्ण मनुष्य का है। जागियों ना हो, आपदा का है।

भारतीय नाट्य के मूल का अभिनान, अपनी रस, खोल गे जैसे रहना, कोई गाधारण कायं नहीं है। यदा ही संशोलित और गवाईं से भरा है। अपनी नाट्य-प्रशिक्षण का गहरा, अवाधि विकास, जैसाकि परिषदों द्वारा भी रहा है, उसमें कुछ उतना ही रहा। और अवाधित है। पर किंहीं तांत्रिकालिक कारणों गे अपनी नाट्य-प्रशिक्षण की वृद्धि दूड़ जाने से जैसाकि भारतीय नाट्य का रहा है, उसमें एक भारी अन्तराल के बाद जो गुरु: श्वेतांग, गोधन कर उसके गाय अपने को नये लिरे ग जोड़ना, और अपने अपनको उसके मोतर में प्राप्त करना, वडो कठिन बात है। त जोड़ना, और अपने अपनको उसके मोतर में प्राप्त करना, जोड़ने का रहने के अपना दृश्यों नां पिछड़े दा की वयों न उससे मुह मीड़ना, हमने उस पराही जोड़ने अपना गुजार; कर्मा चाहा, जो परिषद के हम अधिविष्वाम पर दिका है कि द्वारा विषेष और तत्परता के दिका, अगर इन्हाम तम गे हर प्राणोंग प्राणगुण को परिषिक्षा को प्राप्ति करना है। साग पिछल, वर्तमान आधुनिक के सामने प्राप्तिगिक, अपर्याप्तीर हो। इन अन्तराल का भयकर प्रभाव, भारत को अनेकाना और नाट्य-प्रश्न पर तो पहा ही है। इस अंतर्विषयक के दृश्योंमें दुखभाव गे नव्यं परिषय का आधुनिक विषेष, भी नहीं लग गहा।

आज दोनों भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में जो धर्म, भारतीय-जपना-वालों डाढ़ी हुई है, उसकी दृश्यादि में वही पूरब-परिषद की परमार्थ निरोधी प्रतिरोधी जीवन-दौरिद्र है।

उदाहरण के लिए नाट्य कलाभ द्वारा विषेष पर वृनियादी अन्तर्विषय और नाट्य-प्रश्नोंपर जै।

इस मंग्या पर उपादन व सो गाली दुर्गानी समझ व्यवस्था है। ऐसे द्वारा जो जहान ही, जागरोच, गुलाम, भजदूरों की विजाल भीड़ को निपोनेचाव और दोस रवानियों से निपित वृक्ष प्रजातात्र के प्रति गिरा के, कठोर वधनों में जब इकर बांधे रख रहे। उन दान स्वतंत्रियों के घासद और नियतिनार्दी जीवनदर्शन को प्रस्तु करने वाले (जिन्होंने परिषद के द्वारा अंक का नाम है - 'दृश्यानांजीवन') पूर्णाना नाट्यकार, भागि जलकर इसी काम में अपने बहले हुए

मनव की भाँग के अनुमान इन दिनाना खाते हैं कि आप ना जाने लाग, नवासी चारा, न जाने अनीतिक संकट के निकार हैं यहां तक कि शुरू-अंतीं की गज गुरानी काले में लेकर वर्तमान वस्त्रों विचार हैं जांहे नह

इतनिए चरित्रों के बीच संवादों में इन्हें उनके विनाश भाव की चुगी पर रख हुई है। और उन्हे अपनी विशेष उनके विषेष-होल बोल, और 'प्राप्तिगिक', निर्देश 'इत्युत्तिक' और हम विवाह: अनियं करने में खेल हुए हैं।

पह दासा, पह मनवुरी, प्राप्ति होती है। अपनी जैना, और उसका विकास परिषद में विभी दाम रखायी जाती है। इहुआ, जिसमें गुरुगित, गंगाचारण और नाम: म उम्ब्र चर्ची अपने समुदाय, समाज और लोगों को दर्शक नहीं, प्रधान स्वर्वाचन जो ओं श्वासित (दक्ष अभिजात श्वासी और मानव शंखान् यों ऐसी रसायनी अन्य अग्नि को एक ही वृग्नामगक देती है।

जिस दिन युजे अपनी इन दिन अनुभव करता था कंसार

एंग में रोग पुल शूल हैं,
उम्मीदों की गहरी
लंग में उत्तमा पथ है, जो
उभी हर प्रकार में हर
स्त्री सकारा, वायर चढ़ जह
चाहे हर समस्याके
नियम का है। अनियों
नियम

जो गे हुई रहता कीड़ियों
जब भय है। अपने नाट्य-
ता का रहा है, उसमें लुड़
वहाँकि काणां में अपनी
दृश्य का रहा है, उसमें प्रक
के माध अपने यो नये मिरे
ता, जो कृति तान है।
उस बाई बात से अपना
छिका है कि द्रापा-यिनेटर
न स्वयंग की पाइलों को
है। जो महान्यूण है वह
निक के सामने अवासीक,
की रजनेता और दायर-
प्रभाव ने यह एक्षम की

इस, आनि धोम्या-धाना-
यिचम की प्रयगर विरोधी
त सुगिदारी अविरोध और
प्राच, लवरसा को ऐसे द्रापा-
न भीट की प्रयत्नियाँ भी
के कठोर उधनों में जकड़वर
नियाँद्यारी दीनदर्शन को
के पहल प्रक का वास है,
हसी वग म अपने घदले हुए

स्वयं की पाग के त्रिसर इलिजाहों तथा कलार अपने भागोंदों को गहू विष्वास
इतना चाहते ने लिया था, आधारण नियाँद्यारा यहाँ ही बेहतर है। क्योंकि
इन जोग, ज्ञानी वर्ग, न सिरे रागतप के लिय स्वतन्त्रता के विकास वे ख्यात
अवैतिक सकार के शिकार हो जाते हैं और परिणामत उह है पाप, 'वद' और
वहाँ नक वि सूत-वदा की मदाएँ आदली पहली हैं। इसी ए परिचम के द्वारा में
पुतानी काल ते लेकर धनेष्वर समव तक उत्तरी चतुरा के हृषि वर्षी वर्षी और
वामदी विचार है वह जह 'काम' आमेजी हो जानी न हो।

ज्ञानिए चरित्रों के बाह्य विकास के लिय परम्परा क्षण संधर्य, उनके
गवंधों में प्राच्यवधि, उनके जीवन व्यापार में भारती, विजयमध्यात्, पूर्व,
विताज भाव की दूरी एव गवावदन; पांचकमी द्रापा-यिनेटर की व्याप्ति करना
हुई। ऐसे उन्हें अपनो विशेष गवत्तान और विवित प्राणियों द्विजों। उनीं अनुसार
उनके यिनेटर-हाल वह, दूरिया यिनेटर, आनुसार वियेटर। उसी अनुसार उनकी
प्रतिक्रिया, विदेशन प्रस्तुतिकरण कलारी विकास हुई और लगातार हो रही है।
और हम द्विगमन अनिवार्यता उपरे द्रापा-यिनेटर के विषय इस ने नवल
करने के लिय हुए हैं।

यह यासना, यह सत्यभूती विधि यात्रा होगी जब हमें अपनी रघुभूमि की भेतता
प्राप्त होगा। अगरी चेतना अनुभव करेगी कि आरनन्द में नानू की दूज प्रान्त्या
और उभया विकास परिचय के उन द्रुगालों, एलजावीया विंग्टर से गर्वता। भल,
किसी दाम भाषी राजा के द्वारा भी, विकास रवाना कलापिलार्मी समान इच्छा
दृष्टा, विकास मुर्जिलिन, सम्भारिन राजन्यवर्य के भोग, कलाग्रु, तुर्मीहल, थार्डी-
यां और नामाप उनाव द्वारा पर जामानूपांतरा लोग जारीमत व। यह नाट्य एक्षम-
द्यावे समुदाय, समाज और भगव ही भागी के लिय था, डगलिं, उनत ही ओडे
ओं को देखक तरी, वेस्ट को गश्त पलों। इसमें उद्देश्यपर्याप्ति काम-गोद्ये का
तत्त्वचत लोक रघुपत (प्रकट नहीं) होगा था। हमारा नाट्य पहुँ चर्चियों नहीं,
अभिज्ञा जीवनों और मानवीय संकलन देने जाता रुपक है। इसमें रघा, काम्य,
नंगीन वा गेली रघुभूमि अवधारणा है। तात्पुर्यकार, अभिलेता, विधक इन नीन
ओं को एक ही गृहगात्रका प्रक्रिया में प्रदर्शित की गया दृष्टि म नहीं जोइ
होती है।

एस दिल मुझे अपनी इन (शम्भुमि का विनिक-सा ही आमाम फिला, उसी
द्वारा अनुभव किया कि मंगार का रामें अधिक गदर, प्रभावणामि) शब्द 'रघुभूमि'

में सुना। लगा कि मैं नारायण को नाट्यानन्दा देख और मृग रहा हूँ। उपर्युक्त वाद उग्रा, शृंखला, शमशिर, शीमा, वाहन हृष्ण है। मुझे मेंगा भीया हुआ जा गविष्मान चिना है कि हिन्दी शब्दों में किसी नाट्यानन्दन का असाध पक्ष वारह में अनुकूल परिवर्तित है, जिसपर अपनी 'रंग' एवं अपना 'रंग' दीता, उन्होंना जो सकता है। अपने इस देशमें ये हमारा यह ये एक लड़ों के खेल नहीं हमारा किंचनाना-विवर अंतर्कथा कीदिन पर 'रंगभूमि' मुझे कहा देता है।

रंगभूमि, बनेगा तो मैं अपनी बोली वाली का नई दुर्घटन होती है। आज्ञो यहन हो नहीं है, वापर्गी बोलगे कि बाहर का अहसास है, जो ज्ञान-से-ज्ञान वालोंना आ किया का कृप्य धारण करता है।

वह वार्ताविक विवर है कि दक्षमं, देव और राज यांत्रिक होता है। जैसा देश-मन्त्र होता, जैसी उसकी अर्थात् दक्षमं, उसी अनुकूल उत्तर रंग-व्योग होता। इस दक्षमंविक, व्यार्थ की लूपीली वो हम जानते हैं। यह विकास के नाम पर वास्तविक व्यार्थ के साथ दक्षमं विवर ये अविकृष्ट बोली जो उपर्युक्त का जो व्रतस्त्री रहा है, वह कुठिलयाएँ हैं, ज्याकि वह रातला-बल है।

अब अद्वितीय लागों ने अपनी प्राप्तियों विकासी देश में आनंदक भारतीय नन्दनों को अपने विकासवाद के दृग्ंत ये पारिमाणिक नियम हैं, उन्हीं के नन्द-चारु भारतीय दक्षमंमें पदार्थी दृष्टि और नामांकन से 'विकास' और 'अविकृष्ट' की अधीं पुरा गये हैं।

इन विशेषज्ञानों से धारण विवरमें के उपर्युक्त विवरों को लोहता, ज्ञानों लिख अनिवार्य हो जाता है। न तो गांते पर्ग होते जाहिए कि उस पर बोलो हुए भारत के लोगों की रक्षा-प्रकल्प, और वे बोलो तथा विवर-वक्ष पहल दो नाट्य अंतर्कथा को बोका बिल रक्ष। एगो मिथिलिया बोलो होयी, जिसमें भारत के विभिन्न लोगों के नाम अपनी परंपराना रथानुसारी ज्ञानदारों और धर्मात्मों को दर्शानीए और रथानुसार वरुणी की पुरा वर्णने के प्रयत्न में जगा मने। अपनी दृष्टि पर अपने रथों वे ज्ञान-विवरों के उत्तर विवरित करता होता होगा जिससे हमारा खोय हुआ आत्मोवश्वाम तम फूल रथ पर्याप्त हो। जबो जा-विवरामने साथ हम दुनिया के गांग बराबरी के लाल पर चरांग कर लेंगे। जिनु होगे इस वास्तविक व्यवस्थे के लदा ज्ञान में रखता होगा। कि रथ धोके के किसी भी एम ज्ञान विवान जो गांव नामक लोगों के द्वारा गाल ग उपलब्ध जाए और अनुभव के जागरूक राली जाए। अपनी ज्ञानदारी और धर्मात्मों को ही अंतिम रथ हम गांदे व्यापर रथ विकास। उसकी है।

हमें ऐसी विवरों भी इस तंत्र में करने होती हैं कि भारत के सभी रंगभूमियों

के नोग एवं
का बोझ ल
में जुट जाए
जाए। रंग
कर्म में, भा
ज्ञानी बो

रह र
भड़ा ही भ
केवल अपन
अपनी
अपनी
अग्र
काम आये।

आदर्शव् व
के हुआ व
भटक गये
ओ, त्रिष्णु
आजादी के
का यात्रण,

जो त
पथ अवृ
आ गया,
नाम्बूद्र ज्ञान
नहीं सके।
दिनों के ब
ही हमारे।
के अन्याय
दृथान् अप
वहीं व
प्रविष्टा म

त्रुट ही नहीं हुआ है। वर्षा बाद
हुआ है। पूरे देश ज्योति हुआ
है—परमात्मा का सभाव एवं तरह
पर अपना 'रह' होता, रात्रा
लगता है। 'जगिल नहीं होता' कि
कहा है।

दृश्यता नहीं ॥। आपनी संगत
जो ज्योति से उदास प्राप्ताया

स्वाल गाएँ होती है। जैसा
उसी अनुष्ठान इसका राग-बोध
हम जानते हैं। पर 'ज्ञकर्ता' के
पास प्रविष्ट न हो भाव उन्हें कीटी
जाकि उत्तर या जवाबीक है।

ज्ञान-दोषों में वादपात्र अनुष्ठान
गता किया ३। उन्हें के निम्न-चारों
में 'ज्ञकर्ता' और 'प्रयोग' को

य गमनी की जाता है। हमारे लिए
हिं । क उस पर जागी दूर भावन
क्रमज्ञक पहल की वाद्य धोव में
यां बननी होती है। निम्नभारत के
के लिये और अपनाओं को
प्रथम संज्ञा में जाग देते। अपनी जूँग
फिल जगता होता रिसें हमारा
उसी लालीवाली में साथ हम
गम्भीर नितु हम इस वास्तविक
के कर्मों भा त्ते आन विज्ञान
य जान और जन्माय के अंतर्गत
ही है। लालीवाली हम कर्म वया देंग
गम्भीर भारत के गम्भीर रणनीतियों
वाद्य साड़ी

के नोंग पूक-डूगरे के करीब आये, और हम पर डाढ़ा और खिलौने ने जो जामान
का चाल लादा है, उसे अपनी मिर गे उत्तर के दें और ऐसे अनकर्ष नीं सुर्खि
में जट लाये, जाकि दूसरा-खिलौने हो गहे अपान के अद्वान की घृणा तक मिट
जाए।

अपनी रणनीति की पूर्णप्रेरिता का अर्थ यह तही है कि हम जेव दूनिया से कट
जाए। रणनीति प्रतिष्ठा का अर्थ यह है कि अपान भान के नाथ दूनिया के रंग-
रमंग, भाँड़चारे के, भाव को अपनी अवह जीवित रखते हुए, भारतीयता और
उसकी विभिन्न अभिव्यक्तियों को उठाने का मोना दिया जाएगा।

यह नभो संभव हो सकता जब जामान अपने रामायाम एवं अपने हो विरोग
वड़ा हो सकेगा। और आपनी देवताओं के द्वय कर गेंगे। अगर ऐसा कर सकेगा तो
केवल आपने अभिमता का प्राप्तार पर।

आपनी रणनीति

आपनी अभिमता ।

अपर आपनी अभिमता में हम रंग-रमंग में जानें दा जिता। हम देश के लिए
काम आयेंगे तां। प्रत्युता में दूसरे देशों के भी रु धेव से हम काम आयेंगे।

धारणाद भाल के दोनों भारतीय गपाने के इरादे और उद्देश्य छुट इनी जात्यू
के हुआ कृत थे। किंतु हम अपने ग्रन्थ के ममता के आन-पाल कुर्ता-पहर में
भटक दें। भाजन और पाठ्यचर के समत्ववाद इस भटकना की जह नहीं स्थाई
थी, जिसमें दिले में पहले हम उम्मदा अद्याज ही नहीं ज्याद गक्के। जब हम
आपनी के बाद रिस भे अपनी भारतीय याता राजनीति नव सी उत्तो समत्यगता द
के कान्न, हमारे यास अल्पी। तब दुनिया का कोई व्याप अनुभव नहीं था।

जाति में अपने आप में प्रज्ञन करता है कि ज्या हम इसी विद्वान्वत्तोन्ता से रु
पर भ्रष्ट हों यथ, या कि हमारे नामों जीवन-चित्त में ही नहीं लोके ऐसा विकार
आ गया, जिसे हम नमूने ही नहीं पाये। और हम अपने सान विकार का अपने
नाम्य जारी ब तत्त्वान् दृष्टा खिलौने वो वास्तविकता गे जिसे नरह से भी ही
नहीं गक्के। या कि जुनाओं भी लंबी यात्रा और अपने अवनेयता प्राप्ति के उत्तराह भर
जिन्होंने बाद अनामक हम आपनीक ॥ बाद ये दूरान म उत्तराह एवं दूराह ही। जाता
ही हमारे जिस स्वाभाविक था ? दो प्रज्ञों वा जागर एवं ही उत्तर ही जिस यारह
के प्रस्वाभाविक लिंगांगक दोसों के द्वारा जात के बाद रिसां नीं गमान के लिए
दृष्टान्त आये। यह औरत ३। शील ने एकड़ पांते गे दूर दूसरे देशों ही कहा। दू।

वही सनय भेर जीवन में जगा, खेलते से अपनी रणनीति पर आने वा। इसी
प्रकाश में सुर्खि लाया, और परिवर्त्त उनकी विभिन्न अपानी राम्य-
प्रकाश में सुर्खि लाया।

नाथों की गमधाने का सुअवयव आए हुए। इसी प्रक्रिया में गुजरकर मुझे 'बॉडी-प्रिंटर' लोग उसमें उपर्युक्ती भारी इत्युपोकरण किया। जिसें गत, अभ्यन्तर और दूसरों की एकान्तरिकता लक्ष्य में बाह्य रस्ते की व्यापक के बीच की सूत व वृत्ति की भी जागरूकी मिली। मुझे अनुभव हुआ कि भव चीजों की धरह रख लो? नाट्य, उताकी पूरी गतिशीलता, तकनीक और व्यज्ञान, दैज और ऐसे साधेश्य होते हैं। कोई दैन, कोई सम्भवा, याहे जितना निष्ठेपता की बात। उपरोक्त करे। यह पाठ्य-प्रियकार्य है कि जिस तरह भारतीय रंग-दृष्टि का एक उद्भव और विकास भारत की विश्व चम्पाका के माध्यम होता है, उसी तरह, भारतीय रंग-दृष्टि से विकृत व्यज्ञान, गतिशील गणितम की विंयंतर-द्वामा दूरी उनकी अपारी विशेष गतिशीलता के साथ जूँड़ती है।

आपा रंगभूमि की बढ़े कहीं गहरी है और रंगभूमि के विषय में हमारी गतिशीलता हो जाए है।

नगर निवास से उमसको जातकामी के साथ-गाथ समें उसके प्रति भावभीष्म मानस और विवेक का जनाना होता। पर वह जागरण आपनी रंगभूमि की एक खुणफहमी मात्र में नहीं तहो। ऐसा खुणफहमी गंधों ने नहीं तहो। प्राप्ति के दौरान में जरखा, छप्पा, चक्का, काढ़, बक्की आदि भारतीय गीतों के अपने उपकरणों से पैदा की गई। और उसमें एक बड़े उद्देश्य थी। पुनि हाँ थी। पर राजनेता मिलते ही अपनी युवादहीं भारतीय गीतों की बोई गाने नहीं रही।

रंगभूमि एकी कोई रंगभूमि नहीं। यह आपके हैं, जिसे दिगंबर सजगता और नामांस्क स्वातंत्र्य से हर जग गुका होता है। जिसके हारा आज हम अपनी जनतीहूँ मानते हैं। प्राप्ति का तमिकर एवं गानवोय ही और न्यनतंय विकास प्रश्नुत कर सकते हैं, वा हमारी रंगभूमि की समाजी और सूल वर्जीनी में गहरे भूमि बोल्दे हैं।

नोटिसी

१५ नवं. 1987

—लक्ष्मीनारायण सास

मिलें हाते समय
बैठता या कि 'रंग'
आनुनिक द्वे रहने,
परिचय के विंयंतर
हिंदों रंगमंच, अपना
अपना कैसे ही सबले
पर 'मन' के माथ ज
नहीं है। वह रंग है
बोज है। ड्रामा ज
बमीन पर कही। 'रंग'
से कोई सरोकार नहीं
भूमि है। सूर्य ही

पर वह बुनियाद
में है ऐ, और दमी
कि हमें अपारा कुछ
नहीं, मूर्दगों जा
त्याकर्त्तव्य अनुभाव
रंगभूमियों को बिना
का कर्मजल हमारे
सारी संभावनाएं हैं
असमय दी गुण है।

उत्तरकर सुने 'मांडन-
देशन, आंशिक और
दूसरी मूल प्रवृत्ति की
तरह रग और नाट्य,
जल संगमन दोनों हैं।
निम्नरे । वह द्वारा-
द्वयों द्वारा माला
य रंगदृष्टि से बिन्दुल
उत्तरका अपनी उपेषण

यथाय में दूधारे गात-
प्रति भारतीय भाजस
य द्वारा एक ध्वनित्रूपी
या के 'रंगों में चरमा
उपकरणों तर पैदा को
करना पिलते हैं। अपने

त्रिशे निर्वात भजयता
है। आज हम अपनी
व्यसंज 'वकल' प्रश्नुन
प्रांदितों द्वारा से ही

क्षमतानारायण लाल

भूमि

पिछले इतने भविष्य तक नाट्यसंघ में कोई ही नहीं हुए थे यह नहीं
बढ़ता। तो 'रंग' के लाल 'मंच' का भला रथा बंयोग है? आधुनिक हीरे और
आधुनिक वने रहने, कहलाने के भ्रम और मांहू में दूसरी रथा नहीं मूँहा कि रथामंच
परिचय के विषेषक का अनुचाव है, किर भी हम एवं कोस कहते हैं। भारतीय रथामंच,
लद्दी रथामंच, अगाना रथामंच। यो विदेशी अनुचाव है, अपने लालिक लाले में ही, वह
अपना कैड हो सकता है? हाँ, केवल 'मंच' 'विषेषक' का अनुचाव ही सकता है।
पर 'मंच' के लाल जो 'रंग' जुड़ा है, वह 'रंग' की 'विषेषक' की गरिकलाना में ही
नहीं है। वह रंग 'दृग्मा' में संभव नहीं नहीं है। 'रंग' दृग्मा के धोने के बाहर की
चीज़ है। दृग्मा जपीत पन, पथर्पे पर, तर्क पर, दुकिडी पर ही आशारिया है।
जपीत पर कभी 'रंग' नहीं किया जाता। रंग तो भूमि पर दृग्म है। मंच का रंग
से कोई सरोकार नहीं हो सकता। रंग का सरोकार केवल भूमि में हो है। रंग ही
भूमि नहीं रंग है। वह कहूँ पाता था?

दृग्म सम्पूर्ण लाल लाल दृग्म पाव।

काहु न सोह न लहु प्रथम जनजना।।

पर यह कुंतयदों चात हमें कोई लग्नों बताया? जिस आधुनिक राज लवस्या
में हृषि, और उसी के उनराधिकार ने जो आज हम हैं, इसका लध्य ही वही है
कि हमें अपना कुछ भी याद न रख जाय। अपनी कोई रसूनि न रखें। इनता ही
नहीं, ल्यगिदों का दमन भी किया गया। पारगी विषेषक ने नेकर आज तक का
तथानिक आधुनिक भारतीय विषेषक हपानी अपनी बल भूमि, रंगभूमि की
रसूनियों को जिदा दमनाने का ही किया विधिवत् प्रयाम है। तसी भैयास
का कमफल हपारे सामने है। ऐसा कमफल जहाँ 'मंच' यानी विषेषक ने अपनी
मारो संभावनाएँ ही जुआ ली है। ऐसा फौंस हुआ, वह वह रथामंच में भी
अगमर्ह नहीं चुका है। इसको नजरों द्वे दृग्मों गारी प्रासंगिका ही भगाया है।

अनावणक द
आवश्यकता है। प
रंगमन में जो 'रंग
अनिवार्य' आवश्यक
रंगभूमि इन दो वि
रहा है, उस पर एवं
और गुजरात में नहीं
नहीं पड़ा। अनदि
बीच क्या है? हम
योत है। हमारे पु
ब्लिंक काल भी नहीं
और उत्तरा दी।

लोक इसने {व
'आधुनिक विषयटर
गया है। पहले व
का पद्धति नहीं, फि
जिसे स्थावरतः ग
एवं पूर्ण गये फि
अप्पा-अप्पी भर गे
मती इजत करे। उ
दाता को बिहित
हुआ है, सो चाल चली
रजनारंतरी पर ग
दूसरे, जो शुद्ध भी
जब भी बे चाहे, प
माध्यमों में हमें धू
हराका गिर्क द्वारा
है, जो शुद्ध भी हम
अनिवार्य आवश्यक
स्मृति में कर जायें
ही हम दूसरी की
जाते हैं।

हान्तरिक इसा तमाम 'माध्यमी', 'मन्त्रों' का सुलकर उन्मेशल किया। जैसे
आनुनिक वार्तिन समाज को बाजार रूपकर उन्मेशल करता है। उन्हा नहीं-
हृष्णेश्वर ! उन्हा नहीं उपरोग ! उसी दिन वेरभी में लोक आदिवासी
कलासांगे से अपना भूगतान किया। उसन समृद्ध, भीक और नपाय गाँधीय
द्वंशों भारत, चंचल, जागरूक अवधि गे वेरणा जिन की भूमक फोटोग्राफ की।
उसने एक थोर आर्थिक विषय, इमर्झी और आइनेम्स की ओर गिरावट की। उसने
को नकल करके देख लिया। उसन गांधे कपड़े पहनकर, और कपड़े उत्तराकर
देख लिया। उसने उनक दर्शनों के आपने जानकर देख लिया और थोड़े तो दर्शनों
के लिए भूगतान-विषेश बगाकर देख लिया। वर्गिको, जमीनों, इन्वेंड गे
नंगाखड़, मार्टिर, मेंका, प्राचारपथ का नगा। नान न्यूनों मर्जे नूद लिए। उसने
फिर-मौ अभिनेताओं और अभिनेतियों को बंच पर लान-ह देख लिया। यानी
गवां नक दूआ कि अब उम और चबा ही नहीं रहने को। त कोई गहर-ग
कोई गीले, न कोई एवजांगना न कोई कर्म-कृचं। और हरकाले, जारे देशी-विषेशी
करनव करके हमने देख 'लाग'। रातोंनिक, तुकड़, मूलताकाली, दुलाल, उदाह,
संभासी, चावलस्तिक, प्रौद्योगिक, न जाने किनाना-किनाना करके देख लिया। और
अभी विषेश की यह घटना पूरी भी नहीं हुई तो हमारा बंच लोकिया हो गा बाबू-
माहिक, रात्रीन हो गा थोरी, उसन पढ़ते ही बर्देशन बंच पर पर्दा चिर रहा है।

'बंच' एवं इस नश्वर घोरीनीतिःम विषेश 'राम' का पद्धति उन्नीसवाँ 'दी
उत्तराधि में भाइन की जमीन पर दूर। उन फिरों के चिनाफ भारतेन्दु ने आपनी
भूमि के गंडे के मंदसर में कही 'भूमाण' और वही 'नील' की बात उत्तरायी थी और
अपने परावर्त्तनी पर उत्तराकर काम किया था। एवं यात्रों विषेश ने गामते
उत्तरां अपेक्षी नाली कारवार विज न हो लकड़े। किर योगीगयम विषेश, आनुनिक
विषेश वाले वह भद्र दुआ बद्दी अव रहा है।

लम नये दोरे में हम आपनी 'भूमि' के कर्कर ढापा और विषेश की जमीन
पर भें गये -जिनपी हमने नाम दिया - 'गंगमंच'। रंगमंदर पर राय करन-करन
हुआ। इसम 'मन्त्र' ने आपने 'भूमि' की अंग रखा। 'भूमि' की स्मृति गे ही हमें
आशाग दूआ। त नादे जो हो आपनी गृहनियां मिट्ठी नहीं गेसी। स्मृतियां कालांगर में
गंगाधा हीने जानी है। और, दमिया गृहनियों तो गंगाधा, रूप दाराणा करनी है। इन्हों
अनेक उत्तराहरण विजय के ग्रन्थीनिक क्षेत्र में रखने को मिले हैं। ऐसे थोड़े ही इन्हों
ग्रन्थां, अग्नीषोद, अधोगि के, गोदे बृनियादों तौर पर वही दीमत न्यूनियां हैं।
हमने इश्वर का गत भ्राण 'राम' का है, 'बंच' का नहीं। एह मत्य हमारी गमति में
कही दफल हांकर भी जानिया है। हम 'बंच' के मुक दण्डक नहीं, हम वरने 'राम' के
महुकारी, महानोंको, दण्डक हैं, वह गमति हमारे अवकेन में विश्वसान है। वासी हम
केलल दण्डक नहीं हैं, दण्डक समाज है।

म्भाल किया। इसे
है। रचना नहीं
लेक, जीवनानी
नमाम शास्त्रीय
कुक बांधग की।
तीनहीं आर चेत
रे कण्ठे उड़ाएं
ओर यादे न दूर्लभ
नमेंगे उपरें मे
लुट लिए। इसने
देख लिया गानो
उ कर्ते उग्गु
गरि गरि लियो
गी, हुआइ उडाय,
के देख लिया। भी
देखिया हो या ध्वन
उर पार्दा गें रहा है।
घर्ही उन्नीसवीं नदी
का भारेन्द्र ने अपनी
बान लहरी दी और
सो दिवेटर के साथो
उम विद्युत, जातीनक

विंशति जी जीनी
पर काम करोन्हीने
ही। मर्फन ने ही इस
द्वारा घृतया का तर मे
धारण कर्ती है। इनके
हैं। ये लेप ए डानी
दी उमित द्वितीया है।
हु गर्प द्वारी द्वितीय
नहीं इस थारे 'ग' के
विद्मान है। तभी इस

आवश्यक बहुत कुछ इतने या भूलते जाना मर्फियत की एक अनियार्थी
आवश्यकता है। पर इस 'द्वारा' और 'दिवेटर' के तो तभी-सो जबो के चक्रमें
रंगमंच में जो 'दर' जूँड़ा रह रहा था, वह हम कहीं नहीं भूला। हरी रंगबोध की
अदिवायं आवश्यकता भी कि ये भ्राता अनियार्थी नाम 'मुझ' से रहे। रंगबेन और
रंगमुख दून दी विजयन भ्रवधारणाओं को बेवल धारावदक रहर पर नहीं उठाया जा
रहा है, इस पर अगले नहे। नवोक्ति रंगबेन के लिये रंगमुख गव्व-संजा, महाराष्ट्र
झोर गुजरात ये गदा विजयमान रहा है। यह मात्र तला, गव्व, नाप से कोई अन्तर
नहीं गड़ना। लंग गड़ना ही आ-मधोर्द गे अपनाया जे। अपने या ही, भालम-
बोध तला है? इमारी रमणि हो उगका अध्यार है और रचना (अनुवाद नहीं) का
बांन है। इमार गुरजोंने कहा है, 'रमणि नहीं, आपनापन नहीं, तो बर्किन नहीं,
बर्किन काल भी नहीं और रचना भी नहीं।' मैं यही हूँ यो मुझे रमण है। अहीं
और उन्होंने, जिनका युग्म नहीं है।

शीर्ष दूनके विवरी-आदीनक जातन की प्रवृत्तिदा विण्णा सदगीमें, विशेषकर
'आदीनक दिवेटर' हुआरी रमणि के गान्धूष्य को लगायार छोटा करना चला।
गया है। पहुँच अपने रंग स्वयं, फूलभान नाटक पर परी गिराकर हमने द्वारा
का एसा उडाया। फिर दशार्थियाँ ला, फिर पदार्थकाल का, एक दूर जाने कठो-क्या,
जिसे लगायावन: त हम समझ गाय त उनसे दण्डों की बाज़ पाए। अलते उम नर्तन्ज
पर पहुँच राय कि 'दिवेटर' म कुछ नहीं है। दिवेटर पर यदों गिरना है: लोग-क्या
अपन-अपने एक जो हो रहे, तो तो मे विशिष्ट हो-मर्फन योइ रहे हैं और 'हन्मनी'सेज
बान को बे विशिष्ट हो-मर्फनी दा पर्याप द-1ने हैं: गह सव लोना' चिंधियत्
हुआ है, सोचकर आप फटी-की फटी रह जानी है। तो एकदीनक रात पर
उल्लोन चाल चली। गहन 'लोन' मैत बड़न' का, फिर भारत उडाय था, और
आजादी के बाद आदीनक रात; ढोक भूमि तरह दिवेटर, कला, मात्रित्य मर्फन
रचना-सतरों नर यहीं किया गया। पहुँचे या हम कुछ भी अपना याद त रह जाए;
दूसरे, जो कुछ भी हम करे, ज्ञान, दमको प्रेरणा और प्रभाव उन्हीं का हो; तीसरे,
जब भी के चाहे एदो दिवाकर हमें तभी ने रावीमन हात लुट दिवकिन संकार
मालायों में हमें उपकर दे हो। यहीं या उनका द्वारा, यहीं या उनका दिवेट।
इसका मर्फन होता ही रहेण या, वीर जात भी है 'क जो कुछ भी हमें चनाया जाता
है, जो कुछ भी हो।' दक्षाया जाना है, उस हम न्योका। करने चले। इसके लिए
अनियार्थी आवश्यकता भी हम अपनी 'द्वारा' से, हम आपने जड़ रो, जोर रो, रग में,
तमूल में कर जाय, धूम आय अपने आपसे, बष्टीकि अपना कुछ न। याद रहने पर
ही हम दूसरों की दिवायी, जगानी हुई जोज की स्त्रीबार 4 गो जो बाज्य होते
जाते हैं।

आगामी 'भूमि' नया है। रंग-न्यर पर? 'भूमि' शु धातु से बना है। शु माने होता, शुष्ट वर्णित होता... कथमय भवेद्याम्, अस्यः किमभवत्? (मातंक लीला 9/29) उत्तरहीना। यदपन भवेद्याम् (पुनर्मृति 9/127), फृटना, निष्ठलना, उच्य होता। शु धातु का अर्थ है 'बह होना जो पहले नहीं था' ग्रेटर-'इ'—मण्डल हीना। कुलीन् काला हीना। आशिष्—प्रकट हीना। हीने वाला, लम्फन वाला, उपजन वाला, चित्तभु आन्वयु आदित्यादि। और शु को अगर विश्व में जोड़ दिया जाय, शु नो इसका अर्थ है पृथ्वी, अंतरिक्ष अथवा 'स्वर्ग-द्विव गत्वातिव भौमिने भूमिं' (ख्याता-3/4, 18/4)। किसी विशेष प्रक्रिया सात की भी 'शु' कहते हैं। इस निशेष प्रक्रिया के बाद जो होई तिर्मिति हो, जिसमें कुछ धरण करने, साहन करने, प्रकल्पन करने की उपलब्ध हो वह 'भूमि' है। 'शु' धातु है 'पूम' उपर्याग—उत्तर भूमि वह विज्ञा अथवा है, जो किसी विशेष नियन्त्रण-प्रक्रिया के लिए ही बनकर तैयार होता है। हागा गी-एट्रिय परम्परा में कोई भी ग्रंथा ताटक नहीं था, जो इस भूमि का न रहा हो। भूमि का था जोभी उनमें शुभमका थी। अभिज्ञान शास्त्रालय में ग्रन्थ के भूमि निर्माण की प्रक्रिया ही तार्दी पूर्ण है। विश्वाना की जो पद्धति नुरिट है, वह जल इवनाओं द्वारा ले जान वाली वह अर्जन, जो होम करने वाला है, वह वज्रज्ञान, शूल का विधान करने वाले सूर्य और चतुर्मास, जग्न अर्थात् आकाश, सूरजन वा जो पूल है, वह पृथ्वी, जो पर्वत्यों में प्राप्त शब्दाद करती है वह वायु। इन आठ प्रत्यक्ष घटों में वे प्रकट हैं, वह चित्र जात्यों द्वारा करे।' यह है वह प्रक्रिया विभिन्न सूक्ष्म और गाढ़ को भूमि निर्मित होनी है, इसी ओर दर्शक की मनोभय भूमि चित्त भूमि। पिछे नाटक का आरंभ होता है। वह नाटक जो स्पष्ट की गए विशेष प्रकार है।

स्नाक पर आने से शहरें हम देख ले। क 'रंग' लगा है, जो 'भूमि' में जड़ा है। इस रंग का तांत्रिका अर्थ क्या है? रंग-धर्म, भूमि, धान्यकर्ता, अभियान, प्रश्ननुनी-करण और परंपरा मनके विच गगवलाहा, रागमय पित्रवृत्ति को राष्ट्रपता के अर्थ में है। अहोनामवद्विच्छृण्णित्विग्रह इव मर्वनो 'रंग' (अभिज्ञान शास्त्र अलग-1) रंग भाष्यते वर्ण और वर्ण मायने रंग करना। वर्ण यानों रंग का एक विशेष अर्थ भौमि है। जिनका संवेदा अभिनय में है। जारी प्रकार के अभिनय-आंतरिक, बाह्यिक, अहार्य और सांचिक नो विभागों अंतर्मूर्छों (ल्पकिन और व्यक्ति समूहन, संबंधी, शान्तिक) में आपने आपको दफ्तर बनाया है और तिनमें अंतर्मूर्छ और अपर रस बनते हैं (वणिनामध्यरांजना ? यानों संघर्षमा मायें)। और जो इन नववेदों लार्या है, मगलों को उपने वाली सर्वकर्मों और गणेश उपकी जटना करता है। मंगलाना व कल्पों वाले व्याणीवित्तावकी। यानों के लाल हुं य वंदना? इति रंग को अनिवार्यता देता है? कदोंकि विना शब्दा और विश्वास के रंग में गंगे द्वारा अपनी अनुकरण में रिष्या हृष्ट रंगों को नहीं देख सकता। रंग-न्यर में उत्त्व वायन जीप अभिज्ञान—लानद। अन-

रंग में अभिज्ञान है। द्वारा रंग जब वही है रुपान् द्वारा दिखा म

रंग, भूमि कर रखा है :

रुप वही रूप सुंदरता, लालित है। नज़ा जा रह है। जान ही हो है, यही नाटक प्रदेश से सद में रंगभूमि पर, वह का मूल्यान्तर हो रहा है। इनके रूप का प्रथम ही गहरा दृष्टकर गिरे हैं और में केवल नु

यह नहीं। जिसमें अपना रंग चादी किए आर्या उसने पहले रंग की अपेक्षा (गीतों लगाना) लाने उस रंगमंत्र (चिनियांशिक त्राय) अ

हमें अपनी र अपनी उम गर्नेव भूमि की भूमिका

भ' भू धारु मे यता है। भू माने
अम्बः किमप्रवृत्ति? (मानव लोला
नाम्प्रवृत्ति १/१२७), फृता, निकलन,
वा पहेत तदो दा 'शंगोभू' सांद
कर होता। हंति वासा, यतन वाला,
तोर भू की भगव विग्रह मे लोट दिया
वा 'रजने-दिवं वस्त्रानिव भोद्यते
विकिष्ट गाय को भो 'भू' कहते हैं। वर्ष
उत्सव भूल धारण करने, सहन करने,
भू' भारु हे 'भू' उपराने- अग्र भूमि
निर्माण-विधा के बाद ही विकल
भी एगा नाटक नहीं था, जो अग्र भूमि
भूमिका थी। अधिकार शाकुलम् मे
जा है- 'वयामा' को जो इही नृ०
अग्र, जो हृष्म घटो वाला है वह
ओर नन्दना, शब्द अर्थात् जाकर,
मे प्राण संचर करती है वह वासु-
जित आपके 'था के'। यह है वह
निर्मित होती है, रुकी ओर दलक की
का आरंभ होता है। वह नाटक जो

'रंग' ज्या है, जो 'भूमि' गे जुड़ा है।
न, भूमि, शीतवार, औपनिय, प्रभुनी-
गगमन चिकित्सा की गायुण्डा के अथे
मर्वनो 'रंग' (अभिज्ञ शाकुलम् १)
। यह याती रंग का। एक विशेष अर्थ
बारो प्रवार के अधिकार अधिक,
रथ समूहों (पर्वका और जाकि) समूक्तन,
ज्ञाता है और जिन से अन्तर कर और रथ
मिलता है। और जो इस राजके नहीं है, संगतों
के बहुता ज्ञाता है (पर्वताना न करती है?
न? इस रंग की अधिकारिता करती है?
ये हूए आरे अप्रकरण मे शिखत हैं इनक
में अंगा-अधिकार- आतंद। अग्र-

रा मे अभिवाय है। एक मंगूण उल्जाम और आतरिक उत्साह। तुरा अगही रूपक
है। पूर्ण रंग जब थाना रुग प्रारण कर अभिव्यक्त होता है, प्रकाढ होता है, तो
वही है सरक और रूपक गे आता है नाटक। इसके विपरीत 'इश्वा' विलुप्त
हृषी विक्ष न आता है।

एवं भूमि अग्र वाल इगका गुण मन्य तुलयादाम ने एक चौगाई मे परिवित
कर रखा है :

(ग्रामीण जब गिय पगु शारी।

देखि रूप मोहि नव नारी॥

हा-- वही ल्याक है। सरक न गूर्ज है। भूमि रंग मे पूरी है। चारों ओर
मूर्दना, जर्निय और उत्साह के बीच गिब-धूपक का नाटक (रूपक) रचा हुआ
है। रचा जा रहा है। एक ही जिमचून सभी दर्शक गमाज (नर नारी) गिरा जैदा
है। जानकी ही भूल पाया है नदोंकि वही भूमिका है, भूगता विगमे व्याही जाली
है। वही नाटक जा भूल रियर है, यही विवाहा-बंद्रह है। अतः दोगुलन पर उपरे
प्रवेश से दृश्य मांहे हुए तुलयादाम हैं। धनुष-धर्ग हीना-नारी यही 'भू' है और उम
रंगभूमि पर वह नाटक-- यह स्वरूप नोडकर एक तर्क युद
का नुश्चान होता है। यहाँ तांडकर ही महारंतन विवाह तथाय है। यहाँ
ऐसा धनुष यज रूपक ला। यह बहा रहा है। राम और जानकी के विवाह का धनुष-
प्राप्ति के परागिसना नहा। तांडकर प्रकट होता, जो नाटक 'भल-या, उदित होता,
यही है रंग।' ग्रामीण का स्वरक, रूपक था नाटक।

इनके विवाह= द्वाषा और विषेद् मे ऐके दूटना और तांडना है, वहाँ विलने
का प्रथा ही जही है। विलन के भाव द्वाषा-विषेद् मे ही नहीं है। वहाँ वे स्वयं
दूटनर भाव हैं। अपोः पर। वे मता चायल रहे हैं। यथा-भाव संश्लिष्ट हैं। उनके
बोध मे केवल भूमि अपराध और नृगुणोंध हैं।

वह कलना करना हूमारे विलुप्त कठिन है कि कोई ऐसा भी असम ही भक्ता है
जिसमे अपना यंग न हो। कवा और याहिन्य न ही हालांकि वही अप्यन् मासाल्य-
वादी किर आनुनादा-वादी परिचय ने भारत-भूमि पर किया। उराँ ग्रकिया से
उत्तरे यहें रंग को भूमि हो करता। हम कट अपने आप ते। किर उसने 'इभी'
और विषेद् (संव) के अभाव नहीं, बल्क अशोकना मे दृग्भवे विश्राद्य और दोध
की जागरात छोड़ा, छिल्ला किया। किर रावार-माझमों के प्रभाव से उत्तर द्वाषा,
उम रंगमच (विषेद्) को उत्तरोत्तर अप्रार्थित कर दिया। यही उनका धोय-
भिवायक दृग्भव था।

हम अपनी द्वाष्म पर जाना है। यंव से ग्रामीण की वानस्पति गम। इसे
अपनी उन गोदानों को दाना है, शहूण करता है, जिसे हम प्राप्ति 'मध,' अपनी
भूमि की भूमिका ने प्राप्ति हो रखे। इगका यह जब विलुप्त नहीं कि हम वीचे

मृदु जाथे और ग्राचोनना में चले जावं। हम अपनी जिग रंगभूमि को अपनाने जा रहे हैं, वहीं तो हमारा 'स्व' है। यहीं उसके पास्त या अपास्त भूति की नसीटी है। अब सबसे पहले हमारी अनुसाधान-वृत्ति का काम है कि वह अपनो 'रंगभूमि' कल्पोटी का निरंतर उपयोग करे और हमारे द्वारा जिसका अनुकरण या अनुमरण किया जा रहा है, उसमें से केवल उन्हीं तत्त्वों को स्वीकार करे हम, जो हमारी 'भूमि' हमारे 'रंग' के लिए हैं। अपनों वह भूमि हमें प्राप्त करता है। आज हमारी इष्टिग्न भूमिहीन नहीं है। हम आपनी भूमि से बाकाशदा उच्छाङ्क गये हैं। उस भूमि की उन्नति यह देखनायी जाने की कोईश्वा अब भी नह रही है। ऐसी ही विकास विषयति में हमारो रंग-भूमि जग रही है कि रंगकर्म अपनी राम्भगि, अपने 'स्व' के लधीन ही सभव है।

भाद्रपदी भूमिहीन तथी हाना है जब वह अपनी संस्कृति (स्वधर्म) से उखाड़ा जाना है, पर उखड़ता है। मांडने थियेटर ने उसी श्रगात्मक पर हमें उच्छितन किया है। उन्नीम सौ संतानीस तक वह प्रक्रिया पूरी कर उन्होंने हमे रखते नहीं, आज तक करके पह कहा कि भारतवर्ष में अब अपना कुछ भी नहीं रहा। पह अविकसित है। हम इसे विकासित यानी आइनिक करेंगे। मतलब वे देखे हमें अगरी भूमि। कैसी धर्मकर बात है। जब तक अपनी संस्कृति थी, हमें ऐसी बात कीते कह सकता था? जब तक आपनी संस्कृति थी, तब तक यत्कामी जीवन अपने रंग में प्रसिद्धात्मक था। रंगभूमि का प्रत्येक धर्म, अपने नाट्य का। प्रत्येक पर्थ एक-दूसरे से परिव्याप्त था, जैसे दूसरी में रंग। कहीं कोई जाता नहीं थी, कर्मिक संस्कृति स्वयंभूमि। नाटककार, अभिनेता जिस शब्द, तिस शब्दीक, चिह्न, मुद्रा, लाप, लंद, जिग भाव और विचार की अगरी कला में प्रयुक्त करता था, उसे दर्शक ममाज (मरनारी) सहज ही प्रहण कर लेता था। आज जब अपनी कोई संस्कृति नहीं, तब नाटक लिखना, करना किसने सकता है? जो कभी आनंदगम करेंगे था, पर्यंत आ वहो हाना संकटगुण ही गया। नाटककर कहीं, अभिनेता कहीं, दर्शक कहीं, साक्षी जाता था इन्होंने दर्शक की आपनी भूमि नहीं, वहाँ हम हमारेधर्म हीकर एकनुहान कर छढ़े हो सके।

भूमि माने अपना धर्म। रंग माने अपनी भूमि। हमारी यह भूमि हमारो कोई नहीं दीन सकता। हमें इसको स्वरूप है। भूमि का एक यज्ञात्मक रूपक हृष्णरे इर्षण में है। हमारे अस्तित्व की लिपि 'अवर्गभूमि शाखा' के रूपक में सुरक्षित है, जिसे विषय देवेचाली 'भूमि' और जिसे दिव्यान का अवकाश देनेवाला आकाश नीचे है। पहीं हमारी रंगभूमि का यज्ञात्मक, अवाश रूपक-नाटक है।

हमारी सानाननना को वे में विद्यमान है। शहदा महां है। अत् : धा। अद् : स्वयं में अर्थ सत्य और विवनता है। इस प्रकार भवति अद्वा शब्द की निष्पत्ति है। पूर्ण भाव उत्पन्न होना सापने की बात्ता हो, कफ दृष्ट्य हो....।

और विश्वभा?

विष्वास शब्द के पूर्व आस्तिक अर्थ है, जिसी के

मतलब, यत्प और से में जोहना ही गुप्तार्थ है, स्तर पर वही अपने वही लिए रंगभूमि के प्रत्येक व पाना, अभिनेता शहदा, दर्शकिना न कुछ विषयाया था जा सकता और न दिख स

शहदा और दिव्याम, साथ नहीं अनुचूत होते। गहने रंग फिर भूमि, गहने तथा) फिर व्रतक (भाव की

अपनों जित रंगभूमि को आयाने जा
ल या अन्नाधी होने ना चाहीदी है।
बास है कि इन अपनी 'रंगभूमि'
तारा जिलका अनुवरण एवं अनुवरण
को स्थोकत बोहे हम, जो हमारी
हमें प्राप्त करनी है। आज हमारी
काष्ठा उम्मादे गय हैं। इस भूमि की
चल रही है। ऐसी ही विरुद्ध स्थिति
एवं अपनी संरक्षित अपने 'स्व' के व्याधिन

अपनों नमर्कुन (मर्कुर) से उभाड़ा
मों उत्पन्न पर हमे लोचिलन किया
पूरी बात उन्होंने हमें स्वतंत्र नहीं,
बल्कि अपना कुछ भी नहीं रखा। यह
देख करें। मनस्य वे देंगे हमें वष-डि
सल्फ्रिट भी, हमें ग्रीष्म भाव कोन कह
तब तक पावा। उन्नेन अपने रंग से
तो नाट्य का प्रत्येक पद एक-दूसरे में
बाधा नहीं भी, ज्योंकि संरक्षित अवाय
श्रृंतिक, निहृ, नुद्र, लय, छंद, जिस
करना था, उसे दर्शक समाज (नर-
ज जय अपनी शोई संरक्षित नहीं, नब
है। जो कभी आनंदनय कर्म था, पर्य
नार कहीं, अभिनेता बहीं, दर्शक कहीं,
एवं अभूमि नहीं, जहाँ हम समानधार्मी
ही भूमि। हमारी परं भूमि हमें कोई
सिंह का एक सनातन रूपक हमारे दर्शन
त्रयम् शाप्तः शाप्तः के रूपक में भूमिता है,
वेस्त्रर, वा अवाय, एवं भावाला आकाश
अवाय छाकन्दरक है।

रंगभूमि : सनातन दृष्टि

हमारी सनातनता को दारनविकता और उमका योध दो पक्षों, अद्वा और विश्वास
में विद्यान है। अद्वा शब्दमें जो कभी चुकी नहीं, जो निरंतर पूरी होनी रही
है। धन् + धा = अद् + दधा = अद्वा। अद्वा शब्द के पहले शब्द अव्यय है, जिसका
स्वयं में वर्ण स्वय और विश्वास से है। यह अव्यय भी धातु से अन् प्रत्यय लगने पर
बनता है। इस प्रकार अन् अव्ययपूर्वक 'धा' धातु से अह और टाप प्रत्यय लगने पर
अद्वा शब्द ने निष्पत्ति होती है। इगका अधी द्वे ---किसी के प्रति आस्था के साथ
पूज्य भाव उत्पन्न होता। इसका दिवीष वर्ण आर्थो-सामने के भाव में है। आपने-
सामने की नारों हो, कपा हो, संवाद हो, दृश्य हो, अभिनेत-दर्शक हो, कर्ता और
इष्टा हो...।

और विश्वास ?

विश्वास शब्द के पूर्व 'वि' उपसन है। 'एवत' धातु है, और धज्ज प्रत्यय है। इसका
आन्द्रिक अर्थ है, किसी के गुण, पात्रता के प्रति उत्पन्न होने वाला दृढ़ निष्पत्ति-भाव।

महालब, गल्ल और सनातनता के पहले रूप धदा को, उसके दूसरे रूप विश्वास
से बोहना ही गुप्तरार्थ है, जो एक बोहर औरवत-साधना है, दूसरी ओर दित्त के अन्य
स्तर पर वही अपने यही रूपक है। नाट्य है, नाटक है, नाट्य-प्रस्तुति है। इसी-
लिए रंगभूमि के प्रत्येक आपाम और तत्व में यही है तात्पर। नथा अद्वा, विश्वास-
पात्रा, अभिनेता शाप्ता, दर्शक विश्वास, लोक अद्वा, आद्वा विश्वास, अर्थात् जिसके
विना न कुछ दिशाया था, प्रस्तुत किया जा सकता है, न जिसके विना कुछ किया
जा सकता और न दिव सकता है। 'याप्तां विना न पर्यन्ति'।

अद्वा और विश्वास, ये दोनों एक ही सत्य वे दो पक्ष हैं जो एक समय एक
साथ नहीं अनुभूत होते वा दिखते। जिन्दे कम से ही देखा जा सकता है—जैसे
पहले रंग फिर अभूमि, पहले जावानी-पार्वती फिर शिव, पहले भाव (नाटक, अभि-
नय) फिर पाहुक (भाव को यह करने वाला दर्शक), तभी गल्ल वो गूण रूप से देखा

रूप से वेद से के तत्त्वों का प्रमुख अंग है। इतिहास, पुराण, वर्ष और

अपने से नियन्त्रिके पाशक ज्ञाला भवति है। इसके विषय उसके बाहर उसके आत्मक विषय है। प्रथमी की विषयता और विषयता है।

गा गाकरा है। नभी अपने यहाँ भाँत कथा ही, कोई कला ही, साहित्य ही, शब्दमें निर्गतःता (थड़) और फूर्ता (विष्वास) को प्रतीक करने वाले अधिकारी में किसी रूप में व्यजित हैं। इसके लिए विवरण परिचय का विषेष एक किंवद्दि माल है, 'हासा' के बल एक छटना है।

अपने यहाँ धर्म (गरुदानि) के अधीन धर्म और विश्वास अशीन अगुणतांश और असंक्षिप्त का शोध है, तभी नी हम वर्तमान में रहत, वर्तमान को जोन द्वारा समानग की रहते हैं। इस अतीत में वंभते हैं, न भवित्व को नियन्त्रिता किता में वर्तमान को विस्तारते हैं। हम गह इतिहास का बांध नहीं ढाँते। इतिहास हमारे नाट्य में इनिहास-नुस्खा नहीं, वे वह भाव-नुस्खा और लीला-नुस्खा ही हैं, जिनकी होते रहने की रामजना नहीं नहीं चुकती। हमारी कथा में, नाट्य के लक्ष्यों उपरिति गदा है, वे रहनाहूँ हैं हमारे बांध।

इनीजिंग हमारे यहाँ मंच की अवधारणा नहीं, बल्कि भूमि को जगधारणा है। भूमि ही मगमन प्रजनन, गुरुत्व ने भविष्याटात्री है। हमारी मंदिरानि से भूमि दुरे विश्वास नाटक, पूरी वस्तुया का आधार है। संभवतः हमीनिप भूमि के हमारे यहाँ नं नहा भेजा है और इसकी दूजता का विधान है। वही कोइ भी उत्तरव ही, पर्व ही, धार्मक अनुष्ठान ही, ऐसा उद्धीर्ण अवध्य किया जाता है कि 'भूमि येठी माता है, मैं भूमि का पुत्र हूँ।' इस गरुह भूमि हमारी साक्षीक नेता। का मूल नहूँ है। यह नाट्य की विधायिका शक्ति है। इसी भूमि नत्व में ही नाट्य के 'इक्षु' और 'कृष्ण' की जंजगा है। भारतीय नाट्य में सर्वत्र रामभूमि वही ही अपेक्षना है; इनका प्रमाण हमारी मंगूँ लोकनिता। और गोदन्धिते व्यापत है।

हमारी संभूति में जो गव्य कला के लाल पर सर्वत्र व्यवहृत हुआ है, वह रंग-भूमि ही है, क्योंकि हृष्ण देवता है कि भूमा का नाम गा डो भूमि पर ही निर्दिग्दय है। माता शिराट वेल इनी भूमि पर ही चटित ही रहा है। भूमि ना एक विशेष अथ नाट्य की इटि में नह रहाना है, जहा एककी दृष्टि जी हुई ही। तभी हमारी योग्यता में जिल नाट्य के प्रतीक और व्यवहार हुआ है वह है नाट्य। नाट्य का वहुत बड़ा अर्थ हमारे यहा - अध्ययन, अज्ञ द्वारा प्राप्ति विद्या गया। जोई जान नहीं, विद्या नहीं, कला नहीं, योग नहीं, कर्म नहीं जो इस नाट्य में न रहा जाता है। अरन मुख्य ने अपने नाट्यकलाय के पहली ही अठाप में नाट्य की उत्तरिता को विवरण दिया है, अपने नाट्य की तांत्रिक अर्थवत्। के प्रति लंबें भरे दर्दे हैं।

इस 'नाट्य' से जित मह-सर्वत देवों का भ्रम होना है। वेहः पहुँचा नाट्य के अंतर्गत नाटक देखा जै देवोः और सूर्या जा मक्षः इमरा इमका अग्नोग्य विद्यः अपा है, अर्थात् यह वर्णयनदमो है, इम्मुखियमो अर्थात् वह अग्निनामो हारा रंगभूमि वर दर्शनों के सम्मुख सेला जाता है, तिने मन घणों के लाल जमान

हो, जोई कला है, गार्हित्य हो, गवाम
की। प्रतीक करने से दोष अभिन्नत्य से
प्रतीक विचार अंतस का विषेषण एक

बद्धा और विचार अपेक्षा अपेक्षाकृत
विचार में छह, वर्णन की तरीके हुए
होते हैं, न भवित्य की विचारितादिका वे
स का बाह्य नहीं होते। इसलिए हमारे
शुल्क और लीव-जून्युज ही है विचारी
हमारी व्यापे नाट्य में उन्होंने उप-

या दृश्य, अधिक भूमि की व्यवाहारना है।
की है। हमारी भूमि ने अस्मिन्न विचार
द्वारा विभिन्न सूर्यों को हमारे पास का नाट्य
संहार कोई भा उठाया है, वह ही, अस्मिक
ताजा है कि 'भूमि' संहीन हमारा है, जैसे भूचि
कृत चित्तन ना तूल नहीं है। यह समाज
से ही नाट्य न 'दिव्य' और 'काल' की
भूमि की ही अवधारणा है, इसका असाधा
नाम्य है।

लार पर श्वेत अवहन हुआ है, वह रंग
का सार रंग इसी भूमि पर ही दृष्टि-
पा हो पड़ा हो गया है। भूमि का एक
है, जोड़ी भूमि दूसरे भूमि हुई है। नभों
में दिम शब्द का प्रकार और अवहार
अथ दूसरे दूसरे अव्यय, अवयण,
विद्य नहीं, कला नहीं लोग नहीं कभी
भ्रमा भूमि के बावें न स्थान यह के गहरे
विद्युत दिया है, उसम नाट्य की गंडी

की जान होता है, यहैं; तला नाट्य
और गृहा ता नके, इसना उसका प्रयोग
है, प्रभुत्वामी अवधार वह औपेक्षीयी
न जाना है, किंतु गव वर्ण के लोग गमान

रूप रो देख गफले हैं और दृगवा अंतर्वे ने सकते हैं, नीमरा इसम सभी शास्त्रों
के शस्त्रों का विलयण और सभी शिव्यों का प्रगतुंते होती है; जीवा इनके भार
प्रमुख अंत हैं: पाठ्य जैसे वाचक कहते हैं, गीत, अधिनाय और भूमि, इसमें
हातिहास, पुराण, जोक से नी लोगाए ली जानी है, पाचवा इसके द्वारा लोग
धर्म, अर्थ और काम प्राप्त कर सकते हैं।

अपने से ऊपर उपरी दृजडी (परिचयी विषेषण) भूमिय को बेवल
निष्पत्ति के पाव में बंधा हुआ देखती है। उमिला दृजडी के विषेषण न आवेग को
जबाला भासकती है तथा चूकारी हुई असारे लटियों को बृशु के गते में ले जाती
है। इसके लियरीन भास्तीय नाट्य न गायक हुए कठिनाई पर विनाय पा नेवा है।
उसके बाद बग्न और बांधिक शास्त्रों के धीर का नंपये दमके शर्गोर और उत्तरों
आत्मा को खोड़न नहीं करता, वहा वह दर्शकों का निर्गा मानसिक वंशवे वा
शास्त्रिक विषाद का भोक्ता नहीं बनता। तुनारी विषेषण में प्रदृष्ट, मानव की
दिवाजा और गोड़ की उत्तेज करती है। अपेक्षित वार उसका उग्जाता तक करती
है। प्रश्निकों हुवयहन कठोराद दृजडी को और घनीभूत कर देती है। इसके
विपरीत भास्तीय नाट्य ने प्रहणि भूमिय को मावनाओं, कमों और संसेदनओं को
बहुत सहानुभूति के साथ सहेजती है एवं उसके ही और विषेषण में भाग लेती है।
जब शकुनजा, कण भूषि के बाश्रम से चिदा लेती है तो लताएं पुरजा ताती हैं,
पुनर्गायक पाप चरना बंद कर देती है। यहां प्रति चन्द्रव का हो एक अंग है।
पश्चिम में प्रश्निक पत्रुप की विशेषण है। भूमिय के निर् प्रश्निके पाते खड़ो रक्त
में सुने हुए होते हैं।

जिस भूमि पर हवारी आंचे केतित हैं, इसके समय में यही दमारे रंगभूमि
और पढ़ी हपाचा नाट्य है। इस रंगभूमि और नाट्य की दृम कीरे देखे और कैसे
जानें, वह हमारे द्विग वहन महावर्षादेव है। जहाँ शोड़ी देव वाद कुछ अथवादिया हुएगा
अधिन विग रंगभूमि गाय, किसी पात्र की भूमिका में निमो अभिनेता वा प्रदेश
अधिन अनादेण होगा, उसी दृम देवन के निर दृग्यारी अवधार अवधारित हैं। इसलिए
वह रथान, वह काल, यह धूप तुरं रापाव के द्विग वहन अधिनान हो जाना है।

जो अभी रंगभूमि पर विविध हुआ है और जिस हम प्रकाश में देखने लगे हैं,
उसके द्वारा हम एक ऐसा जान हासिल करते रहते हैं जो जनी वह अंधकार में
छिपा है। इस मंडेश ने एक महात्म्यपूर्ण बात यह अधर रहा है कि विष्य भूषि पर
इन्हीं मात्रों आंचे लगती हैं वह स्थान नवके निर् मानसिक प्रयोगल पर अद्वेष हो
जाना है। उस स्वामानिक भी है, कांगड़ि नव हम किती जगह वो देखने लगते हैं जो
स्वामान वह यह यस्तु विविध हो जाती है। इस विशिष्ट भूमि पर हम विशिष्ट कों

ही देखते हैं। इसका अर्थ यह सो है कि जब हम निको शासान्त बननु की भी देखते लगते हैं तब वह असामान्य हो जाती है। यही है रंग रसने और देखने की प्रक्रिया और उसकी उपस्थिति।

भूमि में रंग किसे उत्पन्न हो? रंग का अर्थ है उल्लास और उत्साह। इसके सिए आवश्यक हैं सामंजस्य। रंग पैदा होने की एक भूमि शर्त है रिक्त कागम होना। प्रत्येक सहकारी का दूसरे बहकारी से रिक्ता और इस पूरे सामाजिक बृहत्तर समाज से रिक्ता यिलकर भूमि पर एक नये रंग को उद्भासित करता है। इस तरह जब एक-एक के रंग में सहकार रंग यिल जाता है, और सबका रंग एक रंग हो। उठता है जब नास्तिकिं रंग की निष्पत्ति होती है। एक व्यक्ति के रंग समंड होता है, पर जब तोगःम अवित्तियों के भी का सम्मिलन होता है तो उसमें भी एक चित्र उत्पन्न है, वह कल। जो दुनिया का एक अविद्येचनोपयं रंग होता है। एक अन्य प्रभुता शर्त है एक की दूसरे के प्रति परस्पर अनुकूलता।

जिदी में रंग कब पैदा होता है? जब परिवार या समाज का एक सदस्य दूसरे के प्रति अनुकूल होता है। इस अनुकूलता में कोई दबाव नहीं रहता। यह भूमि ही जिदी में एक रंग पैदा करती है। रंग तथा नहीं पैदा होता, या रंग दब दबरंग हो जाता है गर कल्पा रह जाता है जब एक रंग अपने अद्विकार में केंद्रित होकर पूरा आचरण करने लगता है। कि ऐसा रंग स्वयंसेव यिशाप्ट है, मैं दूसरे के लिए अपनी विशिष्टता का क्यों ल्याग करूँ? विशेष रंग वाप नहीं व्यक्तित्वाद, रंग-विरोधी है। वह विगट जहाँ जहाँ एक ही रंग में सारे रंग घुसमिल जाते हैं, वह परस्पर अनुशूलना से ही संभव है।

भूमि पर जहाँ रंग उत्पन्न होता है वहाँ किसी अभिनेता का प्रवेश निहित है। पर्याप्ति में इसके लिए शब्द 'एट्टौ' है। हमारे नाट्य में इसके लिए कुछ महत्वपूर्ण गद्दर मैं जैरे अवतरण, अवतरण! 'अवतरण' और 'अवतारण' जैसे शब्द अभिनेता। दारा भयभूमि पर प्रवेश के अर्थ की बड़ी गहराई और व्यापकता देते हैं। ये 'अव-तरण' के भाव को प्रकट करते हैं। कल्पना जीवित कि रंगशाना में दर्शक सामर्ज्य चुपचाप देता है, रंगभूमि पर पृष्ठ अंदर है। उस अधिकार पर, उस अनुरूप में अभिनेता भूमि पर प्रवेश के गायत्री प्रवेश करता है। इसकी व्यापकता क्या है? यही कि अभिनेता का प्रवेश हो एक ऐसा प्रकाश है जिससे उस अंदर में किसी राजचार्द का अवतरण होने लग रहा है। भारतीय गंस्कृति में नटराज, नटवर, ईश्वर, खीला-पारी और 'अवतार' के कितने ही प्रतीक हूँ में निलेते हैं। अभिनेता के प्रवेश के मंदिर में जरा यह प्रमुख अपने रामचरितमानक में देखिए।

भय, प्रगट कृपाला परम दयाला औरान्या हिनकारी।

दृश्यित महापर्वी मुनिमनहारी अद्भुत रूप विचारी॥

विस्मी मानसिक वरतु को भी देखने हैं रंग रचने और देखने की प्रक्रिया

अर्थ है उल्लङ्घन और उल्लास। इसके साथ एक मुख्य गति है रिति कामय लाला और इत्यापूर्व समाज का युहस्तर को उद्भासित करता है। इस अर्थ में तब तो है, और यद्यपि रंग एक रंग ही है। एक अक्षित ना या बसंड होना चाहना होता है नो उमसे जो एक लिपि निरचनीय रंग होता है। एक अन्य अनुशासन।

परिचार या गमतन का एक सदस्य तो संकोइ इवाय नहीं रहतो। यह रंग तब नहीं आया होता, या रंग तब तब एक राय अपने अद्विकार में केंद्रित रंग लवयमेय विशिष्ट है, जैसे दूरारे के विशेष रंग का यह अविक्षियाद, रंग-में रातरे रंग पुजायिल जाते हैं, वह

लोग अभिनेता का प्रवेश निहारते हैं। नाट्य में इसके लिए बृहु भहव्यांगों पैर 'बबनारिं' जैसे गद्द अभिनेता हैं और व्यापकता देते हैं। ये 'अव-जिए' कि रागाला पं दर्शक तमाज़ आ है। उस अधिकारने, उन अद्वय में है। इसकी व्याख्या क्या है? वही जिम्मे उस अंतरे में किसी सत्त्वाई तंत्रे नदगात्र, नदवर, ईश्वर, जीला-में मिलते हैं। अभिनेता के प्रवेश के दोषण।

कौसल्या हिनकाने।
अद्वय का विचारी।।

नाट्य मीडिय

लोचन अभिनेता नन अवस्थामें निज आनुष्ठ भुज्ञारो।
भूयन वनमाला, नयन विमाला, भीमा सिद्ध खरायो।

क्षुद्रांड निकाया निरभित माया। रोग रोग ग्रनि वेद कहे।

कौशल्या रूपी मा-दर्शक के सामने ज़द्य का अवतरण इस दिवाड़ रूप में हुआ कि जिम्मे देखकर कौसल्या की आँखें नहीं मुदो, हालांकि वह उस विषुद्ध अद्वय स्वयं को देखकर विस्मित और चकित अवस्था हो गयी। वह कुछ भी नहीं समझ पायी, वेतल आश्चर्येनकित हो तब के उस विष्वस्त्रहृष्ट नो देखती रह गयी। तब उस स्वयं न अपार्न उस जिराड़ अभिनेता न दर्शकलयी मां से

'कहि काप सुहार्द मानु बुझाई जेहि प्रकार तुम प्रेम लहे।'

अर्थात् उस अभिनेता ने मां को वह कमा सुनायी भीर समझाया, किंतु मां को वह प्राणीनि संभव हुई एक पुत्र प्रेम कमा है, भीर व्रद्ध का अवतरण पुत्र हृष्ट में भी समव है। दर्शक मा के हृष्ट में ईन्वर हृष्ट से जब व्रेष (अद्वय) और विष्वस्त्रहृष्ट उपासित हुआ तब वे बोलीं :

माता पुत्रि बोसी सो मति हाली नजहु तान यह स्वय।

कौजि सिमुलोका अति ग्रियमोला यह सुख परम अनूप।

सुनि भजन मुजाना रोदन ठाना होइ वासक गुरमूप।

दाद्य-प्रस्तुति प्रवेश के गतर पर और रंगभूमि पर अभिनेता के अवतरण के ग्रहण आग्रोह दृष्टि को समझने के सिए यह प्रसंग बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें प्रवेश का जो पहला दृश्य है वह अवतरण है। दूसरा दृश्य, जब वह मां के कहने से शिशु होकर रोत लगते हैं, यह उस अवतरण की अपनी सूमिका है गो एक और जितना ही सत्य है उनना ही ज्ञाप जीला भाव है। यह उदाहरण 'अवस्थानुरूपितानाट्यम्' को मनो दृंग से तमग्ने के लिए महत्वपूर्ण उदाहरण है।

'अवस्थानुरूपितानाट्यम्' में ही अवधारणा, अनुकृति और नाट्य। इसका अर्थ यह है कि अवधारणा की अनुरूपित ही नाट्य अवधारणा रंगभूमि है। अवस्था का क्या अर्थ है? 'नदवस्था'! अर्थात् उत्तर दशा की पहुंच वा हुआ जिसमें काल, दशा, नम, धन्ति और या। इस गूरी लिप्तिया समिलित हैं। अनुकृति का क्या अर्थ है? अनुकृति में अभिनेता नकल नहीं, अनुकृति भी नहीं, वर्त्तक सत्त्व या तत्त्व के समानांतर एक सूत्र, एक रूप है। इसमें मामानांतर का बोध है। इस नाट्य अनुरूपि का विष्वस्त्रहृष्ट के 'इमिटेशन' में संबंध अत्यन्त भाव है। विष्वस्त्रमें 'इमिटेशन' के दल 'एकमन' का ही है। इसका यहां अनुकृति पूरी अवस्था का है। 'इमिटेशन' आरोपण है, शारीरिक अवधारणा ही हू-ज्हू प्रतिकृति है।

उन दोनों तरंगद्वय भिन्न भावों को समझने के लिए रंगभूमि के गंदर्भ में हम धोड़ और गहरे जाना होगा जहां 'अनुकृति' और 'इमिटेशन' की दृवित्याद में दो

पिन मंडुनियों का प्रमुखात है। यहां पह दृश्य जगत नियं और अनियं दोनों नदीों के भीतर से देखा जाता है। आखोब दृष्टि में यह पूरा जगत पदार्थ नहीं, अपितु पदार्थ और भाव दोनों का एकत्रणः स्फुर है। यह ब्रह्म के जैविक की पिल्ह गता है जिससे कभी कोई परिवर्तन नहीं होता तभी इसे गित्य कहा गया है। पर प्रत्यक्षः यह शब्द शब्देण है। जब क्षेत्र अकेले के अद्वा तो उद्धार कर यह नहीं कहते हैं कि ब्रह्म जगत मिथ्या है। तब इस मंडर्म में लोग यह जगत का एक नहीं उठाते कि यदि वस्त्र सल्ल है तो यह जगत जो इसी की आत्मा-भिधिक्षा, आत्मप्रदाता है, वह अमर्त्य कैसे है? पूजे ब्रह्म की मध्यादि को जगत निया नाहिए। जगत जो जीन मिथ्ये वाला पूज कहा गया है। जीन एक ही वस्तु के नीम आवाम है। शुह चेतन्य, वह चेतन्य है। संजाम, सब द्वारा उस चेतन्य का अनुभव कर लिता। असीन् जेना का जान, जेना की पहचान, जेना की देख लिता। यह ही शब्द का वाचनिक रूप है। इस अर्थ में यह दृश्य जगत भी पूरे का है। नहीं है। जगत के मंडर्म में अनात्म उसे कहा गया है जो अनियं है अर्थात् यो परिवर्तनील है, जो नियंत्र बदलता रहता है।

उभ गरु अवस्था को अनुश्रुति में दो मूल भाष्य भाजनीहैं। हे अवस्था के गमनान्तर और समान दृश्य, और इस सूत्रन के प्रति सदा नीचा भाव रखना। अभी यह स्पष्ट है कि हमारे यहा काम, कोष, धूणा, जृगुणा इन मन भावों को भी इसी भूमिका से देखा गया। हेष अवस्था को अनुश्रुति में अनेक प्राप्ति करते हैं, जिन्हींका इस मालूम है कि इसमें नियं और अनियं क्या है।

दौसा द्वारक विषयोन, 'एकान्त' के 'हस्तिनेन' के वाचेणीन तथ्य हैं - यह जगत एक वयार्थ पदार्थ है, यह जगत एक ही वार के लिए है, 'गौड' और इस जगत के बीच में एक दुलभय दूरी है। इस दूरी के मावे में एक और 'गिन' का वापर ही तो दूरी और प्राप्तिकर्ता है। वस्तु या गदार्थक्षय इस जगत के प्रति परिचय के अन्तर्वातः एक ही रूप सप्तव है कि गदार्थ पर गतुप्य अथवा धृपत्य और वर्षवत्र किमी नहीं बना रहे।¹

इसी का एल है कि वहां के संगूण नद्य का अग्निकान संघर्ष है, देन है, देन और दूरी के कारण एक अवाध लड़ाई है। वहां प्रकृति और मनुष्य दोनों के मध्य इन्हीं देन और लेन की दोनों के वजे एक-दूसरे का जगत् उत्तर के लिए रखनीजित है। इसके विपरीत यहां प्रत्येक वस्तु, पदार्थ या गतुप्य में से एक और प्रधार्थ के मंडर्म में एक वर्षद्वान् एकाना, लेतव, उल्जास और आनन्द का भाव है। इसमें एक हमारा ईज्जतीय भाव है, उसे ही हमने यहा आत्मभाव अवस्था भाजा है।

गो के स्त्री पर हमारा अवित्तव विवाहा भानवेष्य है, अर्थात् गिरना अनियं है, वहां हमारा नहीं है। अनियान फारुःक्षम् के नात्य में जो संपूर्ण हो रहा गया है, वह इसी अनियं के ही आधार पर छढ़ा है अथात् जहां इन मध्य का अभिज्ञान

है, वही नाट्य है। अर्थात् अध्यात्म से है उत्तरक यही सकेन

एक द्वीप विग्रह है। जिसको के अर्थात् भाजनीग ज्ञानवारा या दुरी है, यहां दृश्य है। उत्तरक यहां एक लोक, लोक या विद्या ने विश्वभाव है, विश्वमें यह। विवेद, पहचान अनुभूत करने वहीं, जो ही हो तहीं। अवाचननी द्वारा 'ज्ञान अपे है जो सोकोवल 'बोम्ट' में है। एक 'ज्ञे' का एक पदार्थ नाम है, जहां देश के विषय में बोग रह था और लोग भी हैं उसमें तीनिका। विन् का प्रज्ञन करता है, उसके द्वारा का विव

हेमेन् वे इस सूर्य नवर्तन, विभासीण, 'ईर्मस्यान्' आदि का आवाम है, जिसके किन्तु गोकर्णिया आधुनिक युग का कम अनन्त वास था। इसका मनस्व व लक् एवं घटनवीय दृश्य का संवेदन कर रहा था।

हमारे यहां नाट्य

जगत लिय और अनिन्द दीनों
में यह पूरा रखा। यदामें नहीं,
है। वह क्रष्ण के चैतन्य को स्थित
भी इसे निल कहा गया है। एवं
प्रकाशकर के अद्वा के उत्तर कर
ता है तब इस संदर्भ में जाग यह
ही यह जगत जो ज्ञान की जागति
पहुँचे तब की गलताद्वा की जान
की जाया है। अर्थात् एक ही वस्तु
ज्ञान, ज्ञान द्वारा उस चेतावन का
ना की पहचान, ज्ञान की दृश्य
में यह इस जगत भी पूरे का
पाप है। अनिन्द है अध्योग की

जाग बन्दिनी है। अबन्धा के
पर्वत गया हाला भाव रखता।
जुगुआ हूँ गव भवो की थी
नुक्ति में जानद यात्र करते हैं,
क्या है।

के पांच दीय चथ हैं यह जगत
क्षण है, गांड और इन जगत के
एक ओर 'स्मृत' का खोच है तो
विशेष के प्रण परिवर्तन के अधिका
र नुच्छ का आधिकार्य और वर्चस्व

अधिकार अपर्य है, इन ही दीप्ति
दीन और नाम्प्रय दीनों के पर्य
दूसरे की गत्तम लगी है तिन;
पदार्थ का पनुल भ रंग और
ज्ञान और ज्ञान ज्ञान भाव है।
ज्ञान आत्मभाव अवगति पाना है।
जोध है, अर्थात् ज्ञाना अनिन्द
इन में जो गंगुर्ण रंग रखा रखा
त रहा उस नाम का अनिन्द

है, यही नाम है। इस नाम का उद्देश्य तो 'निन्द' का अभिज्ञान।
अर्थात् अधिकार ने दक्षाय, असत्ता में सत्त्व की दिशा न जाना अभिज्ञ में जो 'निन्द'
है उसका यही मक्का है।

इसके दोनों विचारों में पदार्थ या यज्ञार्थ को व्रहण किया
गया है। दोनों के अन्दर में 'मानवों व्यापार', जो गंगुर्णला न त जेना कामड़ी है
अर्थात् मानवर्थ व्यापार को गंगुर्णा भी जेना देंती है। परिवर्तन में योग्यह
बंदगता या दृष्टि है, जो पदार्थ दृष्टि पर्वत जाता है इसी पर उत्तरा पूरा विशेष
प्रहा दृष्टि है; उसके 'विशेष' के बास्तव में जो एक मन्त्र है, उसके अन्दर
करुणा, ज्ञान, ज्ञान, अवदेश एवं और प्रयत्न है। हासारे यहा नाम्प्रय के
पांच या चारों दोषों विशेष उत्तर दृष्टि है, यहाँ यह मुक्त भासे वात्याक्षिक है में
विश्वासन है। यहके प्रलाप में चाह कुछ भहा ही दिव जाना है। इसलिए हमारे
पहाँ देखने, विशेषमें और अनुभव करने पर अत्याक्षिक बल है। परिवर्तन में
अनुभव करने यही योजने, ज्ञानमें पर बल है। उन्हें 'विशेष' में 'अनुभव' है
यह ही ही नहीं 'ज्ञान' और 'ज्ञानत' ही नुच्छ है। वह यो एक और व्याख्यनका
आवलों द्वारा विश्वाका काइ अन ही नहीं। इसे हड्डी और नलाशने का एक ही
धर्य है जो 'मानवर्थों' के 'हड्डीपर' में है, इस्मालियर के 'हेमंट' में इसके के
'हेमट' ने हृत्या अर्थर्व विश्व के 'हृथ आफ ए मलार्वन' में है। शेषालियर ने
'प्ल' की एक परामर्श रहा है, 'इंग डज व एंग'। इसका अत्यध इवाहृत 'हेमंट'
नाम्प्रय में है, जहा फ्लेमेट अपना अधिकाराओं की विशेष के द्वारा, ज्ञानका अधिकार
के विश्व में बना है। नाम्प्रय के नाम्प्रय का प्रयोग, जिसका उद्देश्य, जैहा यहाँ
या अर्था आहा हो है। इर्वन नी, नी आ और काज भी है, बहुति के तामत रक्कर
उगमें नीना 'बर्जु' की इसके नहरे को दिखाना है, और उसकी याकाकिना
का नाम्प्रय करना है और उम काल लाया रखा, इसके जाने, उसके आनंद और
उसके दबाव की दिखाना है।¹

हेमंट के उम गंगज के 'गंगेट' के आंतजावेष युगीन शिरेट का यह महान्द-
पूर्वी क्षय ब्रह्म है रुप यहा भव ज्ञान लाया इसके लक्षी का सोधा, विशिष्ट
आर्थिक, 'हेमंटजन' है। एगा आवानाण जो युगीन की गत्तह लेखा, बनाना जा
सके। निन्दु योक्त्यायर आ रंगमन अपने व्याप्ति नाम्प्रय के विशेषताओं के नाम्प्रय
लायुनिक दृष्टि की सामग्र नहीं हो भक्त। निम्प्रेत हेमंट उग 'विशेष' के प्रसंग में
आगी वा। कल रहा है यो उम्प्रे सम्भव जा था जिगमें उगाना जीगत यहा हुआ था,
इसका व्याप्ति एक 'विम्प्रान्दु' एवं स धा, जिनके पांच, उस सम्भव के पारंपरिक
मान्यता दृष्टि का संकेत था,। नगाना परिवेशित दृष्टि दोषेष युगीन विशेष रखा
कर रहा था।

हमारे यहा नाम्प्रय का नाम रक्कर और अवधारणा इससे गर्वधा किन्तु है।

वहाँ आरोपण है तो हमारे यहाँ अनुकूल होता है। तभी हमारे यहाँ नाट्य-प्रस्तुति है, परिचय में नाट्य-प्रशंसन है। अनुकरण का प्रस्तुति शब्द है तो अथवा अनुकूलि शब्द का ही भाववाचक शब्द है।

'अनुकूलि' और 'प्रस्तुति' के अंतर को हम भारतीय और पाठ्यकाल संगीत के उद्देश्य द्वारा ऐसा बताते हैं। पाठ्यकाल संगीत का सीधा प्रभाव शारीर पर पड़ता है। किन्तु भारतीय संगीत का प्रभाव हमारे हृदय पर पड़ता है। जो अंतर शारीर और हृदय अशेष और भाव से है वही अनुकूलि 'प्रस्तुति' और 'अनुकूलि' है :

उल्लिखित दुर्गीन विषयक में 'प्रश्नति' एवं विरोधी वाक से देखा गयी है तभी उसे दर्शन की गई। मैं ही देखने की यात्रा आगئी है। साथ ही नैतिकता और सदाचार की क्रान्ति नये हृदय में दिप्राया गया है। किन्तु हमारे यहाँ 'प्रकृति' मनुष्य अधिकता का एक अविभाज्य भाग है। इसलिए हमारा 'नाट्य' एवं उसका विषयक हृदय की नयह प्रकृति को दर्शन की गीता में नयी देख गका : उसमें बनुष्य और प्रकृति में कोई विभेद नहीं किया। प्रकृति हमारे जीवन में अपनी पुरी विचारता, व्यापकता और भव्यताएँ जीव संगीत और 'संगीतों' रूप में आयी हैं। हमारे यहा जीवन और प्रकृति के प्रध्य कोई गीता रखा हो नहीं है। क्योंकि हमारे यहाँ जड़ और चेतन दोनों में भगवान् रूप में एक ही जीवन्य, एक ही जीव अवाल्मीकि है। भोदर्यवोध के स्तोर में यह मान लिया गया है कि जहाँ गीता है, वहाँ हम की विष्वज्ञि नहीं हो सकती, वहाँ केवल सधर्य और दंद का रक्तरूपि। प्रदर्शन हो सकता है। रक्त-निष्पत्ति तो भूमा अनुकूल का ही अवलोकन है। यही नाट्य प्रस्तुति की आधार भूमि है।

प्रथम है, नौन-गा कमं रंग लाना है? कमं को दोनों दिया है 'प्रथमा' और 'प्रत्यना'। वह कर्म जो 'पुरुष' हारा किया गया है अहं रंग लासेगा। किन्तु जो कर्म विहृन मनुष्य हारा किया जायेगा उसमें कोई रंग नहीं आयेगा। उसमें से केवल विषयता आयेगी। 'पुरुष' हारा किये गये कर्म को हमारे यहाँ 'गिर्जो' और 'कृषि' कर्म कहा गया है। अयोगी अद्विकार में नहीं विनियोग मनुष्य से कर्म करना है तभी वो हमारे यहाँ 'पुरुष' नंजा गिरता है।

नाट्य से जड़ा परिवर्तन जीवनेता होना है, जबकि हारा है। कला और मनुष्य कीन है इसलिए उन द्वयों यहाँ तमसा विद्युतों में दिया गया है। पाणिनि ने कनों को पारिशापित किया है। 'मनसः नृणां' पाणिनि का एह मूल कर्म, सूजन का रहस्य गंध है। जो रक्तरूप नहीं है वह सूजन नहीं कर सकता।

इस दृष्टि से परिचय का मनुष्य स्वतंत्र नहीं है। वह स्वतंत्र नहीं, लक्षी तो स्वारोगी वा उत्तेज बनाना है। उसको सभता और संस्कृति दोनों में विपरीत और मुख्य-विपरीत और उद्देश्य ना हो। तिर्यक निर्गी है वा सिर्फ गाल का। जड़। राज्यव्यवस्था और इत्याव नी कोई अवधारणा ही नहीं। इमोलिय, भारत पर उनका शाज्य

होते ही उन्होंने या भारतीय भाव को क्षमिता ही दिया।

स्वल्प व्यवस्था राजा वहने भारत में रुक्षी थी। उनके लिए ही गांधी भी लोगों के नुस्खे उस प्रवृत्ति के ऐसों प्रवृत्ति थीं जो समृद्ध करना उनके पूरी करना ही उस

ठीक इसी में हमारे विषय जीवन मिलिक्यन और राजा से जो अप्रेजी राजा पारस्नी व्यापारियों हुए। आगे इसी में भारतीय मेंटर, कविनी में नशनल स्थापना गे रंगभूमि अंधकार अपने रग्बी और क्रिकेट भी परा है।

अपनी नाट्य मुमर्सित नहीं। अपनी राज्याग्रि कही है। इसी में, परम तिर्यक रहा कर विज्ञान वही देख

संदर्भ

1. मंसवेष
2. मां दामोदरामार्य
द्वितीय दिव्य

हमारे यहाँ नाट्य-प्रस्तुति है, गव्व हुआ भथवः गन्तव्यति शब्द सामनीय और पाठ्यात्मक समीक्षा का सौधा प्रभाव शोरोर पर हृदय पर पड़ता है। जो अंतर वही अन्तर 'इमिरेजन' और

अंतर में देखी गयी है तभी है। वाथ हो। नीतिकल। और तु हमारे यहाँ 'प्रश्नतं मनुष्यं 'नाट्यं' एजिजार्थन विषेष्टरं'। उपने पनाय और प्रकृति में नी युग्म विचारना, आपका तो थी है। हमारे यहाँ अंतर और हमारे यहाँ जहाँ और लेन आए है। सामनीयों के चार ओर के गिरावंत नहीं हैं सब यहीं 'सनक' है। २५-निष्पात्ति के अनुत्ति की आशय युक्ति है। कोटि है 'रचना' और ही रंग लायेगा, किन्तु जो कर्म हीं आयेगा। उसमें से केवल हमारे पास 'शिखी' और 'कवि' करने में कर्म करना है उसी

होता है। कला और सार्वक दिवा गता है। प्राचीन ने गिरिक का यह सूख कर्म, सूखन कर रखता।

वह दरवेश नहीं, वही नी गिरिक दोनों में गोपनि और सरज्य है। वहाँ सार्वजनिक दिए भारा दर उनका राज्य

होते ही उन्होंने मार्वनिकना का मनाजन भाव नष्ट कर अनैतिक रूप से राज्य सरकारी भाव को हम पर लाया। यानो समाज बेदखल कर दिया गया। और राज्य मात्रिक हो गया। इनका अवधारण अवधारण यहाँ की जीवन पद्धति पर और कल स्वरूप अपनी मनोजन कला पर। उदाहरण के लिए—'अंतेश्वी राज काशम होने से पहले भारा गे युग्म यदूं के लोगों के बीचन का एक अंग थीं, उनकी बीचन यैली की। उनके बीच लोगों वाल एक आमिक नातिविधि नहीं थीं। वह भारा के स्वाधीन गाँवों में लोगों ने निवासीकन बो, एक वृत्तिशावी व्रनुत्ति थी। जीवन गे बूढ़ी एक प्रसूति का, अग्र भाव एक सांकेतिक के नाते विकेचन करें तो भी वह ऐसी प्रवृत्ति थीं जो नोवर को मध्मा आवश्यकगता, पूरी करती थीं। जीवन की रम्य भाग्य उन्हाँ नाम सुख नाम था। गरजार की, वा नार नी या उद्योगों की रम्यते पूरी करता तो उसका मीण काम था।'"

ऐक इसी निर्दर्श और अर्थों में हमारों मारो कलाएं विशेषकर नाट्य का, हमारे निन्द जीवन की एक युनियादी प्रवृत्ति थी। इसमें विसो एवं अविस दी पिण्डियत और राज्य-अधिकार का प्रश्न ही नहीं था। पर उन्होंने सदी उत्तराहं ने जो अंतेश्वी गायत्रे के प्राचाव में पारसो विषेष्टर यज्ञ गतया उसमें पहली वार गायें विष्वारिणीं, काउलओं, लहाङों आदि को तिजो कर्पनिया यहाँ स्वापित हुई। आगे इसी में दिननी में थोराम सेट, कमानी आपेटर, चंबई में टाटा। चैफार्टिंग बिंदु, कम्पनीज में अंतोत नल, मंदिर, आदि और सरकारी स्थान पर विलो में 'निगम न्यूल आफ ड्रामा रिपर्ट', सोपाल में 'नगरगंडम' आदि की रम्यतरे गे रम्यभूमि की भगवान दृष्टि पर, पर्वा गिराव भला गधा। यदी का यह अंद्रकार अपने रंग प्रकाश ते 'मिश्या, देसा विद्याम है। वह निष्मी एक के बैंधव और किसी राज्य के बल में गुण नहीं हो सकता, योंगी चह गतानन है, परंग में भी पड़ा है।

अपनी नाट्य मनाना भर, रंग-गंगाराएं की गमात्रिक रम्यति वो भिटाना पूर्यकिन नहीं। अगरों गरंगाराओं का गमात्रकर अपने बनेमान देवत के मुनाबिक अपनी राम्भूषिका स्वरूप बनाना ही सच्च रंगकर्मियों।। सूखने कर्म हृथ करता है। दूसरों न, पर्वों का नाट्य द्वाचा लेकर बोई लगानी राम्भूमि का सूजन और निर्माण नहीं कर गए। अपनी सूजन और निर्माण के लिए कर्म-धर्मा और आप विश्वाम वही दोनों मनानन तत्त्व अनिवार्य हैं।

संदर्भ

1. वैकल्प
2. ३१ नामावस्था विषयक विवरण। १५-१६
दृश्योन्मुख व्यापारिया। स. ५ क. २६

३. विनाय केरा ने, राज्य, इन्डिया टेली, १५०-१७८
‘द एसेंट्रल चॉक नेटवर्क, बोम्बे बिल्डिंग, १५०-१७८’
४. दि अष्ट्रोनोटिक्स एंड वियोटेक १९६५, फॉरिंग प्रॉजेक्ट्स, युएच एफ
५. गोविंद, वायप्रेस्सो, विनाय केरा द्वारा दिया गया
६. एसेंट्रल चॉक, बोम्बे बिल्डिंग : “द एसेंट्रल चॉक नेटवर्क बोम्बे बिल्डिंग बोम्बे बिल्डिंग बोम्बे बिल्डिंग बोम्बे बिल्डिंग १५०-१७८”

आज जब हम सुनिहारे हैं (जीना करा डग पर है जो 'लोक' इस विद्वान से ज़िकर मिठ्ठान पूर्ख आद को देते कह और लोक-अवधारणा धारण, चोटि, असत व शाश्वत अश्वाल जैसे विभूत, भवित्व जीन तक पहुँचे।” दृष्टि राजव को, “अखेद आद म प्राप्ति लोग लोकों का ‘धर्मशास्त्र का इन्हां अन्य कर्म, अगोचर शुभ वर्ष, शार्दूल, तुराण है। हजारीबाबा द्विवेजनता से भिया है जो को अपेक्षा अधिक तरह

आदा को अपेक्षा से 'कोक' पानकर उसे दृष्टि ने भी लोक को न पहुँचावे बोझ से मिलाको से लोड दिया।

लोक : यात्र्या विना न पश्यनि

आत अब हम 'एतिहासिक काल' की भवा और 'वर्तमान अग' के आवंक में रह रहे हैं (जोता क्या इस्तिम्हा है?) जब इतिहासिक विषय के दृष्टिकोण से दृष्टिकोण से लेकर विद्वन्, सरकार और लाभपकार गवनें उसके अधे, स्वल्प और दूजे गाथ की इस कदम नाप लिया कि उसके गीर्ण पृष्ठ वा। ही अब गता नहीं। एक जोड़ लोक-व्यवाहारणा की निलम्ब दृष्टि और अन्यत्र किया, दूसरी ओर उसे अतीत ग्राम्य, भोड़ा, अमल का गक्कल और 'दृष्टिकोण' बन्ना चाह लिया। डॉ० बासुदेव ग्रन्थ लघवाल ऐसे विद्वन् ने कहा, "लोक हमारे जीवन का भूमिकृद है, जिसप शून्, इनिषा और यत्तमान संचिन है। अवधीन गान्धी के 'लोक लोक सर्वान्धि प्रवर्षण है'" डॉ० राजभूमी गांधी ने अपने 'हिंदू धर्म का ग' में लोक भी परिचय की, "अन्येद प्राणि संस्काराद्" ने लोक का अर्थ लिया है। "...लोक सम्झौत में वाल; नीर लोकों का है। उल्लेख मिलता है।" गौ० बौ० कर्ण के प्रसिद्ध दंष्यधारा 'इमंगाम्य वा दृष्टिहास' में धर्मदृष्टि, साकारधि, दृष्टि, प्रागशिचन, कर्म विमाक, अन्य कर्म, अग्नीन, गुरुद्व, शाढ़, गीर्णे प्रकरण, वर्णन विद्वान्, वा, उत्सव, नाल, पंचांग, शांति, पुराण व्यादि व्यवस्था वालों में अगली बात 'लोक' को कोई जचंत नहीं है। हजारीबांध दिव्येशी ने 'लोक' का अर्थ 'गगरों व गोंडों व फैली इस मध्यमी जनशा से लिया है जो वैष्णव, राज-भूमि-न तथा गुरुमुद्दीप समझ जान याज नामों को धोया अधिक गरज और अश्विम जीवन के अपनान हैंही है।"

भारत की अर्थगी भाषकार न लोक नी जानवृत्तकर, नहीं। इनोनिक चाल से 'फोक' भाषकार दर्शे अत्यन्त नीति वा। व्यावहारिक वाद हम्मीरी सरकारी दृष्टि ने भी लोक व दूरभी तंगी के, कर्मी नृत्य के, कर्मी नाट्य के, कर्मी रहन-गहन एहतं व जारीह से असलाकर इस एक और छब्बीं जननीयों के गणनय द्वितीय की आकी तो जोड़ दिया। दूसरों ओर 'अकारामियों' में लकड़ 'हमरोमिधम' वा. 'लोक'

लोक : यात्रियों विना न पश्यन्ति

आज जब हम 'इनिहायिन लोक' को भीड़ और 'विमान इन' के आतक में रह रहे हैं (जीवा नया इम | स्थान में संताप है ?) तब उस विषय के विवरण इससे लोक पर है जो 'लोक' उसके जास जाना क्या होई आशान काम है ? खौफ नब जब विद्वान रो निकट रोहा, सरकार और नायकोंके स्वने उभो लैये, नवकाल और मूल भाव की इस चिन्द्र नाड़ किया कि उसके सीएन्ड का हाँ अब गवा रहहो । उक्त और लोक-अवधारणा को किनाह चुनौह और अपूर्त छिपा, इससे लोक उसे अलंक भास्म, भोड़ा, अग्नि का नकल और दिव्यावधी बहुत मात्र रख्या । डॉ वानुदेव गरुड अग्रवाल जैसे चिदानने कहा, "लोक हमारे जीवन का पहासुन है, जिसने भून, भविष्य और चरित्रान मार्चत है । अबोनान मानव के लिए लोक रातोंचन प्रजापति है ।" डॉ राजवनो पांडेय ने अपने 'हिन्दू धर्म और' में लोक को परिभाषा की, "क्षेत्र आदि वर्तितों में लोक का अर्थ विश्व है ।" डॉ वीर संदृष्टि में लोक लोकों का हाँ उल्लेख मिलता है । पीछे वीर काले के प्रतिद्वंद्वयोपाला धर्मशाला का इनिहाय भूमिका स्वरूप, लोकविधि, वनक, वायवित, कर्म विपाक, अन्य कार्य, अणीज, शुद्धि, आदि, लोर्ख प्रकल्प, दर्शन, संस्कृत, वेद, उत्तरव, काल, पंथाय, शांति, पुराण आदि अभिध्य वार्ता स असली बात लोक' की काँट चर्ची जहाँ है । हजारीबाजार हिंदूओं ने 'लोक' का अपने वर्तनों थे गावों में रिसो उस समूजी जनता के बिधा है जो परिषुद्ध, अचिंत्यता तथा सुमल्लन ममसं जारी बर्ते भोगों को अदेश अधिक मारल और अहंकार लीनन भी अभ्यन्त होनी है ।

आरत ने अवेजो तरकारे ने लोक को जागृतकर, उहाँ ग्रन्तीतक चाल से 'कोक' मानकर उस अन्यन नींझे ला निलया । भवनवता के बाद हमरो अपारो दृष्टि ने भी लोक को बारी तयोन में, कभी नहर से, कभी तालूप ते, कभी रहत-सहन पहुनावे जगीज से फिराकर उत एक और छब्बीस जनवरी के गणनाल दिवस की जानी से ओढ़ दिया । दूसरी ओर 'अकादमियों' से लेकर 'दुर्गारितप' तक 'लोक'

को एक 'माल' के रूप में देखा गया। हमों नो अनिवार्य परिणाम यह हुई कि कोई गमलीला, कोई रासायनिक, कोई अवाई, कोई तमाशा, कोई धधारन, कोई कल्पीन-एडी माल, कोई नीटको आदि को अपनी हम सांस्कृतिक जूटपाट में जिसके लो हाथ में दौड़ा। किंतु उसके बाजार में निवापन। किंतु व्या भा 'भारतीय नाट्य विद्यालय' से निकल अपने आपको भारतीयिक जटिलताएं समझने रणनीतियों ने अपने अपने हार, रखाएं, ढोज, भजीरा, पामबोली, विशेष नृत्य चाल, नस्य, भग, माला, डॉ मान-कर उमे नाट्य प्रवर्णनों में पांच की गाहड़ टांक दिये और घोषणाएं की प्रक्रिया की, भारतीय लोक गद्य को दोज की, अपनी परंपरा की गलाज की प्रश्न-परिचय के समर्वदा की... और न जाने किनना बना-क्या?

तेकड़ों वक्षों के नवे कान एक जब किसी विशेष भाव और प्रतिनिधि का अनुभव सम्भव को गुआम्हर हो नहीं, तो वह किनना असम्भव और अगरीनो हंस-र-नाट्य हो जाता है, यह लोक की परिभाषा, अवधारणा के इमारत ते किनकुल नापट है। लोक ही भारतवर्ष यह। तथ वह जोन ही नहीं रहा, नो उसके जालोंकित भारतवर्ष कहा होगा? जो लोक अपनी उपलिखि ते हमारे पूर्वजों को उत्ताप संपत्ति करना रहा, उसी की अनुपरिधि ते भाज हम उनें कंगात हो गये कि रावको गुलाम को नजरों में देखने के लिए जात्य हुए। आप इस लोक की अनुपस्थिति के बिन्दुभेद से ही अगनी वज्री-घुच्छी प्रजा पे इसमे सालाल्कार कर देता है, जो पढ़ते कभी भी और हमारे अधिकाच के भाय जुटी थी, और अब जो नहीं है। तिना किसी मेरे भी दार जो सहज ही कुछ मिलमिला रहा है, उन आपने, माय मिलकर भी मूँ, उसी जिरोधाभाव के साथ।

साधिनय उसी कथा का सूत था मता है जो हमारे पूर्वजों ने कही है। बेनामुग में वैवधनमन्तर के आंसें ही जांत पर (नाट्यग्राम - भ्रष्ट अड्डाय, नाट्योपत्ति) जब भेंसार के सुष्ठुप में दुख और प्रशिष्ट हो गया; तथ उन्होंने यास देवनाओं न बढ़ा के जो मर्यादा देखो और सुनी जाने गोप्य ही। महाराज, यह जो वेदव्यवहार है, जारी केद है, वह लो सबके देखने-मुनने के लिए नहीं है। अताएव आप एक यांत्रिक वेद की रचना कीजिए जो सबके काम कर हो। बद्धा ने ऐमलिका ही जारी देवों के आवश्यक अंगों में यांत्रिक वेद नाट्यवेद - विभिन्न किया। इस प्रकार पंचम वेद की सृष्टि करके बद्धा ने इसे कहा कि मैंने इतिहास को रचना कर दी, जो

देवना चतुर और गणि उद्दे ने कहा, देवता ने पुराणों के संहित इस का मात्रती और आपसमें कंशिकी वृत्ति की बोली मांग की। ब्रह्मा ने कहा की। गत्यन के कारण वैवधनमन्तर के उन देवताओं ने अधिनय प्रदान किये। परंतु उन्हें उन्होंने अपनी बारे दिये। इस पर उद्दे को जर्जर (अन-प्रियतम) चिन्ह किंतु भी धन है बिधा। विश्वकर्मा ने के लिए यब देवता यह हुई। ब्रह्मा ने इसके उलाम्य की त्रमण की।

इस कथा का भूमि में चाहिए। (जो उद्दे रह हो और नहीं नहीं, उस आवाकार तिगाश होने ही नहीं होती है)। तभी यह होना होता है, तो उस कथ

मबके बायत्रुद वह नो चब तो निये, आपके प्राप्त क्षमन-आपनो वेद वह भी नाट्य व्यंग से नयों सुनना अनियाम है।

जोक लाल 'लोक देवना, प्रत्यक्ष बान मनुष्य था देवना, (ही आन-वेनता के रहने का रागण उसे अपने किसी

पर्याप्ति पर दुई के कोई कोई नामनाम, कोई छनीम-
क शूदगाह में रिसके जो हाथ
वाले दिल्ली के राज देवदत्त
जो 'साधीय नाट्य विद्याभ्यु
प्रकाशित' ने अपने-अपनी स्तर
परा चौथा, चूंच, लड़गा,
स्थ, हथ, सजा, टाट मान-
और पोषणाह की प्रलेप
दरा की उत्तराण की 'पूर्व-
त?

और प्रगति ना अनुभव
के बल्कि ही उत्तर नाट्य
प्रमाण से विष्वकुल गण्ड
है, तो उपने आत्माकित
पुरुषों को ज्ञान, गणन
लिया हो गये कि राक्षों
नोन को अनुपस्थिति के
देव नहीं है, जो महें
नो नहीं है। यिनका किसी
प्रतिश्वला की खालाका
पके साथ फिरकर जो

ने कही है। उत्तराय में
आठनाम, न-शूदगोपनि
प देवता-जो न शहर के
नीं गोप) वस्तु नाहिए
वेदव्यवहार है, जारी
एक पांचवें वेद को
ही चारों देवों के
। इस प्रवारपूर्वम
रखता कर दी। तो

देवता चतुर और परिधयों हीं उनके द्वारा इन्होंने अभिनव किया जाना चाहिए।
उन्हें कहा, देवता नामव्यवहर में अक्षम है। तब शहर ने भगवा मुर्ग को उनके सी
पुर्वों के सहित हत्ता कार्य के लिए नियुक्त किया। भरत मुनि ने प्रश्नपत्र भारती,
गालती और आरम्भी वृत्तियों ने मुर्ग की अभिनव बीं तेयारी की, पर जब शहर ने
कैविती बृत्ति भी योजना की आवध्यकता बनाई नी भरत मुनि ने अभिनवों की
मान की। शहर ने कैविती बृत्ति के लिए उपयुक्त अवधार भरत मुनि को प्रदान
की। ग्रन्थ के ५३६ के लिए, ग्रन्थादि ग्रन्थों की पांचता की गयी। इनमीं तेयारी के
पांचाल इंडियन के उत्तराय के समय 'गुरुकृष्ण' नाटक का अभिनव किया गया।
देवताओं ने अभिनव ने प्रश्नपत्र होकर घटा। मुर्ग और उनके पुर्वों को अतेको नष्टहार
घटान किये। वरंनु क्षोप्ति इस नाटक में दानवों को परावर्य प्रश्नजित भी गढ़े थीं
अतएव उन्होंने अपनी अपनान्नाः प्रकट की और अभिनव न विस्तृतपूर्वक रूपम
कर दिये। इस पर उन्हें शुद्धहारकर छवि की भेजार उत्तरी गाँव से अमृगो के चारों
को जगेग (धना-विकास) पार दिया। इस प्रकार उत्तर ने ही नहीं की उत्तराति हुई। पर
विष्व किर भी बते ही रहे। तब शहर ने विष्वकर्मा की नाम्यगृह बनाने का आदेश
किया। विष्वकर्मा न जात्यर्थस्थ नीर रक्षा की। और उसमें नाम्य की रक्षा करने
के लिए सब देवता यथात्यान नियुक्त घर दिये गये। इस प्रकार नाटक की वस्तुता
हुई। शहर ने इसके इतिहास का चृत्कित की, इण्ड और दिवा ने इसमें जाड़व और
लक्षण की कथा योग्या की और विष्व में जारी वृत्तियां प्रदान की।

इस कथा का मात्राव न्यर है? इसका उत्तर हमें अपन वर्तमान समय के प्रगम्य
में खांहें। (ओर उस पर दूरोप के किसी अक्षित, चाहे वह कोई 'अलाविद्या विष्णा-
रद' ही क्यों न हो, उसके साक्ष को मुश्क लगों किर ना क्या; कहोने! पर आप यह
वानकर विचार हैंगे कि विचम यारी दूरोप ने ऐसी न या की कोई परिकल्पना
ही नहीं है, तभी नी नहीं 'दूरोप' वा जन्म हुआ; और हमारे यज्ञों 'नाम्य' का !)

हाँ, तो उम कथा का मन्त्राव यहा है? देव नामों के एक नव तुल था, पर उस
मध्ये बात बदू वह कौन-सी वस्तु नहीं थी, जिसके बिना ने दूरोप व्याकुल हो? आप
बुद्ध मोचिय, आपके पाय रात्र कुल हो, पर दर्माण, आहना या वह वस्तु न हो, जिसमें
आप अपने-आपको देख सकें, तो आपनी बयां इसा होगी? अपने आपको देखना,
वह भी नाम्य दर्शण से बुद्ध द्वारा 'स्वावति', 'नाट्यात्म' करके देखना और दिवाना
का दृश्य उसे अपने किसी अनुश्रव अज्ञात अनुरोध की अपेक्षा सीमा भी गहसूस होती

सोक ग्रन्थ 'तोपदार्शन' धातु स भव प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है—
देखना, प्रदृश जाल प्राप्त करना, समूर्णता से देखना, अभिज्ञान प्राप्त करना,
ननुष्य या देवता, (इतिहास तुल्य, पुराण तुल्य) उत्तरा ही नहीं है, जितना उसे
आत्म-केना के रहने अपने होने का अहमान होता है, ब्रह्म उसी आत्म-जेन्ना के
कारण उसे अपने किसी अनुश्रव अज्ञात अनुरोध की अपेक्षा सीमा भी गहसूस होती

है। इनमें से और आगे बाणिजात की उत्तराहि और माधारित अदृश्य और अकाल रहनी है। नेतृत्व मध्य बनता रहना है।

अब्द्यक्षं शारीरिकं पूजामि व्यक्तिप्रणामि भास्म।

अभ्यक्षनं धनायथ व तत्र का पारिदेवता॥२८० शी.॥ 2/28

यह जो अव्यक्त है, अदृश्य है, जो कहीं वालक्षण के अधरे में हिला है, सुन्दर अगवर्ती आंत की अपनी सूर्योंतः से देखना चाहता है। जो अदृश्य है, अधरे में हिला है उसको देखना चाहता है और उसको के अनुभव का आनंद लेना चाहता है अर्थात् वह अपना पूजा सप्तना चाहता है और उन अनुभवों से उत्तराकर उसके पुरे भावों को समाहित करना है, जिसने विना वह सचमुच अपनी तथा अपूरा या, अपरिभासित या। पूजा-अधिकार, जैप मध्य के गर्भ में अदृश्य और अज्ञात या।

अदृश्य एव दृश्यात होता है, अग्नीरी, सूर्यम् गृह रहण में होता है, जो अधरे में था और जो भव 'त्रिकूट' भवता है, जहाँ हलाहि। और जैम ही यह अलोकित होता है, वैष्णवी उत्तम और मुर्मिट के, वैष्णव सम्पदः संवेद गायत्री-वाजा, दग्ध-हात के साथ उद्घाटित होने लगते हैं। वल्लभा कीविष्णु, उत्तरी देवी ने के बाद 'मुनिविष्णु' गायत्री अधिकार देवताओं दे, देवताओं और देवताओं की शुभिकाओं में स्वयं को जन देवा होगा तो उन्हें क्या अदृश्य दृश्य होता है? उन्हें यहली बार प्रत्यक्ष अदृश्य दृश्य होता है जैसे प्रकाश का स्वयं त्रै है प्रगत्या क्षम और हैन्दन। जैम हेलो हुई प्रतिनिधि मधु मधुमति वही दृश्य है, जहाँ राधाम है! जैमन यी क्षम अपने लिए और अदृश्य आंती आंत से देख रखा या, पर लोक (तात्काल) में यह नववी आंतों से अपने को देख रहा है। सोक रंगभूमि पर सब एक-दूसरे की आकृति है। सब एक-दूसरे के रंग हैं। सबके विविध रंग से एक विराट लोक रंग निषित दृश्या है।

इस दोनों या गायत्री परा या माधवा परा है, अदा और माधव है, विष्णवा। यादृश्यान्नाधना परा है भवानी-नारदी और माधव हैं गिर गांवः।

भवानी शंकरो वंदे

अदा विष्णवा रुद्धिष्ठी।

याम्या गिरा न पश्यन्ति

मिद्राः निवाः रुद्धिष्ठीवन्य ॥ (मातम-वालोदाः २)

सोक की प्रत्यक्ष वही देख भक्ता है, या उसे लवकृप दे मिला है, जिसमें अदा हो। अदा गांवे? अन् । परा जो भूत्य की शैर्ष में देखे फिर उभे प्रारूप करना में मवार्द ही। जैम हमारे यमन में रामकृष्ण परमहम्म द्वीरु वहाँ या गांधी अदा के प्रचिलय द्वृप है। यमन के बहिर्भारती शक्ति से मनुष्य ने रामहम्म पर एक और गमन अदृश्य, अभ्यास हृषि का देखा। अग्ना मंडूर्ण प्रकट हृषि और दृश्य देखा। इगरी और उम्मे देखा। विष्णुकृष्ण अन्नर्वमान दाल जो यहीं पूजना हो रही, जो नियतर पूजा होता रहना है और काल का दृश्य है जो निष्वर्णि अपठ चल है। विष्णु-गंगा अथवा।

32 / रंगभूमि : भारतीय नगद्य सौदर्य

विष्णवाम। विष्णवास यह प्रत्यक्ष जीवन है। यही 'स्वपक्ष' है। जैना, जैनव या प्रवृत्तित हीन देवा यह गव एवं दृतमें जल व प्रहृष्ट, तुद्र, जैनन-मूर्ति आदि दरपते से बाहर देखोगे उसी त्रूमि होकर रावको देख गकार। एवं पा गमोगि। सोक दृष्टि ही हृ काल-निरपेक्ष हो सकते हैं। विष्णवाम, अद्यात और दृष्टि विष्णवाम भाव-रूप वाद्य-लोक लल राम-मध्यित कर दाद्य देख में रहते हैं? विष्णु हम उसी अराजा भृत्यों का छठना प्राप्त है। दृश्यत में नवि नाद्यनकार विश बगा रहा हूँ। अब बाजा भृत्या है। युक्ति की छाया में दो लूटा रही है। यानी जब दराने विष्णवाम माने वि दग्धा अम कर पाया। दूस (थड़ा) दो प्राप्ति करता है, तभी उसे दृष्टि

अदा और दिव्यास, अस्तर दर्शने दोनी एक-दूसरे दोनों की एक भवय में एक दो की कराना। एक दृश्य करना जीवन की आराम असभव पावनों, भवानी और गंदर मंदन गाये थिन। नोटै विष्णु गत्यव, ब्रा और दृश्य तंत्र और दिव्या दो माधवहीन। विष्णव-गार्वतों का मूर्चा यदि तो मुनि कोई भी उन सदृश ही राजा दग्धस्थ भी राजा कोई पद्म के मामां, नेला-स्पैद्ही।

१ शास्त्रीय अनुष्ठय और अज्ञात

भाषण।

॥२५॥ गीत २/२४

भवंति पै छिंगा है भनुष्य है। वै अनुष्य इ. अंगेर में र का आनन्द जीना चाहता है उपर्योग से पुण्यकर उपर्योग तूरे अभी तरह अनुष्य था, अपर्याओं और अज्ञान था।

२ रूप श्रद्धा कृत्ता है, जो अंगेर जीने ही जन्मनालिन र गारा बाहर। एवं रूप के लियाँ देखा वाद युक्तिक्रम भूमिति। वै अंगेर को पहली बार प्रश्ना अनुष्य देव पैशना, इमर्फेलों तुड़ गे बहु अग्ने तिए और बहु भवतों आंधों गे अपने लिए हैं। सब एक श्रूति के अनुष्य है।

और लाल है विवरण।
कर।

सद २।

१ हे विनाम अदा हुं।
यादग नृष्ट से अर्थ
की धदा से इनीहृष्ट
एक और लक्षण अनुष्य,
ह। इसकी ओर इनी
की निरुच पुना होता
विवरण अनुष्य अर्थात्

विश्वाश। विश्वाश विश्वामि वि हर सूप का दूसरे स्थाने जोहना ही जीवन है। यदी 'लग्न' है। यह प्रत्यक्ष विश्वामि कि यह एवं रंगभूमि पर। अन्य लोग जो अंगुरित होता, कूलना, कलना, पूर्ण सोन वागा और पूर्ण उच्च लेगा एवं यह एक बृन्द में नन रहा है। जैसे कथा नहीं धोनभी वैस ही देवना, मनुष्य, प्राणि, दुड़, जीवन-मृत्यु आदि बुद्धि नहीं वैदेवता। इन विश्वासों से जब अपने और अपने से बाहर देखोगे तभी तुम जीवन के रस का ल्लाव पाओगे। तभी तुम सनेहय होकर अपनों देव गणोंगे। तभी तुम गंपूर्ण बन सकोगे, अगे अधूरेगा से निष्कर्षित पर गणोंगे। लोक वृष्टि हो हूँ वह शक्ति वैतों है कि हम सात में रहते हुए भी काल-निरपेक्ष हो सकते हैं। रामायण, महाभारत, वीरपद्मभागवत, सारी धार्मिक कथाएँ, जीवन और इन एवं रक्षी-वर्गी चामलीला, रक्षणान्, वयाकर्ता भगूचा ब्राह्मण धारणोंपर नाड़ा-लोक ही जीक है। जब हम रामलीला, अपथि चौरित या नान्दगामन-रित का नाद्य देखते हैं अगले भी देखते हैं तो नया हम अपने वर्तमान में रहते हैं। यह हम इसी अपनी जीवने जीते आगे काल से निरपेक्ष होकर। याजा भवय ही दी धन्वन जीवि किस काल से हुई होगी यह आगभी यह हमारे साथ है। युद्धों से जीवि नाद्यका दृष्टिना है कि वह कथा कर रहा है? तुष्टित कहता है कि निष्पत्रा अहा हूँ। सब बता चुका हूँ। कथव क अनुष्य। तिहाँ यह जीवना योग रह गया है। वृक्षों की लाया में दो हिंडा, नर-मादा। मादा-नरकी सींग पर अपनी आंघ खुला रही है। यादी जब दीवान आगे अन्यंत कीमत को कियो कठोरतम पर रखे और विवरण माने कि उगका असंगल नहीं ही शब्द।। तुष्टित कहता है कि मैं यही नहीं कर गाया। यैस (अद्वा) भी धूमिताद है वही विवरण; वही जब कर्म-ता से तुष्टित प्राप्त करता है तभी उसे शकुनला दिखता है, वरना नहीं।

अद्वा भी विवरण, अवानी और शक्ति जीवन की अधिकान हैं, एक स्तर पर वे दोनों एक-दूसरे से सिन्द हैं। किन्तु दोनों एक ही सिरके के दो पहाड़ हैं। दोनों को एक समय से एक गाय हम अनुग्रह कर सकते हैं। और दोनों के बिना दूसरे को लक्षणा लक नहीं कर सकते। यद्याकिंचन लोक जगत् तुष्टि समाज और जीवन की धारणा असंगव है। इसलिए जहाँ लोक है वहाँ अनिवार्यतः सर्वत दीर लाई, अनांशी और शक्ति भेदे नाथ रमे हुए हैं। अवानी-शक्ति के विवरण की मानव जीवि विना लोइ विवाह नहीं पूरा होता। उनके साथ याजा कोई दाया, यत और उन्यत रामन नहीं होता। शिव-नार्की जीवना लोक है। इसलिए कांई लिनना भी नाभनहीन क्यों न हो, अगर उग्रंय अदा भाव है तो गीली माटी से लिन लाई। कोई भूमि नहीं लेना है। गेवर द गोरी और गणेश वन जाते हैं। अद्वा-युक्त कोई भी अन भहज ही शुद्धिकार हो जाता है। साधन से गाधनहीन स्त्री-युक्त याजा द्वारा और याजा कीशलया ही जाते हैं। कांई भी अपने दरवाजे पर, विवाह महर के गामने, नेल-स्थोहार की भूमि को चहज ही 'रामभूमि' में निषिद्ध कर सकता

या गाधन वैवत आदा, सभ्य वर्णी जिव-विष्वम्, लोटी भी जिव वन गत्वा था, तोहुं भी राम, तोहुं भी राज, तोहुं देव व नाटि-प्राप्ति अस्ति तु दृष्टः । भगवान् अकाश वता विष्वा, भट्टा च ते विष्वा कीर स्वत्वा यदा यदि तु पृथुं भी । तब भगवि दृष्ट्य-अस्त्रात् वा यदात् तम् तव विष्वा के विष्वा व्याकुल हैं । तभी भी यह विष्वाम आप अंति द्वि यह यदाविष्वा दृष्ट्योवा हूँ नि ॥२॥ यदा तु मान दशक आत्म कर्म म आ देखते हैं । तभी भी तद्विद्या व्याकुल होता है यदा जिव-विष्वीं अवश्य विनाजमान होते हैं ।

जिव (विष्वम्) ही तोत है । तभी भी यह का दृष्ट्य रूप, व्यक्ता स्वरूप इतना बैरात् उत्तम महाविष्वा, भगवद् भी इतना तिहार है । पर भीतर इतना दौरत्युल, इतना अमृत भीतर इतना वराम है ।

प्राचीन ग्रन्थों वाऽहं यतीन्, तुष्टि वीर व्याद्या (लोक) एव, यदा तत् कि तोहुं के लोकान् चो मैं, कश्चाऽपि न । तत्कां विष्वेता ॥ यानि दृष्टा, अभिक क्षीर प्रकल्प है, पर याथ ही उक्ती ही वे दृष्टम् वीर विष्वा है कि उक्तो भावाविवृत् भूल भावावर्त्य के मनस् शुभ त्माये हास आ जाते हैं । यत्प्रवण का केवल यह युह विष्वी व्याकुल में उत्तम व्यर्त्य है, उक्ती ही व्यवधा ते वह राम का मर्य भी जानता है । वह यह, जिव भी इष्टिष्वी, युग्मि वा रेवाना भी नहीं जानत । शिव उर्म (नामान्तर) में शास्त्रान् विष्वे दृष्टावत्, विष्व, हृष्व, दृष्व, उर्मा लोक, पन्थर, हृल दृष्वाय, युग्मा भावी अद्वैती लोक जे आया है । इत्यौर्मेष्वी का क्षय है । यहा दृष्ट्यविष्वा उक्ती दृष्टम् भी या दृष्ट्य विष्वा । एक शंकर एक भवार्ता ! दृष्ट्युक्तुलग उद्या दिए यह योविष्वम् विष्वाएँ पर । उत्तरे जिव भीष्टि विद यामन मर्य हैं, एव इत्यै ते राम गंग विष्वा भीद भी व्यतु, तोहुं भी र्वेष्व्युप्र मानजिवा कार्य के लिए प्रवृत्ति ही नहते ।

(यामनीय तत्त्व का दृष्ट्य भी-पाठ्यान्त्र-आशुमिक भावनाविष्वमा रा वचिन दीनों ते तु नियादो अ-उर्मा भा मर्य तातो जिव है ॥)

प्राचीक तत्वी अग्नि विष्वव ते विष्वी ॥ ज्ञात ते नी वह अहमेष्वी है । तहो ऐसो खड़ा है यहा विष्वम् का दीना विष्वित है । उत्तर भवत्येन भी, भीमर रुग्मी शहस्रार्दि उम्भेष्वम्, गधवार दीनी चलो गए ॥ ३ ॥

'वामा' (भोक्त) में व्याद्युत्यु भीर विष्वित (नृ-तृष्ण्य वीर वायव-वद्वा) ये दी देखे तत्त्व हैं, विष्वा अन्यव वे सामी काल वीर और जीवित लोह दीनों एक 'भूनि' पर शारद हीं हर वायव यावत्वालंभका कर गते हैं । त्रिय प्रकार किमी विष्वेष्य भूमाय, विष्वेष्य उर्म (भीक यः श्वरु च ना ॥ उव यमनाव्यवाच किमी नीमित दीन, नीने जाती, अधीत्या व्यवन् अन्तर्भूती, तु विष्वा ये हीं शमन हैं ॥) में ही शेषिन दीन हुए हृष्व भीव वा अविवेषण न कै देखता आता लक्ष्य माना, उन्हे श्रेष्ठ गदेष्वान कठह में रहते हुए, उनकी विष्वोविष्वा ते वृक्षत्र अवृत्त रखते हुए

भी उम्भमा व्याद्युत्यु वा
‘यामा’ और ‘यामा’
‘मम वान् ॥ १ ॥ तो दीपा वा
है । तभी भी योग्य वान् ॥
निष्वित विष्वा वा व्यव
जी जान अविक्तव व्यव
रही, तो यह योग्य वान
व्यव विष्वा व्यव वा
यमन-वान् वान् वा, व्यव
इम्भ व्यव वा व्यव
व्यववा, व्यववा वा ॥

प्राचीक विष्वा वान
विष्वा व्यव-वान् ही यह
है व्यवव व्यव वा है । तो भी
तो जामी वा विष्वे विष्वे ॥

यहे व्यवव्युत्यु भूम
देखता वेदे ही वै दीन वा
अविवावेन विष्वा का अर्थ

विष्वा भीर अविक्तव
अवे व्यव व्यव । विष्वा वा
को यामी क्या विष्वो वा
अभिवार्ता । विष्वा व्यव
अविवे वा व्यव वा वा के
प्राप्तम् वही किमा । दीनी
वा आवर व यमनाव वा
विष्वी । एवंते वा वायव
वही । तु दीने जा अभिवार
राजा दुष्टों तु सुर्य वा वा

‘अभिव’ की भावी वा
अभिवार वही ॥ ३ ॥ एव
अव्यवान्तर ॥ ॥ अभिवार वही
है । तभी दुष्टों विष्वाके वा
सम्मान वायव वा वा वा
हमस वा दीने जी नहीं वा

य। फिर भी विनाशक अवस्था, शहर की हड्डी दूँगा, भगवान्-
पृथि, यहाँ के लोगों की गय
विनाशाद्वारा। तभी वो यह
देख दीनी प्री, यह अद्युत न देखक-
होना इच्छा देता और जीवनी बदल

ता दूल है व्यक्ति स्वरूप इन्होंने
उन आदर्शों पर उत्तराता गया कि,

“मैं (जीव) न जाकि
मैं क्या देखते हूँ और क्या नहीं।
है कि जीव जानता है। तुल
भावाद्वय का केवल यह गुह
बद्ध हो जाए तब तक कि मैं भी
जीव भी नहीं जानते। तिन् हथों
लड़ी हूँ, अपनी जापा, पर्याप्त,
है हृषी जीवों का इस है।
इक कठोर, एक संवादी। उक्ता-
एवं त्रीट वैद्य-गायत्री मन न हो,
त्रिमूर्ति भावात्मक कष्ट के

तेज आवश्यक हुआ तो अस्ति
में भी यह महसूस हो। उहों
पर न लैवा है, भी न रथ

तुल और भावान्याद्वय) ये
और जीवन की दोनों एक
तरफ है। इस प्रकार जीवी
अवधारणाद्वय किसी दीप्ति
में ही सम्बद्ध है। ये ही
अपना मृण मारत, जीवी
का वर्णन अपने ही हृषी

भी उम्मीद विनाशक है। हम भी उम्मीद का लक्ष्य रहा है।

“जीव और अवधारणा” न यादी की उम्मीद चाहेगी और जीव बोध के अन्य-
तम अन्त विनाशक है। विनाशक अवधारणा के साथ सम्मुख गुहा
है। तभी वो जीव एवं व्यक्ति होना है। जीव यामीने विनाशक होना जीव का एक
निषिद्ध विनाशक है। यह जीव का विनाशक मस्तिष्क बदल है। जीव भी
जीव और अवधारणा जीव की जापा है। यह जीव जीव होने वीजन की जापा ही है। यह जीव अवधारणा में
दृश्य विनाशक है। जीव की जापा है। जीव की जापा है। यह जीव की जापा है।
जीव अवधारणा की अवधारणा की जीवानी है। यह अवधारणा जीव की अवधारणा में
दृश्य दृश्य का विनाशक है। यह जीव की जीव जीव की जीव है। यह जीव जीव है।

जीव मध्यमा अवधारणा है। यहीं। इस विनाशक अवधारणा के जीव की दृश्य
जीवानी अवधारणा ही जीव है। (यह जीव जीव की जीव जीव है।) जीव काल में
ही आदर्श ही है। जीव अवधारणा जीव की जीव है। यह जीव है। जीव की जीव
है। जीव की जीव की जीव है। जीव की जीव है।

जीव अवधारणा युक्त जीवी अवधारणाद्वयों से एक व्यक्ति होता। “असाध्या जीव
जीवना यहीं ही है। जीव नहीं। जीव ही जीवना। एवं। एवं। एवं। एवं। एवं। एवं। एवं।
जीवानी ही। यह जीव जीवना जाहाज़।”

जीव जीव और जीवन यह जीवनी से मुक्त जीवानी जीवनाशम् नामद्यक
अवधारणा है। जीवद्वय का व्यक्ति विनाशक है। उपर्युक्त व्यक्ति में शम्भुनाला
की जीवी जीव में शम्भुनाला जीवी जीव जीवी जीवी जीवी जीवी जीवी जीवी
जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी
जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी
जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी
जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी जीवानी।

अवधारणा भावी जीवी जीवानी जीवानी है, वह जीवी जीवानी है। जीव हृदय का
आवश्यक जीवानी है। (इसका जीवानी जीवानी है।) (पृष्ठ ३६३, अकिंगाग त्वामी
अवधारणा।) विनाशक जीवी जीवानी पर आकर जीव विनाशक सुप्रिय ही जाती है।
पृष्ठ ३६४। विनाशक जीवानी की जाती है। जीव विनाशक जीव विनाशक जीव ही जीव है।
जीवानी जीवी ही जीव जीव है। एक यह जीवानी जीव जीव है। एक यह जीव है। एक यह जीव है।
जीव जीवानी जीवानी जीवानी है। एक यह जीवानी जीव है। एक यह जीव है। एक यह जीव है।

जिस नव्यता की है। इस 'लोक' के बारे में / जरा-गो भी समझ से अनुभविक
बोध वाले भासीद आमने-अपर्दनीयों के बारे में जिनमें अचलता प्रवाहा दिया गया। क्योंकि
एक हाथ में बाइविल, दूसरे हाथ में जिनान का डडा जिये हए वे तथ्य सतार के
माझे जागे का दंग किए भासीपर्याप्त आये थे। जो अपने हतिहास नींहों खबर कुछ
पाते हों ऐसे उसी हतिहास के अधीन अताल को इन्हें करने आये थे। जिनके
अरत जिन में प्रस्तुत श्रृंखला है, मान योग्यण-पदार्थ है। ऐसे अंशों में भारत में आकर
जब वहाँ आये तब वह यह गुण और इसके प्रति धुक्षा का हो जाता है, तुंदायन भव्य
हृष्ण हैं, अद्विद्या दसका यह हृष्ण है वहाँ कोइ दुर्दृश्य-पुरुष-अधिक्षया। नहीं है,
जगन्मध्यमे लालार्जुन जगन के नाम की पुरां है अब युमें भगवान की जीनाभूमि है
—जो अगल्य वात बर्दी, नाट दृष्टि विहर खड़ी, जो अन्त भी जीवा भूमि है इनमें
उनके हतिहास बोध और जिनानावाद पर और उसमें अवता उनके गायत्रीज्ञवादी
अहंकार किन्तु मर्मांक चंचल होती होती, आज हम उसकी महत ही कल्पना कर
सकते हैं। उसकी प्रतीकिया है, 'लोक' के उन जिनान के लिये मास्त्रयनादी,
उपनिषद्यादी प्रयोगों में यह कृष्ण कितान किए, इसका लक्ष ही प्रमाण यत्यों है।

मूँ 1909 में डॉ आरंद कुमार रघुनाथ भासीनवर्म के सामृद्धिक पान और
फला-दूर्दृश-जिनान पर । 1. उनके जिनी 'द नेप्टून ऑफ दी इम्पेरियल जिनान में भाग' में अंशों द्वारा यों इसका सूख्य वर्णन किया गया। उन उनके पर
22 फ़िल्म, 19119 में 'स्टटसमेंट फ़लकना' न इसके महत्व पर एक अपादकीय
लिप्रा और कुमार रघुनाथों के नाम की पुष्टि है। इस पर छोटी अखिल तंत्र 'कर्मकाणों'
कल्पना, दिनांक 25 फ़िल्मवर, 19119 में एक लेख लिला, जिसमें योंके था,
'व प्राप्त एवं व प्राप्त'। अपने दस शेष में या अखिल ने लिखा— 'हम यह
याद भी रखते हैं कि (भारत में) यह जनता, असाधीय पा (ज्वरापीयता)—
है। आपांत्री काम्पिंग विनायक जिताको कि लेलक (कुमार रघुनाथ) ने कर्मका-
नों द्वारा अनुषित करने आया । तुच्छ दो बड़े भाई ही किन् हस्तक काहुं ने रुपचार
होता ही था। इसके लिये भारत के दर अंशों ने-जाह हुए सबने अधिका उपर्युक्त निदान
का। अब ईश्वर ने ज्वराने मील दूर चम्पुद लाड से उन्हें हमारी गुरुकृष्ण-कल्पना के
भिन्न रूप। इसके लिये ईश्वर ने उनके दिलों में अखिलार्य उत्तम और बुद्धि में
पर्याप्त जानकी प्रदान को। अंशों ईश्वरीय लगी इच्छा की पुरिं पुरी इमानदारों
और गिरा में कौर रहे कुं...।

आपांत्री पर अंशों के नाम की ईश्वरीय न्याय मानवार अखिल जैसे कहाँपूर्ण
ते गम्भीर भारत के गम्भीरिक नियमों को जिग्न हेतु में देखा, नह अन्यथा लक्ष्य-
जनक है। इसी दो प्रकार है, भारतीय 'लोक' का उसके प्रति हमारी जेनता, अद्व-
याग्राम और वैचल्य या जिन्होंने प्रति हमारी जेनता, अद्व-
याग्राम की जानकी प्रदान को। अंशों ईश्वरीय लगी इच्छा की पुरिं पुरी इमानदारों
और गिरा में कौर रहे कुं...।

विनाश के उपका इन देश
रही थी। इन विनाश के
परमहेतु की, किन मराठा
की दृष्टि नहीं रही। अपने
खुले थीं आचारण है। नीचे
याभव नहीं है। अमोलिल
परमहेतु और मद्दतमा है
राजनीतिक दृष्टि में बढ़

वीर रामरामा यत्नगत
मो नागरिकों के लिये वे
आदर्शी हैं। गतवा जर भे

मराठर ने पूछा—

जमगे जड़, 'हा वे
मारठर वे नहीं रह
बुद्धा ये ? बहुत विह
मारठर भृष्टा, नहीं
पूरा पुरांसी ? उन
नी शीघ्रतामी है,

देखता है। महाभासा गारी च
भारतीयों के उग आउ
था, जगन्म गारी आउ
आत्मसंबंध न गो रुक्त
भोग-नवम, नवं न नवम
लहर रामराम का रुक्त
कर आउ मे रुक्त न आ
के माथ मामृतिन ने नाम
योग, अपनी युग्माद गो-

आजन लाल शो तो
जलकी दुनर्विहार ही दून
आपहु जानी चाहे होगा चाही
देखन आहार। हमारे लाल
याद ने अपनी गला नीं रोकी
है। अब तक हमारी गारी
पर 'हा है, इने ये देखा

जैसी भी वास्तु के आधुनिक विवरका प्रकल्प। इस होगा। नवीनि ग दृष्टि द्वारा वे स्वयं संतार के जी अपने इतिहास से ही सब कुछ दी जाती हैं करने आवश्यक। जिनके हैं। ऐसे वर्षों तक कला में आकर उपर्युक्त का ही अहीं है, बांदा-ले स्वयं दृष्टि (अः युद्ध-विवरक) नहीं है, बजपूर्ण वस्तु की नियमिति है जो आज भी लोगों द्वारा होते हैं इसे उससे एक दृष्टि उनके साथ। जबकि दृष्टि उपर्युक्ते गहनी करना कर तितार के लिए वाजायिकादी, इसके अनुकूल ही प्रमाण प्राप्त है। सामरतत्त्व के आधुनिक पान और में आकर ही दृष्टि। इस गति और दौरा-वाया। इस युद्धक पर इसके महत्व पर एक रामाद्वयीय हा पर भी अविविद ने 'जयंयोगी' शिख लिया। निकालीकरण, भी अविविद ने हिता—'हृष्ण यह अभासीदा। (अराधीत्यता)— निकाल (कृष्ण-वार्षी)। अभीनन्द ही निकृष्णका जीव भी उत्तम दृष्टि द्वारा अधिक उपर्युक्त निकाल है। उन्हें हमारी सूक्ष्मान्वयन के अधीन वे लगते और त्रृप्ति ने दृष्टि की दृष्टि। तुमीं इमानदारी

मानव अविविद द्वारा सूक्ष्म रूप में देखा, वह कृष्ण अविविद के प्रति तक से जैवा, अविविद का जैव विवरक है। जादिर और सूक्ष्म दृष्टिग के प्रति अभीन्दा दृष्टि का मध्य देखना चाहिए। हमारे भी जैव तथा वृक्ष वृक्ष इस गति विवरक के आधुनिकतादाव ते अभीन्दा का ने जैव तथा जैव विवरक का प्रयत्न किया, उत्तम जैव विवरक है। अब वह हमारी गोपनीय विवरक के जैव तथा जैव ही मध्यम है वह दृष्टि कैसे कर सकता है, इह भी देखना चाहिए। लोकों, परम्परा में अविविद-उपर्युक्त दृष्टि

विनाश वे उन्होंने इस दृष्टि में दृष्टि नवाय ना लें तो यह विवरक और लूट संभव नहीं थी। इस विनाश की ओर लकड़ी पहनी बात न गए थी। यहाँ से नमृतण परमदेव की, फिर भड़ामा आई थी। इसकी ओर व्यवहारः किंतु राजनीतिक की दृष्टि नहीं थी। यह योक्ता का ही पर्याय है। लोक धर्म का लोकव्याप्तिक, ब्रह्मण रूप और वाक्यण है। लोक का विना दृष्टिक दृष्टि, धर्म, विवरक के दृष्टि पाना चाहिए है। इसीलिए इस आविविद 'विनाय और गोपनीय उपर्युक्त को केवल परमदेव और भड़ामा ने ही देखा। ऐसे नव अविविद के अविविदवादी नवेन्द्रियी राजनीतिक 'दृष्टि' में वह रहे।

थो रामराज्य वल्लभासून (प्रधम भाग, पृष्ठ ३०) में उन नहीं गी बढ़ता है। थो रामराज्य देव के लम्बे ने शूष की शूषम पर रही थी। यामराज्यी योग्य-दिव्य आवर्णी है। नहमा धर में शूष त गठन थे। द्वार पर युद्ध (शहरिन) घर्षी थी।

बामराज्य युद्ध—“सात्यु पहाराज क्या इस समय पर के पोतार है?”

उपर्युक्त कहा, “हाँ, वे धीरत हैं।”

मामराज्य देवही क्या है है?

यूद्ध क्ये? बहुत लियो ते हैं।

मामराज्य अन्धा, वी युक्त के यूव पहने होगे?

यूद्ध युक्तके उनके मुह में गब कुछ है।

तो लोकवाली है, उभी में गब कुछ नहीं है। वहीं हर शान गब कुछ सर्वेष देखता है। महाराजा याथी वहीं लोकपुरुष है। गोपाधीजा, दारिद्र्यके वीन और उन्होंने आदीयी ते उन अविविद जीवन वे प्रकाशमय रूप का उन्हीं नाम्युक्त लोकों देखा है, ‘विनाय’ प्राप्त धारा नहरम दर्शे में गत्तु प्रवालिक होती थी। रही थी। उसी आविविद में, वी युक्त लोक लियी थी। दृष्टिग उनका विवरक, रहेन-सहन, योग-विवर, कर्म आविविद और युग्म चरित्र और अद्वैत धर्म से विकुल उसी उन्हें राम्य प्राप्त धारा रहेन-सहन, कमे आजरण, भाजन वस्तु। गोपीं महारमा धन-कर धारे वे अविविद आचीजन में, वहीं उत्तम जात इतिहास दृष्टि में अदलाव के नाम सामृद्धिक जैवनाथ। स्वरूप भी देखा। इसमें आपने युद्ध अपनी लड़ी को पोता, अपनी वृक्षियादी नी तजावा।

अपना जोन, तो नो अपनी अनिमता और वाचीयोंगा है। लोक की व्योज, इसकी पुर्वविनाश ही दृष्टिवाली कमी है। इसी के पोछे अपनी जातीय स्मृतियों का अपह विवरक होता है। जादिर और सूक्ष्म दृष्टिग के प्रति अभीन्दा दृष्टि का मध्य देखना चाहिए। हमारे भी जैव तथा वृक्ष वृक्ष इस गति विवरक के आधुनिकतादाव ते अभीन्दा का ने जैव तथा जैव विवरक का प्रयत्न किया, उत्तम जैव विवरक है। अब वह हमारी गोपनीय विवरक के जैव तथा जैव ही मध्यम है वह दृष्टि कैसे कर सकता है, इह भी देखना चाहिए। लोकों, परम्परा में अविविद-उपर्युक्त दृष्टि

वर्तमान शासीन देशनी में भारतीय समकालीन सृजक कुरुक्षेत्र नामक निकल अपनी वर्तमान आपत्ति का घुमाये वालाओं, इनकी जगत, नीति, वाचा आदि साध्य की उष्ण इकाई आवृत्ति। केवल हमें हमारी विचारों में बचता, हमारी प्रीगता और संसारी दीवाही की छह ही वाटक गंभीर उम्मि द्वारा भी बुराई की एक दृष्टिकोण सैर भी नहीं है। इस इसके बाबत की विवाद जब अवश्यक थी तभी उसका वर्णन मुख्यतः ज्ञानकी अवसरों, प्राचीन सौंदर्यों वाली व्यापक रूप से विवाद के बिना जिस विविध और वृद्धि वाली व्यवस्थाएँ हैं, उसके लिए इस जास्तीकारी का उचित अधिकारी है।

जो हमारी जड़ी देखी है, वह आपकी अवस्था से अधिक व्यवस्थिति कठोरी की पौरा है वह भारतीय दृष्टि के द्वारा से हमारी स्थानियों नामों द्वारा जारी जाय दै, वह अपनी दृष्टियों की जूत्या एवं हमारे विचार का आधार नहीं दै यह ज्ञान की दृष्टि की तरह है। वह आपकी कुलपात्री कुपार अवश्य है। उचित उत्तरादेशी विकास की भूमि है। इन विवादों का अन्त नहीं है। वर्तमान भारतीय ज्ञानों के चलते यह खाक है। अभिभावित हुए होने वाले हैं।

जो महारी है, वही के कामा काहुं दी बढ़ते या जाना जाहुं दी जी विकल लिये मिरी देखो। विशेषकर आपनी जी आपका देखा देखा तो इस कर्म देखी का अध्यात्म है। विशेषकर आपनी जी आपका देखा देखा तो राजनी विवाद मुकेहाकाय अपनी दीर्घ अवधि भारतीय विवाद की जूली खिला है। आपने ?

उन देश दर विवादों का नाम नहीं है हमें यह आपका विवाद या आपकी विवादी आपुनी इमानों की देखी देखो, या इसमें हमारी जानकारी की भूमि देखो या उसकी विकासी दृष्टि की देखो है। यह धर्मी विवादों के देख (विवाद) से ही नहीं कहा (राजनी) जाता है। वह धर्मी ज्ञानों की दृष्टि से आपका देख है।

‘लोक’ विवादों का नाम विवाद, ज्ञान, विद्या या इनी, ज्ञानी अनेक जगत ज्ञानात्मक दृष्टि, विशेषज्ञता विवाद ही कहाजाहा है। लोकों जो कोई दृष्टि विवाद के देखी देखते हैं, वे विद्या, विषय, विमुख्य विवादों ही विवादों विवादों से कोई ज्ञानी दृष्टि की देखाया जाता है। ऐसे लोक हमारे समन्वय में हैं। गोरों मात्र, विवाद, देशी इतिहासी विवाद, योगों द्वारा देखी जाएं हों या इसके विवाद विवादों के देख (विवाद) से ही नहीं कहा (राजनी) जाता है। वह धर्मी ज्ञानों की दृष्टि से आपका देख है।

रहेगी जो आज दीनों का एवं और अधिकारों के दीवानी है।
हमने देख लिया
मदिह का जाल लगाया है।
आ। हम सीधी दीनों की भवानी करके अपनी से जी विश्वास ले।

मंत्रमं

1. उत्तराधिकारी
2. We must renounce all illusory claims. The complaints can had to be omitted in India those those their उत्तराधिकारी अद्वितीय देशों के विवादों के दीनों की भवानी करके अपनी से जी विश्वास ले।

गो गाहा पर्वत गोहि
पुर्ण लाल की आद
मित्र। - देवता, जी
का भी कृष्ण का विन
न का अस्त्र वही यह
मित्र जी के लिए
जासां रे चला का

सर्वांक उम्मीं रुहीं
यही नेत्रों द्वारा आंखें
करी बन गए। यह
किसी द्रव्यान् ही नहीं
कर सकते। अभी तो
उम्मीं जो दो अमृत जीव
इन उम्मीं का रक्षा
किया। इन सुशिराना
किया। आपने?

वास या विजय ही कि
मैं जीतूँ, वहीने यह
नहीं हूँ। (१५) है

देव चाहे रहनी बीम
— जीवन जाल नहीं
की जाय। जीवन जाल
मैं जीक इसका हमनि
पाप नहीं हूँ। इस म
जाल नहीं हूँ। इस लोक
संसार में। जीवन जाल
मैं जीक इसका हमनि
पाप नहीं हूँ। जीवन जाल
मैं जीक इसका हमनि

खोगी ने जीक जीवन जाल जीक शब्द का दीप लगाया। हमन जालीक
ओर जीवार के दीपों का प्रकाश होगा। देव !

हमन देव निया। युद्ध एवं भ्रष्टाचार काल की जीवन जाल से है। हमारे यहाँ
सरेह का नाम मर्दी है। यह नाम जीती ही जीत रहा था। यहाँ जीत की जीत है। यह दप्तर है। हम
था। हम अलोकी विवेका रा। विवेकी है। यह दप्तर है। यह दप्तर है। हम
अचली। दर्जी की। इनका विवर यह गवर्नर है। हमारी जीत लालूं राजा रहेंगी
थह। हे जा कियान राजा इन्हों हे वहीं गांग भगवन जीत है।

गदरी

1. गदरी ग्रन्थ का नं. 14।
2. We must remember also why the degradation and devaluation 'The mighty evil in our Souls' of which the writer complains, came into being. A painful but necessary work had to be done, and because the English nation were the fitted instrument for his Purposes, God led them all over those thousands of miles of a ten Ocean, gave Strength to their hearts and Stability to their brains and Set them up in India to do His work, which they have been doing faithfully.

[KARMAPUGIN, Ceylona, No. 14,
September 25, 1969 —
Reference : TIRUMALISWAMY
From a local ARCHIVES]

गो गाहा दर्शन की है,
वहाँ वहाँ जो रात्रि आद
क्षिति - वेस्टर्न अमे
रिका भारत के बिल
भाग का अधिक यही चर
में उत्तर पश्चिम दिल
गामती है जहाँ क

एक रात्रिका दृश्यों से
ही निराकार आंखें कौ
की कर सकते। यह
किसी दूसरी ही जहाँ तो
यह नहीं है। अधिक
पहुँची हो तरुण अविव
दृश्य उनी ही रक्षा
में और उन सुधारों का
किया हो पाये ?

वास या विद्या ही कि
में अपने वहीं पर
नहीं है। (१५) है

इन चाले इन्हीं विद्या
की दृश्य विद्या ही
लिख दृश्य स्मृति
दृश्य विद्या ही दृश्य म
दृश्य विद्या ही दृश्य विद्या
ही दृश्य विद्या ही दृश्य विद्या
ही दृश्य विद्या ही दृश्य विद्या

जाती है इस विद्या का उद्देश्य जो एक विद्या होना जहाँ परि इसने जाली
और अपार देखी होना है एवं इसी द्वारा विद्या होना है।

इसी देख विद्या दृश्य दृश्य काल की जैसी छोटी होती है। इसी दृश्य
संबंध का नाम मर्दी है, जो जैव जीवी ही जाति व जैव जीव समेत होना परि
था। हय क्लोनों विद्युताना वा विद्युत दृश्य कही जाती है। यह दृश्य है जैव
अवधी एवं विद्युत का विद्युत गतिविधि। इसार्दी इस दृश्य का विद्युत विद्युत
दृश्य के जा विद्युत दृश्य है। यहीं यामी दृश्य कही जाती है।

विद्युत

1. विद्युत दृश्य की विद्युत है।
2. We must remember also why the degradation and dechristianisation 'The Infidels rest in our Souls' of which the writer complains, came into being. A painful but necessary work had to be done, and because the English nation were the fitted instrument for his Purposes, God led them all over those thousands of miles of a ten Ocean, gave Strength to their Islets and Subjects to their Islands; and Set them up in India to do His work, which they have been doing faithfully.

[KARMAPUGIN, Cicentra, No. 14,
September 25, 1909 —
Ref ID: C211091MARSWAMY
From a loose ARCHIVES]

उग पर सवार है । इ
यही गुल आँख है ।
ओर तिरंगे रुद्धि
कोई अनुभवित नहीं
में भरा है । मझे त
जरना है रुपक ना
त्रैट है भारतीय अ

स्पकल्वे और नाटकत्व

आज हम प्रायः अपने नाट्य का जबरथानुग्रहिनार्दिष्म - इस गूढ़ के महारे खिलूल राजन अर्थ लगाते हैं कि अभिनिया में पात्रों को 'वादाम्यापनि' हुए जाए ।

बन्नुदः इस अर्थ के पाले पश्चिमी द्वारा के 'इमी-रेन' का कुप्रभाव है । अनुराति बन्नुल अलग नीच है । यह 'वादाम्यापनि' नहीं है । इसका अर्थ स्पकल्वे गृहा है । स्पक का गी अवकल्य है, कहीं नाट्य की 'बन्नुदानि' के अर्थ का केंद्रित है । इन्हिये सर्वप्रथम स्पकल्वे का मगध अनिवार्य है ।

नाट्य फैल अव्यकाश नहीं है । काम्य है, पर ऐसा बाजा जो रंगभूमि पर उस्तु दौड़ा है । बन्नुद, यही अभिनीत होकर दृश्य होता है । दृश्य यानी उगका एक मंजूरी 'का' देखा-दर्शक समाज के नामन उस्तु लिया जाता है ।

स्पक का महीं विषेन अर्थ है, अर्थोक्ति । लौकिक की जब अनुहृति होती तो अनुकूल उसी गंभीर है जब उसमें आवेद भाव होता । अनद आत ही लौकिक का अनोक्ति ही याना अनिवार्य है । एह कार्य-कारण, कारण कार्य की गति प्रक्रिया है ।

स्पक का अवार रूप है । स्पक ही अर्थ है । एह दृश्य जो आधा दृष्टि ने आया से दिखाई देता है, जो आधा जो अदृश्य है, उसका तस अंदिजान कर सकते हैं । जिन्हा देखता, मेंबर है, उसका देखन ऐसे अपने चेहरे से अभिवृत्ति करता, यही है रंगभूमि की छेषांगता । अर्थ-१ स्पक का अनुर पथ दृश्य है, पर उगना । उगना मूर्ख पथ नी अदृश्य है, जो उगका मौद्देश पथ है, जो स्पक की आभा है, जो द्रेसक का अदृश्य अभिभूत कर उने द्रष्टा बना देने हैं, वही नी है रंगभूमि का नाट्य । नाट्य नी लौकिक अवलोका नी अनुकूलि ।

जग दानी अर्थ दृश्य नीते स्पक होता है, जगनी मंजूरी दृश्य, मूर्खी एवं यह स्पक भी ही दृश्यना या दृक्कला है । कठीपनिगद में रथ का स्पक है, जिहो शब्द रथी है । वैह नाथे एक स्पक है जहां रथाय एक लेना रथ है, जिसमें कोई रथी ही नहीं है । हमारे विना ही या चल रहा है, जोकिए आंगिवर हुग नीचते हैं कि हम

दणहरण, अविनव
संग्रहा वैय एवं अर्थ
किसी ने दी अपन
भूमि निकला
स्पक का वो प्रती
ही दृमाला है अपनी
द्रुमा का नपांग ना

इसा गुरु की ओंना
गुरी मनुषी, एक
ओंग परमा । नाम
आमिक मंजूरी, इम
निकल पता का लाल
प्रणा अक्षीर्णि बल
रिये, उम्मे रण
सम्मन अनुभव स
पांगि नि परहि ।
जीर दर्दी के कहा,
स्पकल्व हो । उ
देह जना । राम
प्रतिमा जलहं नि
मृष्ट जीरु उद्धव
चिन ने नमाखि
देहो । और कह

जल्म पर चलार हैं। इमका सारल है, रसूल जगत में आनंद दिया अपनिनगणा संचार। पही यह भाँति है। उनसे गुरुविन के लिए भाव ने अनुभव को जीरा, दूषण से स्वप की ओर निर्वाचन अनुसूचिप्रबन्ध दृष्टि ही इष्ट है। स्वप के इयंत में अनुभव के बाहर और अनुभवित वही है। अनुभव एक भाव अवश्य है जो आगे गही आंतरिक शोदौर्म से भवता है। नमी दो अपने पहाड़ पात्र हैं। दूसरे भी श्वासना है। उसी भूमि ते उपना है स्वप्न का स्वप्नकथ। इसी से उद्दित है भावनीय वाटकल। उसी से प्रकट है भावनीय अभिनव। गायुम दो विकासीयता।

इस ग्रन्थ के गहार विवरण में ही जाय।
‘देशन’ का नुप्रभाव है।
इसका अर्थ नपक नुरांति के अर्थ के देश-

दास्तपक, अभिनव भावनी, अभिनव दर्शण, वहां तक कि वाद्यवाच जैर मंत्रह। ये एवं अर्थ ऐसे अध्युते और हपक के विशेष संदर्भ में जालीए हैं कि इनमें से किसी में भी ‘स्वप्न’ की कोई प्रतिक्रिया नहीं है। यिन्हें स्वप्न का वाक्य निद है।

इस प्रतिक्रिया विवरण, स्वप्न के प्रभाव हैं। आदो दृष्टि शोदौर्म है, उसी स्वप्न का यो व्रतिनिधि ब्रह्म है। नामक, उसके वाटकल से खोण होने के कारण दो दूसरोंमें अनुभविक रूप से हृष्णने नाटक का एवं योग्य दृष्टि भवत लिया और नुसारा या गवांव नाटक।

इन्हें युवे को अनिष वा र शास्त्रियों में भावनीय बना, गायुम अर्थात् दृष्टि पूर्ण भावनी, एक बहुत बड़े एवं वर्तमान में गुरुवरी। विभिन्न ग्राहारव का विभिन्न अर्थ पाना। गायुम प्रत्यक्ष के विवरण अवश्यक अर्थ विद्या ते निवेद, व्याधिन, पात्रिक नवंदेश, इम वह विवरण का विवर जाय जो परम्परा न देते हैं। उनसे आनंदक पक्ष का एक प्रत्यक्ष प्रमाण है स्वप्न का यो दृष्टकल को गहारा का अपवृत्ति देता। प्रत्यक्ष-वर्त्तीय कला में दृष्टि की दृष्टिरा ने प्रांतिक्षिणी दो जो जैली, जो प्रमाण देते दिये। उनसे इन दो लघुकल को लगाका गया बहुत। उन युग में स्वप्न की विज दृष्टि अनुभव वायर का निश्चय देती है। उन युग को संगृण करा की देखें, तो पापुंग दिवालि के दृष्टि, स्वप्न, विद्यों के स्वप्न, मात्रावैक। दैवताओं के कल, जट्ठों की दृष्टि के कल, गर्भी दृष्टि आते हैं। काव्य मानो लघुकल द होम्यर दृष्टि दृढ़ी के कल, गर्भी दृष्टि आते हैं। उन्हें इन्होंने कहना आपद विद्यों में और युग के विद्यों के स्वप्नका होता है। उन्हें इन्होंने कहना आपद विद्यों में और युग के विद्यों के निष। उनकी विद्या उन्होंने में दृष्टि देती है और ग्रन्थ-विवरण भी इन्होंने इन्होंनों से अधिक लघुकल विवरण करने की होती करते हैं। गवित्य-अभिनव का पूर्व वामदाषुला छिन के ममार्थ गुण के माना जाता था। भावना को अनिन विद्यों की प्रत्यक्ष देता है, और विद्यों विवरण की विद्या कहती है। इस प्रत्यक्षान्करण के माय

उक्ति वेदस् । वीर भाग इन भागों के ओर यात्रा करवाएँ की ओर से विशेष हृषि
गे रहें, जो इस साहैर्दत का अधिकार है । तो वह नमौल, उच्चारणों की उपर्युक्त पूजा
दिल्लीनिमास सभी और उत्तर दिल्लीन वह । अर्थात् जीर भागस्यान्त, वह नारद्वृण
और बाह्य-साहैर्दत, इस वार्ताएँ और भागों वाले जीवन की जानियाँ प्रख्युन
करते हैं ।

लगक ने यह यारी त्रुट्य की व्यवहार गता और अदृश्य का संकेत, दोनों विद्य-
मान है । उभी हमारे लक्ष्य, भागस्य और नमौल द्वयद्विद्यान् जलाओं में हृषि की
व्यवहार द्वयद्विद्याओं और भ्रातृद्विद्याओं के भागस्यान्त का आर्थिक व्यापार मिला है । सार-
नाम के ३५, अवृत्ति के उद्धरणाणि में, भ्रातृद्विद्यान् के लक्ष्य में यही भागस्यान्त
उत्तरांश करते हैं । काल यही साहैर्दत हृषि नाम है ।

नामक की विद्या और लक्ष्य गते नामक उमीदियाँ माना गया है, कि यह हृषि
'भागो' तक 'रेण' के द्वयद्विद्यान् जलाओं लो 'डेव' (द्वय भ्रातृद्विद्यान्) जाता है ।
दृष्टिया और वायना का व्यवहार, शूलियों द्वै, जो वर्णिया भवत्या का अध्यात्म शूलियों
हैं । उन्हीं वृग्नियों का ही अनुष्ठान यथा दृष्टियों के, अथवा । लपकल्प के ही आधार पर
नामकत्व विद्यान् और द्विद्यान् जलाया है । तिगवे । नमौल द्विद्यान् जलाया है,
वह उत्तरांश वाले द्वयद्विद्यान् भ्रातृद्विद्यान् के भाग समृद्ध उत्तरांश वह द्वयद्विद्या-
भाग, प्रहर्ण, दृष्टि, वायना, साहैर्दत, वीरि, वा । और द्वयद्विद्या है ।

स्वाच्छन्द्यान् अन्तर्का और प्रत्यक्ष स ही वारी है शेष थाट स्वाच्छन्द्यवकाशि गे करो
तहों, इस अपने स्वाच्छन्द्य और नामकत्व का रहना बेद छिपा हुआ है । जिसमें
स्वाच्छन्द्य द्वा 'भूते रूचिर्विद्यान्' निहत हो, ज्ञानात् ही वर्णी हो जाए । अब ज्ञान
'पूर्व' है ।

अभिनवगुणान् नामक का यारी के स्वाच्छन्द्य गमयाया है । नामेन् वै नमौलाः
कर्म 'प्राप्त' कहते हैं । आप, 'जाति' के विविधता वा नाम वही जलतः, विविध वायनी के गमयन्ते दो भयों । का सुनिक जलता है । उम्मा उत्तर नामक, जे
वो विविध वर्ण (रंग) होने वे दो तेजों के जलां और वृष्णीयों ये गतिरूप हैं,
नभीं वे वे गमयन्ते गत्यात्मा कारणे (प्रकृत्या) होनें । जलों दुमा है । कर्म (रंग)
(नामक) है । हारी अदृश्य है, वर्णित है, गत्यात्मा लीर गमयन्ता है । वे वे गमयन्ते हैं ।
आन्तर्का और गमयन्ता अदृश्य है । उम्मे वो स्वर्णिता जिसमें लाला कर्म है कर्मणः
वही भाग प्रहर्णन, दृष्टि, वर्ण योग जारी रखता है ।

उदाहरण में विद्यान् जलां का वर्णन प्रकार 'द्वयद्विद्या' कर्म-गमयात् है । अनेक

उदाहरण के अनुसार को विभिन्न विषयों की समीक्षा करने की जरूरत होती है। इसमें एक विषय की समीक्षा करने के बाद उसके अन्य विषयों की समीक्षा करनी चाही जाती है।

प्राचीनतम् गुणं द्विषु नै सम्प्रदाय एव भावते तु आ वर्णि इति,
तित्वा भावं द्वयोऽप्युपासना अभ्युपासना विभिन्ना वरह लोगाम्य वर्भव द्वी
न्ही ह।

નાના જર્ખીંગ હપુર વડ્દ રા અંગાર

• 1.41 • 440

31

सभा पालन करने वालों की समीक्षा करना चाहिए। यद्युपि, लालिंगेंद्र औ स्ट्रॉड में दूसरे ने 'दलिलाम' में १९५५ के बदलावात्मक लक्षणों की विशेषताओं का विवर दिया है, जिसका अनुभव इसके बाद सार्वजनिक विवरणों में भी दर्शाया गया है। लालिंगेंद्र ने दूसरे का अनुभव अपने लक्षणों का अनुभव करने के लिए दिया है।

मीलाये में लोकनामगुण और लोकसूक्त का विचार करें, हाजारिका उत्तराखण्ड की स्थान, विद्या और व्यवहार की दृष्टि से, अपने कृष्ण विद्यालय की एक विशेषता है, जो ऐसा एक प्राचीन विद्यालय है।

वार्षिक वेतन के लिए दूसरा विवरण यह है कि अधिकारी का वेतन वर्षान्त में दो बार दिया जाता है। एक बार वर्षान्त के अंत में और दूसरा बार वर्षान्त के अंत में। इसके अलावा वर्षान्त के अंत में दो बार वर्षान्त के अंत में। इसके अलावा वर्षान्त के अंत में। इसके अलावा वर्षान्त के अंत में।

महाराष्ट्र के लिए यह केंद्रीय विभागों की स्वतंत्रता 'अनुकूल' नामक है।

मध्यांशु
दृश्य है, ल
मान है।
बगद
पूरा रूप
ने। इन्हें
जब सभी
चलता है,
चलते हों
था। बां
वो 'रूप'

बोल
को, देखो,
अभिनव ज
का वास्तव
सीता, मह
है। रूप क

है। ऐसा
जगता। ज
नमानीर
नाटक देख
'रूपानंदिन
निकलना।
दुर्बली उप

भूमि
जो अपन
वाला भनु
कहा। नथा
द्योन
करता नाट
दर्शक से पू
भार उन्मुख

केवल 'ठिस' नाटक दर्शक वे देखता नहीं परन्तु नाटक के लिए जिसे जाने का आवश्यक उपर्युक्त है कि 'ठिस' ही ही बल्पन। यह अपन। इसमें कौशिकी वृत्ति के अंतर्गत, भावनाओं, आरम्भी व चरान्ती वृत्तियों का सम्बन्ध देखना है। इसमें देखता, गिरवा, पद, गाथन, गाय आदि दर्शकेतर आनि वे नायक हों भक्ते हैं अथवा भूत, रेत, पिण्डान इत्यादि प्रयोग का भी गमनेष्ठा होता है। इसके अलावा गंधा में भौलह होते हैं वधु ने वडे उद्धन होते हैं। इसमें शूण्यार व हाथय के अंतरिक्ष बालों के द्वारा नायक जाता है। इसका अगों रस रोट होता है नथा इसमें मायन, डेंड्रोल, शूद्र, काथ, उद्धारित आदि चर्चाओं गाया चंद्रप्रहृष्ट एवं शुर्यप्रहृष्ट का दृश्य दिखाया जाता है। इसमें नैवेत चार अंक होते हैं, नथा विगर्ह अंक वे अनियत वालों वार दर्शिया पायी जाती हैं।

परं नाटकात्मक की प्रक्रिया के लिए केवल मानव जीवन की ही तीर्ती द्वारा उपात्य नहीं बरपा, नायक का आवश्यक है।

नाटक का मुख्याधार स्थकत्व है।

नाटकात्मक ही मध्ये कामक वकारों की मूल प्रकृति है। ऐसके बहु हैं, जिनके ग्रन्थ, विभिन्न कार्य, जिनकी घटनाएँ 'स्थाप्ता' हैं, और तथा स्थाप्त हैं। ऐसे सभी दर्शक की आदाएँ भगवान्न जिह्वांशन लगा देते हैं। इस स्थकत्व से जो अद्वितीय नित्यता है, उसमें नाटकत्व एवं अपने संरेण्य है कि विग्रहामयिता, व्यविनाशत जीवन और अप्य न ही दुख बा काश नहीं है, वह नायिक जीवन में भी जीवन का चारण है। अनियत जात्याज्ञान, विक्रमोवर्णादपि और कुमारभेदवास् वे भी कालिदास की गही दृष्टि रही है कि द्वादशा में द्वादश विशुद्ध दृष्टि किना अविन अनुत्तम आत्मग्रिवि, व्याधिक, गृह्य ग्रन्थों गही जीवन में भी, न व एवं राज्ञि के गत शुद्ध वर्णनयों के नाम को अन्वय दें गहन है।

अपने नाटक में जो इतना रूपकर्त्ता पर चल है, ताथ के अभिनाश में भी इस प्रदर्श 'अल्लाम' का दृश्या सत्तरैय है, उसके पीछे अवधारा में रूपकर्त्ता भूती नकेत है। गाया भासनाय विनाय दूसों एक और दूसाएँ जहर हैं जिनमें आप तो बाहर गिरकरो। व्यवहारित, स्थप भै अपने ज्ञान में बाहर नहीं बिकला तो सबना है? एक ही उपाय है अत्यन्तिर्वाक। उदाहरण के लिए क्वार्ट ये गे दो जगत्तर के बिकलाएँ हैं। जातिर ही पीढ़ी के लाल में विकास करते हैं।

विकास के साथ गर्वि का गहरा वीरद्वै। अपने ज्ञान तो जाहूः निकामा प्रवेष, वस्थान अवश्यि आत्मवंतवृत्तम करता।, दूर दृष्टि गणितान गहरा। उह दोनों

केवं जाने का
जर्जरी रूप के
उपरे देवता,
वीर अधिकारी
में अधिकारी
या ने सोलह
वर्ष बाली तक
देखने पाया,
सूर्योदय का
प्रथम केवल

मुमाय लक्ष्य

हैं, लो ! हम
नक्षत्र में जा
न, अविनगत
भी पान का
स्वर्म में भी
चिना छोड़
दराद के था

ये ने गी इन
का ही करो
गा में बादर
ना है ? एक
चिन निकला
है निकला
। इन चीजों

लिखियों की एकत्र सिद्धि आ नाम है, रूप ने पांचवा ही जन्म। हर भृत्ये जो
दृश्य है, हम मानने की अनुमति है। हर मायने जा हर क्षण विनिश्चित और गति-
मान है।

अपने रुपत्व में गंधर्व, सशान जापा के गाय भौत का अन्यथिक महरक है।
दूसरा रूप नामी प्रकट होगा, जब भव्या का व्यापार कर होगा। जैसा हमारे पुरुषों
ने हरह-जगद् से कहा है। भव्या का, गद्य तो पहला वाप है जगत्ता उत्पन्न करना।
जब यारों हृत्ता रे जभों जन्मता अर्थात् शब्द बोचा होते हैं। बोलने से पहले
न बलना और बोलने के बाद बंचलता। श्रीलोग का अन्य है पहले आठों आष्टकों
न बलना हो जेत्ता, किर यात्ता। इस अनुभ्ये ने या अतीय अभिनेता तुरी वरह परिवर्तन
या। बाचिक जांभरय गे तुरं रुद अभिनय और बाद का अभिनय दस्ती बचलता
के अपने देन का मार्यक प्रयत्न है।

गोन का एक और भी तोकत है अनिवार्यता। सनजय है कि रूप को, दृश्य
को, देखो, उत्तमी अंगिरवंशीया। मे उत्तमी, बेलो नहीं। भोन रहना अर्थी है मूक
अभिनय तो सर्व और सोदरे तीन चुन्हाएँ का गणक। और प्रवल साधन है। वाप
का वर्तनीक रूप अर्थात् स्वास्थ्य, गोग है। योग ही हर है। वरहरामलरित वी
राजा, साराजाके खुद, अवंता के पदमपाणि उभो रूपकल्प है अनिवार्य रूप
है। रूपक क तत्त्व वाल है, जो वह नहीं।

ऐसा पाठ और ऐसे रूप की दिशना चिन ज्ञान के गंधर्व नहीं है। देखना मायने
अगला। अगला मानने देखना। देखना मायने जानना, देखना और जानना दोनों
समानात्म है। चिना जरे हम देख नहीं सकते, चिना इसे हम जान नहीं सकते।
जानने दियते वा। रूप बहु जानना। यह है कि चिना जान हम 'हर' से
'हरपात्रित' नहीं हो सकते। रूप तो रूपान्तरित होना, अपने अन्य से बाहर
पिकलना, पहुँच हरपात्रित होना। देखने और जानने के अलत्ता हमार पास कोई
कहर गया है।

मनुष्य के जीवन म दर्शन, स्पर्शन, असन, अवगत, आदि को अवत शक्तियाँ हैं
जो अपन जान कमों के हर में यहाँ अवृत होती हैं, जिसे करन वाला और समटन
बाला मनुष्य वहो होता है, जिसके भौतिक वे नांतमान हैं। ऐसे मनुष्य की पुरुष
कहर गया है।

दर्शन, रूपरूप, व्यवत और यवण को रुपाकार कर, रंगभूमि पर अंतिष्ठित
होना; नाट्यत्व को बुनियाद है, चिराप मनुष्य व्याकों से भगवत्, तमाज से दगंक,
दर्शक तो मुख्य, दुष्पति व्रथक, व्रथक से सुरक्षक और अन्तः विरोध से संयोग की
आर उन्मुख होता है।

‘ब्रह्मणा द्वारा उनकी बोलकों के बारे में अधिक जानकारी लिया है और उनके वासनों के बारे में भी जानकारी है। इसके बारे में लिखा है कि उनको जानकारी दिलाने के लिए विषय सिद्धांत नहीं बल्कि विश्वासनीयता की तरफ से लिखा है। इसमें एक वासना की विवरण लिखी गई है जो ब्रह्मण की जीवन्यता के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस वासना के बारे में लिखा गया है कि ब्रह्मण ब्रह्मण वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी।

‘अपनी वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी।

‘अपनी वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी।

‘अपनी वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। इस वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी।

जब ‘मैं’ वा ‘मैं’ को उचित करना होता है, तो मैं को अनुकूलीन करना चाहिए। इसी विचारणा वाली है। एक ऐसी वासना ज्ञान की विकासनी के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। वासना की विवरण लिखने के लिए विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। विषय सिद्धांत की बास की जाएगी। विषय सिद्धांत की बास की जाएगी।

सर्वाधिक प्राप्ति लोग अपने बीच में, अपनी गृहीतों में बाहर दूसरों के विचार,

सद्गुरु का गाँव, छोड़ने की खबर है।
परन्तु जगता है।

उचित विचार की वासना है।

‘मैं’ वासना है।
ही जानें जाना है।

किन वासनाएँ हैं?
दासनाएँ के वासनाएँ
मोर्त्यवासनाएँ
संसारवासनाएँ।

‘शृगुरु’ के
द्वयों में वासना
किनारों को वासना
लघु सद्गुरु वासना
पर्वतजानी, प्रात्सूत
दर्शन, गुणवत्तन
अपने में उत्तर
वासनाएँ द्वीप।

मृदुवं

१. विषय सिद्धांत

२. विषय सिद्धांत

३. विषय सिद्धांत

४. विषय सिद्धांत

परामं कर्तवीं, विदेशी याहूनो गेलनामाखीं यादवान् कि एकस्त ल्यकि नीं की ओर दोहुने प्रतीक हैं। उनमें से यादवाने भेदभाव, औपचारिक की भावा लाइता है। उसमें उद्धवाने द्वारा उमवा। जोना यादव बलवा हो जाता है।

इस एक। ॥५॥ मुकुन् ॥५॥ या-होता होता होता ॥५॥

अगर्वल विदेशी यादव अग्राहण विदेशीयाल ॥ मेरी आधी है, जिसमें 'म' या 'मन' लाभ लेप न करने की आधी जिक्र। न 'देव' है ॥ ॥६॥ यह वायाय एक विशेषक है जोना ॥ ॥६॥ अर्थीः इस के अपवाहं गोपनामन कर दिया है।

केनल नवीन हो गा, जो मानवा विद्यवान् वह यत्त्वात्, प्राचीन नवी। यदि यह शब्दभूमि के शब्दीन विद्यवान्, अनुशिष्टविद्यवान् तो कोर्ट ही न होना विद्यवान् विद्यवान् भैजायान् वहांता ही होता। उपम कुल जो विद्यवान् न होता, तुष्ट ली गजेन्द्रविन न होता।

एश्वर्यप्रभान्य विद्यवान् वह उद्य विद्यवान् जीवी मनवा हो जाता है। जब वह म्यार्थ हो जीवी हो जीवी यादव। १६७ लक्षीन ही यहना है, जब वह अगर्वल यामता के विवर गहराहौं रखे हैं। यही, जहाँ यहना है वह विवर में सधम होता। जब यह विवर व्यवस्थी लियायें दिया है, अपनी आराध्याजी, प्राणी, द्वरणाओं, प्रथी की, आज्ञायाजी के प्रतीक विवर ही यह है। जब वह जानका है कि वह प्राचीनत्वविवर, तुष्टविद्यवान् यादव विद्यवान् एवं यादव विवरों का मने क्या है। जब वह आग में उप विद्यवान् की दिल्ला है, जिसमें जन्माने का वायाय भूत और वर्णमान वे चीज इस है।

संदर्भ

१. गणीयमानव विद्यवान् विद्यवान् विद्यवान्, विद्यवान् ४३४
 (प्राचीन विद्यवान् विद्यवान् ४३५)
२. विद्यवान् विद्यवान् विद्यवान्, विद्यवान् ४३६
३. विद्यवान् विद्यवान्, विद्यवान् ४३७
४. विद्यवान् ४३८

चारों तर्फ़ों सा स्थ
करता हुआ उमरि
सब नमी के अभ

यह उद्योग
भाग की कृषिका
जनर्वेंड से ग्रन्ति

इस प्रवाहर पर्यंत
रखना कर दी है।
किया जाना चाहिए
भरतसुनि के अधीन
प्रथमन भारती
का। पर जब वहाँ से
मूलि ने अमरात्री के
भरतसुनि की इदाह
गयी। इन्होंने आदि
का अदिन इदा
वीर उनके दूसों का।
परंपरा प्रदत्तित का
अनितव में विन उन
को लेकर उन्होंने भारत
में ही जरों को डॉलर
कीर्पी को नाट्यहृषि का
ओर उत्तम तात्परी की
गयी।

ही हमारी प्राचीन प
रजने डिलाग का सी
मैत्रता की ओर निष्ठा

और बहुती के
(अवश्य उद्दी) के बड़े
नियुक्त किया जाय।
साधनों के फिल उद्देश
पैद और विदांतों का जा

नाटक : नाट्यकृति

आपो नाट्यशास्त्रों गे नाटक को चरों दस तरह विकृत नहीं हैं, बेसी चरों
दस लाइन नम्रता गे करते हैं या भवाय स्पष्ट गे करना चाहते हैं।

आपो नाटक का वह नाटककार गे जो एक चित्र हमारी आपो के भावन
समझता है, वह गात्रिक दृष्टि गे गे नाटक का चित्र है, गे नाटककार वा। क्योंकि
उग तत्त्वा मे चुनियादो तीर पर जो वहाँ गत्या आया है वह हे भावीतः भावीत हे
अस्मिन्दृष्टि है। गत्या और तर्त्त्वा। इयों पैदे जो कारण रहा है, वह कोई लोकिक
देवी, धार्मिक या किसी प्रकार का कोई उन्नवधर्मी अनुष्ठान है।

ऐसा हमने देखा, नाट्यशास्त्र वा। आपार है देखना ; मुनता अथो अनुभव
जानना है। देखना के लिए प्राचीन मे, जैसा कि हम सदा जीवन और जगत मे देखते
हैं या और बुद्धाएं जीवी हैं। इस उन्ह देख तत्त्वा की चुनियाद मे रखन और न-रखन
है। न-रखन मे यह और भूता दोनों का सहज संयोग है। इसी तर्त्त्व की ओर न-रखन
गे नाटक तथा नाटककार वा। उदाहरण है। इयों ने आगे चलकर लापा और भूतीन के
तहाँ और जीवन का कोई दृष्टि, अड़ा के गाल दर्शन, भूतार के मामन उभुरुर किया।

प्राणिमान ही उपहृष्ट हिस्ते भी कला के उत्पत्ति अवयकत से हो अका
परागल पर होती है। इस उपत्ति मे जो मध्यम है अवयव। जो माध्यम है, इस
बीच उक्ता को देख पाते हैं। नाटक की उत्पत्ति के विधय मे भरत के नाट्य स्वायत्त
मे अव्याय मे एक प्राचीन मत उत्पन्न होता है। इन अव्याय का लाभ ही है
'नाट्योत्तरोत्तर'। इसमे एक कथा है। आपीन काल मे कृष्णगे मे स्वायधून म-वत्तर
के गमांत्र के पक्षान्त अनुरुग मे वैद्यवत मन्त्रवत का असंभ ही जाने पर जब
गमतार मे सुध के साथ दृष्टि भी प्रविष्ट हो रहा तब मर्हेंड के साथ देक्काओं मे
गहरा के दाग जाकर निष्ठदत निया कि हमनो कोई दृष्टि। 'कीज्ञायक जाहिए जो
देखे और सुन जाय वे एम्बव हों। यह जो वैद अवहार है सो यह सी सामान्य जग द्वारा
हूँ लड़ी गत राक्षा, अवहार आप दृष्टि अपर बैठ की रवना कोजिए जो राव वर्षों
के काम के हों। ब्रह्मा जो ने देवताओं को प्रार्थना स्वीकार करते थोनस्त्रित होकर

जहाँ देशी का स्मरण किया और यह संतान किया जिसे देश पांचवें वेद को रचना करता है जो एमानुकूल, उत्तम और उपरोक्ता गर्हित होगा। शाब्दों जगत के लिए सब वर्षों ने एकत्रयन का शब्द प्रयोग किया जिल्लाकरनारों के अधे से मंडल होगा।

यह नाम्यवेद व्याख्या वेदों के अंगों से निभित हुआ। इसके लिए वहाँ से पाश्च भास्त्र की अवधि थी, गीर्वां को आपवेद है, आमतयों को गजुरद से ओप रसां को अपवेद में प्राप्त किया।

इस प्रकार पंथ वेद ने सूष्टि करके वेदों में इह से कहा कि मैंने इग्नात्स की रचना कर दी है। जो देवता, चतुर और परिधनी हों उनके द्वारा इनका अधिक्षय किया जाना चाहिए। इनके कहा कि देवता गाद्यकम से अधिक है। तब वेदों ने भरतमुनि जो उनके नाम पृथ्वी भृहत् इस कार्य के लिए निरुक्त किया। भरतमुनि ने अप्समन् भारती, चारों द्वीप आरम्भी यूतियों ने युक्त अभिनव की वैद्यारी को। पर इब वेदों के कीरणकी वृत्ति की दीजना को आवश्यकता बढ़ाती ही भरतमुनि ने अप्समन्भी की सांग की। इसने कीरणकी वृत्ति के लिए उपर्युक्त अप्सरां भरतमुनि की प्रवान दी। वासन कार्य के लिए नारदादि गधधरों को योजना की गयी। इननी वैद्यारी के पश्चात दृष्टिकृत के उपर्युक्त नाटक का अभिनव लिया गया। देवताओं ने आभिनव से प्रगत होकर भरतमुनि और उनके पुत्रों को करके उपहार प्रदान किया। जूँकि, इस नाटक में दानवों की पश्चात्य प्रदानित की गयी थी, अतएव उन्होंने अपनी अवस्था। प्राणट की ओर अग्निपत्र में निश्च उपर्युक्त नामों प्राप्ति कर दिये। इस पर उड़ते कुकुर होकर छब्ज को लकड़ उत्तरों पर स अग्नों के घरों की ओर चर कर दिया। इस प्रकार छब्ज से ही अर्जुर और डलान दृष्टि पर विद्युत की दृष्टि रही। यह ग्रन्थ ने विषवकारों की गाद्यपूह बनायी तो भाद्रद लिया। विषवकारों ने गाद्यपूह की रचना को तौर उपर्युक्त नाटक की रथा करने के लिए क्षम देवता यथास्थान निर्दक्ष कर दिये गये।

तो हमारी प्राचीन ऐप्रद अनुसार नाटक की उत्पात ग्रन्थांग हुई। उन्हें पहले इन्द्रियों नाम दिया गया। शिव और पार्वती ने इसमें नाटक जीव लाल्य को शोजना की ओर विष्णु नववान ते चारों वृनिया प्रदान की।

और वेदानों के द्वारा चारी गुरुओं को अपने शिष्यों संहेन वाय यंत्रों (अवन्दु नामों) के बजाने के ओर नारद मुनि और गृहवे आदि जीवों के लिए निरुक्त लिया गया। इस प्रवार (कैरिको नृनि गाय वाय गीते आदि मंत्रों नामानामों के मिल गए गर) नाट्य को विद्युती पूर्ण दृष्टि से अपने गमी पुत्रों ने साथ देव और देवायों के करन्तराला समन्वय सूष्टि के द्वारा महामहि के गम्भीर स्वातंत्र्य

ओंग-नारद के भाष्य भरतगुप्ति शणाम करता हुए उपरिवर्त द्वारा । फिर उन्होंने गिरेवल किया अगवन ! नद्यन का पहण (मिश्राम आदि कार्ण) पूर्ण हो जाता है अब अप बाजा दीक्षिण तिक्तांगे बपांगे जाये ?

यह गुरु पिनामद लक्ष्याङ्गों बोले— इस समय ओमित्य के लिए फिर मेरे बहु अपल्ला नवमर था पता है । महेश का इस समय एवज-महोन्यव चल रहा है । अतापि इसी भक्तिमत्र पे इस नाट्ययेद का भी वर्णांग लिखा जाये ।

तब उम उच्चल महोन्यव में—जो तिक्तांगों और बालकों वर विजय-प्राप्ति के उगलक्ष्यमें सताया जाता था लक्ष्य त्रिसमें आवांडिन देवगण द्वारा उत्तर रह थे, ऐसे प्रवाहार इन नाट्य प्रश्नोंग शरनुत करते हुए तार्येवस्म में भाष्योदावल्यक गुरुलों से उत्तुन नाम्नों या पाठ किया । इह नाम्नों के पश्चात देवलाङ्गों द्वारा देख्ये । १३ विजय प्राप्ति करन का ऐसा ओमित्य प्रस्तुत करता प्राप्ति किया जो कांशपूर्ण बच्चनों अगदड आदि कार्यों तथा मारकाट और युद्धार्थे किये गए आवांगोंसे दूका था । इस प्रकार इस्कार ग्रन्थाली तथा देवगण मंत्रुष्ट हो गये और तब इसलगता उन ग्रन्थादि देवों ने सभी प्रकार के उपकरण नाट्य-उपकरण में आगे बालों बस्तुएः प्रदान किये ।

इसमें जो गहला (नाटक नहीं) नाट्य प्रकार लिखा गया वह कृपक जो तार्यां प्रकार था, 'सपत्रकार' । उपका नाम था, 'समुद्र मंथन' । इसके बाद तो दूसरा नाट्य प्रकार लिखा गया, वह कृपक जो पालवां प्रकार था, 'डिम' उमका नाम था 'विषुव्राह' लिखके दियके थे—शिव रवय ।

इसमें आर्थूमिका के बाद दूसरा मुख्य वापर पर आते हैं कि हमारे नाट्य शास्त्रमें अलग यो नाटक पर लक्ष्य नहीं हैं ? अगर चच्चे हैं तो केवल नाटक के हीम नाम्नों की है । इसका एक कारण यह है कि अपने यहां तात्त्विक दृष्टि से नाट्य से अन्य नाटक के भवनों भिन्नत्व नहीं है । इसके भी पीछे वही भास्तुत्य भाव है जिहमारे यज्ञों तिर्योत्तर गोदियं दृष्टि का कार्य स्थान नहीं है । कला जाहे वह नाट्य कला हो या मंगीन कला हो, अधोत नह, किसी भी प्रकार की बलाकृति है, वह तुमन् जीवन से अनग नहीं है । रघुभावनः जैगा अपना जीवन दैनिन है, जैवा ही हमारक कला दर्शन है ।

नाट्यमें उम सभ्य से भाविक लपना रुक्तिं गहन्य प्राप्ति करते ज्ञान जिम सभ्य से हमारे गांस्त्रिक जीवन में कला और जीवन में अलगाव भुल हुया । यह मर्व-क्रिति है कि कला और जीवन जब अल्पा-अलग हो जाते हैं, तभी इन उकार की विड्यनामूले रिक्ति देवा होती है कि कला के विभिन्न पात्र अपनी भागिको रुक्तिय मापने आते हैं । ऐसीग जब तक कला और जीवन एक रहते हैं तब तक यह दृष्टि भाव नहीं होता । ऐसीहाँगिक दृष्टि ने यह पश्चिम में दहून ही जल्दी हुआ, जभों कला बहां जीवन से अलग ही गयी ।

50 / रामायुगः भास्तुत्य नाट्य सौदर्य

हमारे यहां पश्चिम नद्य और नोर, उत्तर अग्ना अपन नाम उपनी कले के सिए एचोर । अपने यदि शास्त्रों के निम्न उपन गंडिंज जो ढंग है, वह यहीं जाकर्त्तक धोनिर ही है । इसी की 'नाट्य' से स्वरूप है उपन अल्पतिवयव त्रीय आवाय चलना ही न्यायीन है । मका है ।

पश्चिम के उत्तरांग अलग नामों पर बहुत लंबे संवद्धान, पश्चिम का शिविर या सार्वजनिक अनुभव करता है कि वीरकि कि रापत जीवन का गोपनीय और लीलांग, समर्पण जीवन

इही नीनों कलों के नियंत्रण न कर नाट्य की जो तिम तपत्र में नाट्य करने स्वपक ने लिनाया गया तानाट्य, स्वपना रूप तथा रूपक । में नाटक के देवता देवता रक्ष । जैहे क्या, गाय और गीर नाट्य में विवर नहीं ।

जिस प्रकार गंगा वीर और विष्वामी देवियोंने

ये वर्णन आत वो धनों नहीं हैं । हमारी सांग नवा जीवन और कला दोहों का अपने स्वर्म का सपझना अनियोजित नहीं है ।

नाट्य, रुक्ति, मुख्य और

किरणहीन निवेदन
पूर्ण हा चूपा है अब
के लिए किसे बड़ा
होगा तब उठा है।

मैं प्रतिष्ठान के
वरण भारतीय पिचर
मैं वैदिकीय शक्ति
देखा तो इसे देखो
मैं जिया आजीवन
मैं जी आद्यात्मा से गुरु
मैं और तब इसी गुरु
मैं आई वैदिकी वसु

वह इष्ट का गानवा
हमने बाप को दृश्या
'हिम' भक्ति नाम था

हिमारे नाद्य शास्त्र
के लिए नाड़ा, जो जीव
के दृष्टि ने नाद्य से
भास्त्रीय भव है कि
ला जाहे वह नाद्य
के बलाहनि है, वह
न होने है, बैगा ही

रहने लगा तिग मग्न
शुरू हुआ। यह मर्व-
दर्शी इस प्रकार का
अपन भास्त्रों वर्णन
के लिए वह हीन भाव
दी हुआ, जो कला

हमारे यह! परिचय के तापक से पूर्व, गिरन शीर कला, नाटक और नाद्य,
भूम्य और नतेज, परार्थ और उत्तरार्थ, इन गवर्नें अनग-अनग घुंड दिखते हो रहे।
यहा आगे लिए अपनी कला उपर कलार ते आधारितविन का अंग है जैसे आधा
के लिए उत्तरार्थ गान यहा की ज्ञान नतेज दिखे भी जाने है। एहाँ अपनी
आत्मा के लिए अपने हांस की आहुति दी जानी है। अदर्श कला और जीवन का
भी होड़ है, वह वही बाहर नहीं है, भोजन है, अहीं बाहर प्राप्तकर्मों नहीं है,
बनिक भी-तर ही है। इसीलिए रक्षाधीनता की अवधारणा इनमें नहीं है कि नाटक
को 'नाद्य' से रखनेव होने का भी बाहर करे। इसे यहाँ लिया जाए नगारीनता,
आत्मनियन्त्रण और अन्य जीवनीकारण में है। प्रथम आगे 'ज्ञ' को 'पर' में गोलाकर
चलना ही स्वाधीनता है। इसीलिए नाड़ा ने नाद्य में अनग न रहे नहीं देखा। जा
तका है।

परिचय का नालालार अभिनवी होने का। यह कला के अन्य प्रकार में भलग-
आनग स्तरीय पर बहु बहु बहु। विभक्त हुआ। दुगरा कलाश यह कि वर्द्धन की कला
संवेदन, परिचय का ज्ञान प्रिय संवेदन पर बहु बाधामित है। इसके द्वारा
विपरीत भास्त्रीय कला, भास्त्र का ज्ञान, प्रिय संवेदन से बहुत जाये जानेर यह
अनुभव करता है कि जीवन एक है, असंद है और इसको एकना सीत वातां में है,
कि सभी जीवन का दोनों एक है। इसे, समस्त जीवन का अंति भाव एक है।
और दूसरे, समस्त जीवन का लक्ष्य एक है।"

दूसरी नीरां यातां को नोनकर भुजे ऐसा लगता है कि नाटक को नाद्य में
रखनेव न कर नाद्य वही जो प्रभासा की गयी है 'अवग्रहानुरूपनाद्यम्' और इस
पिता नात ने नाद्य लिये जोड़ा गया है -- 'एष द्रुद्यन्द्यमेभात', लीर इसे अंतर:
लिपि गे स्त्रियों गया है 'स्पृक-प्रगमार्गाण्' वज्ञों प्रकार अर्थ में नाटक,
नाद्य, लिप्तां लिपक है। इसी नाय के व्याप्त में रखकर हमारे नाद्य शास्त्र
में नाड़ों के केवल नीत नहीं पाने चाहे हैं कथा-प्रत्यु, वेता (पात्र) और
रण। जैसे चाचा, पात्र और रण में विभेद नहीं किया जा सकता, उसी अकार नाटक
और नाद्य में विभेद नहीं किया जा सकता।

यह प्रकार ये अंति सूचि में विभेद नहीं किया जा सकता, उसी नाद्य असा
प्रेर विभवया ने विभेद नहीं किया जा सकता।

ये बातें यह एक प्रभेदित्येष मात्रशिक्ता में भास्त्रों से तम्भे में आने वाले
नहीं है। हमारी गाने कला दृष्टि अस्तुतः दर्श दृष्टि के अधीन रही है। इसकिए आग
जीवन और कला दृष्टि लें किसी भी पन की तमस्ते के लिए, सभी एहाँ
अपने घरे को समझना प्रतिबाध्य है। कला, जाहिल्य अपने यद्यों घरों से व्यवग कोइं
जीज नहीं है।

नाद्य, दंय, शूषि और नाद्य कला अंति एक विशेष उकार नो अबलगा कर

धर्म है। अपने सनातन धर्म की सबसे बड़ी जगती भ्रातृत्विषयता है। नियंत्रक कथा (भिष) वा गृहन। वस्त्रा तोटे कीवि कल्पना नहीं है, यह जीवन के प्रथम सत्य का मालान कृति है। उस प्रथम मन्द के मनोयं जो भाषा हो राक्षों हैं, उसके द्वारा उस व्यवहार करने का प्रयत्न हो कर्ता है। यही कथा 'समुद्र मरण' भीन 'चिपुरदाह' की बें कथा जन्मते हैं जो नाट्यशास्त्र के आदि में नाट्य कथा ज्ञान से देवताओं द्वारा देवताओं-देवियों के सामने खेल रही हैं।

जीवनों रखने की विशिष्टता है, वहीं जीवन जीने की विशिष्टता है। जीवन की जीविता ही जीवा में 'वन्दन' है।

इष द्वारा नाटक, नाट्य तो अजग कीर्ति जीवन नहीं है। कथा, रात्रि तो अजग नहीं, पात्र वर्णक और भीता तो अजग नहीं। यह मन्त्र अभी सनातन अधिकारी तो जीवानी है, वहीं सज्जों रातों 'विभग' अवश्य मारा घर्म (संभूति) व्यवस्थित है। यह नव छुट्टी नाट्य का पूरा आधोंजन, दर्शक गमनात्र के जीवन के मनोमय का गुण वापी-जन, दर्शक ममाज के जीवन क मनोमय कापाएं का भोगत है, अंग है। इसीलिए मूलभाव इतका धार्मिक है। शास्त्रिक धार्यने यतुपर अपने पशुनालि गे मुक्त हो जाये। अपनी निष्ठा, जीवन स्थूल फैले में नियंत्रक लंबे उठाने के भाव से जृद जाये।

यह द्वाय नाट्य शास्त्र क अनुसार नाटक, जो एक प्रकार है इसके केवल नीन नहीं हैं, कमानालू, तेज़ी (नाटक, रात्रि) और रस। इसके विपरीत 'द्रामा' के गान्धीन्य है—'प्लाइ, फिरेक्स, दाइसाय, नाटक' हैं ऐसे, रात्रि, परपत्र और विषेशीकरणी।

वन्दनः नाटिका द्वारा नी ही नाटक और द्रामा में मुख्या अंग ही नहीं, विशेष है। नाटक अवन्य को अनुचित है। अर्थात् इसमें अवन्य की ऐसी स्थानिति (प्रदर्शन नहीं) है, जिसमें गाय वल कुनित्य पर है। द्रामा, अवन्य नहीं, वर्त्तक प्रकृति की उसके मापते दर्शन रुपकर उसमें यान्तीहन नैतिकता के चेहरे के दिखाना है और उगानी वास्तविकता का मजाक करना है। यही नाटक का प्रयोग है, जारी-जिम देश-क्रान्ति की जगती ये 'प्लाइ' लिया गया है, उसके लगीर, उसके शाकार और उसके दर्शक की दिखाना ही 'द्रामा' का लक्ष्य है।^१ दधार का लक्ष्य राजनीतिक है।

अर्थात् दूसरे नाटक में अनुचित है नां परिवर्तन के द्रामा में 'हमोरेशन' अधिक अनुकरण है। कलनः इसके द्रामा में प्रस्तुति के स्थान पर प्रदर्शन का नहर प्रक्षम है।

इस प्रात्तिक्षम में परिवर्तन के जीगों ने जैले विनियम जोःम, मैक़ालन, गैरमधुलर, कीर्ति, आदि अनेक विदानों ने व्यवहारः द्रामा की हो दृष्टि महस्त्रे नाटक को देता। परन्तु हमारे नाट्य और नाटक दोनों नीं आत्मा की समझ नहीं

ही विशेषता है। निर्भय कवा
यह जीवन के दरमान तथा बी
जाया है। भक्तों के उनके द्वारा
‘संग्रह भव्यता’ और ‘विशुद्धाह’
के नाटक करना क्या मैं देखता हूँ

तो यह को प्रेक्षणा है। जागत की
जल नहीं है। कवा पाप से अलग
न सद अस्त नदान तीरि दी
धर्म (नामी) व्यवस्था है।
उत्र कर्त्तव्य के नामी का पुरा
का भौजन है। अंग है। जातिएं
तुला वारि पशुन्त्र तो गुका है।
बढ़ रहने के आप में जुड़ जाय।
जो रुपक का एक प्रकार है, इसके
पाप) और गा। इनके ‘विशेष
इत्तम, दृष्टि गुण, नाटक,

मा में सुलभूत भार ही नहीं।
तु द्वय अवश्या को ऐसो इम्ति
रह है। इसम् अवश्या नहीं, बल्कि
विलहित नाटकों के चहरे का
नाक करता है। यही नाटक का
ए जटि लिया गया है। इसके
द्वितीया है। दृग्मा का लक्ष्य है।
म के द्वारा ने ‘उमें दग्धत’ व्याप्ति
व्यवहार प्रदर्शन का नित व्यवस्था है।
जैसे जिनियम नाम, मैल्डालन,
जनन; दृग्मा जी हैं दुर्दिग ग हमारे
देव दीपों की आन्दा की सम्पदा भरी

गये। उनको दृग्मा जानी दृष्टि में दृश्यों पदों के केवल दो ही। नाटक ‘अभिभवन
शास्त्रानन्’ और ‘मृद्गकर्णिकाप्’ ही उनकी गम्भीर गोपनीय है। इनजिए उन्हीं दो
नाटकों के पौजनाशूले द्वय में अनुचार रिये और दृग्मा की ही दृष्टि में इनकी
व्याप्तियां प्रस्तुत कीं। यह दृष्टिना इत्तमिप्, हूँ ते कि इन दोनों नाटकों में दृग्मा की
तरह एक नाटक है। एक नाटिका है। एक नाटकात्मा है और एक रुद्र है। एक
ऐसा केही लक्ष्य है जो परिवर्तनी भूवित करीब है।

मेरा विश्वास है कि ‘अभिभावन ग्रन्थानालय’ और ‘मृद्गकर्णिका’, दो दोनों
नाटक ग्रन्थ। नाटक परंपरा के प्रतिनिधि नाटक नहीं है। प्रतिनिधि नाटक हैं
—‘मृद्गकर्ण’ और ‘दिग्म’। मनवसार लोक का प्रतिनिधि नाटक है गुप्तव्यवस्था
और दिग्म का प्रतिनिधि नाटक है। —‘विशुद्धाह’। इन्हीं दोनों नाटकों को चर्चा
नाटक ग्रन्थ और दण्डवत्पात्र में व भी पैदृत है। अतः इन दो नाटक प्रकारों के
बारे ने ग्रन्थः हम जान जाना चाहिए। दिग्म का वर्ण है, ‘वाता शान्तिकान’ करना।
दिग्म ग्रन्थ नी दृश्यन् ‘दृम मञ्चात्’ इस वातु से है। अतः दिग्म का नाटक वह
स्वरूप है, जहाँ नाटक का लंगास अगार हो। इनका अनिवृत्त इतिहासधिकार
होता है, कैरियों से इन तीन वृत्तियों पारी जाती है, तथा जार, गोद, बौमलया,
अद्भुत, अस्ता, अयानक ये लह तथा धार्ये जाते हैं। इनमें उपान अद्यायी रख रख
ही होता चाहिए। विद्यर्थीं में इसमें नहीं होती। पुष्प, प्रतिपुष्प, नम्र नदा
निर्देश ए चार ग्राधियां अंगों नहिं धारी जाती हैं। इसमें भाषा, देवताओं का वर्णन
अनुग्रामी का आवश्यक लेया जाता है। जाकी इत्तमाना वादि नाटक भी ही नाटक
द्वारा हो जाती है। यही यात नाटकीय भाषा विशुद्धाह की कथावस्था की तुलना
के द्वारे में जाती है।

“दृग्मा न विशुद्धाह में इसी लक्षण का बताया है। इसांतरा विशुद्धाह दिग्म
नाटक है।”

‘मृद्गकर्ण’ में दो नाटक की दरह आमुख (पुर्वरंत) की दीर्घा त्रि। इसका
कृत्य दृश्यात्मी और दृश्यों से भेद विनिद्र वस्तु होती है। उसमें दिग्म ग्रन्थ
जहाँ होती है, कैरियों से जिन दृतियों पारी जाती है, अतः इत्तम के दृग्म (दिग्म)
देवान दातव होती है। य नाटक इतिहासप्रतिवेदीते ही नाट नाट्या में वायन
होती है। इन चारों फल मिन्न-भिन्न होता है। ए वर्षे नाटक वीर वस्तु वृष्ट वृष्टि
है, इसमें अमृद्गम्यन संपादन जाते हैं। इस प्रकार इत्तम का एक वीर होता है। इसमें
निन अंक होते हैं, जिनमें निन वार कपद, निन प्रकार वा दृम, अर्थ व काम का
शुणार नवा। नीन वार, पात्रों संभगदह व विद्वय का लंगोंजन किया जाता चाहिए।
इनके वहले अंक में मृद्ग व प्रतिपुष्प ये दो ग्रन्थियां द्वारीं नार्तिहृष, नार्था इसकी कथा
नोभिमि मही (बारह नालियाँ) की होतीं राहिए। नालियाँ ग मत्तजव दो पक्षी
हैं हैं। इनमें दिग्म नान कपदों की योजना होती है जे वस्तु, विभाज नामा ग्रन्थों के

हीर विशेषण है। निर्भय कवा
यह ब्रीमदि ने उथन तथा बी
तापा ही मकानों के उपरी द्वारा
‘संग्रह भूषण’ और ‘विशुद्धाह’
में नाटक करना क्या में देखता हो

तो तो जीवन का अवधार है। जीवन की

न नहीं है। जीवा पाप से अलग
न सब जीवन गतिहास की
धर्म (गतिहास) व्यवस्था है।
जीव की जीवन के कालों का पुरा
का भौतिक है अंग है। जीवों लिए
तुल्य रूपी पशु-चतुर्वय ये गुण हों
जो उठने के भाव में लूँ जाय।

जो रूपक का एक प्रकार है, इसके
पाप) और जा। इनके ‘विशुद्धा
हृष्णाम्, दृष्टम् गृह्णेय, नाटक,

जो में सुलभूत भार ही नहीं,
हिंसा अवश्या नहीं, बल्कि
विनिहित निवास के चेहरे का
नाक न रहे। यही नाटक का
पाप वृष्टि लिया गया है। उसके
द्विकाता हैं दृष्टा का लक्ष्य है।

में कुपासा में ‘उम्मेदगत’ व्यर्थान्
प्रयत्न गत प्रदर्शन का नाम अवश्य है।
जैसे विनियम नो-म, मैल्डालन,
जैन; दृष्टा नीं ही दुर्दिग या हमारे
द्वारा दीर्घी की आन्दा को समझ मही

गाये। उनको दृष्टा वाली दृष्टि में दृष्टार्थ यहां के केवल दो ही नाटक – ‘असित्राम्
शास्त्राम्’ और ‘मृद्गकर्णिकाम्’ हों उनकी गमण में शा होते। उनजिपि इही ही
नाटकों के प्रेजनापूर्व दृग् में अनुचार विविध भी दृष्टा की ही दृष्टि में इनकी
व्याख्याम् प्रस्तुत की। एह दृष्टिना इतिहास, हूँ तो इन दोनों नाटकों में दृष्टा की
तरह एक नाटक है। एह नाटिका है। एह नाटकाम् है जो एक एक है। एह
ऐसा कोई लक्ष्य है जो पर्याप्तमी नुस्खे के रूपी है।

मरा विष्वास है कि ‘असित्राम् शास्त्राम्’ और ‘मृद्गकर्णिकाम्’, ये दोनों
नाटक नाटक। नाटक परंपरा के प्रतिनिधि नाटक यही है। परिनिधि नाटक है
— ‘मृद्गकर्ण’ और ‘रिम’। मनवासार होक का प्रतिनिधि नाटक है नामुद्राम्
प्रोटोडिम का प्रतिनिधि नाटक है – ‘विशुद्धाह’। इही दोनों नाटकों को चर्चा
नाटक गायत्र ओर दशास्त्रमें व भी पैदूर है। अतः इन दो नाटक नाटकों के
बाहरे नाम्नः उभ नाटकों चाहिए। दिग् ५, अर्थ है, ‘वाता विनियम’ करना।
दिग् गति नी दृक्षर्वन् ‘दृम मशावै’ इस भावन् से है। अह: दृम का नाटक यह
स्वरूप है। जहां नाटक का लंगाम अगार हो। इनका इनिकृत दृश्यहास्यसिद्ध
होता है, कैचिकी से इनके तीन वृत्तियां पार्शी जाती हैं, तथा जोर, ऊर्ध्व, बीमता,
अद्भुत, कर्ता, भयानक ये छह रूप याप्ति जाती हैं। इनमें भयानक स्थाया रूप चौद
ही होता चाहिए। विद्यम् संघि इनमें नहीं होती। पुष्प, प्रतिपूजा, गम्भीरा
निर्देश में जार याधियां अंगों नहिं पायी जाती हैं। इनमें भाना, उद्गतात्म आदि
अनुभावों का आवश्यक लेया जाता है। वाकी दशावृत्ता विनियम नाटक ही हो नहीं
शोनो है। यही यात नाटकीय भावन् नाटक विशुद्धा की कथानक का तुल्यगा
के दारे में रहता है।

‘दृमा त विशुद्धाह में इसी लक्षण का बताया है। इसांतरा विशुद्धाह दिग्
नाटक है।’ ३५

‘मृद्गकर्ण’ में दो नाटक की तरह आमुख (पुर्वरूप) की दीर्घा त्रै। इसकी
इच्छा दृश्यामी और दृश्यों से भेदभाव वस्तु होती है। इसमें विमर्श गम्भीर
जहां होती है, कैचिकी से जिन दृश्यों पार्शी जाती है, अह: इसके नाम: (गति)
दृश्यामा नाटक होती है। ये नाटक इनिहासप्रतिवेद्य स्वरूप त्रै नाटा याद्या। ने बायह
होती है। इन नाटकों कल मिन्त-भिन्न होता है। ने कर्ता नाटक यीर अह न पूर्ण लोल
है, ऐसे स्वप्नप्रथम संपादन तोते हैं। इस प्रकार इसका एक दो रूप होता है। इसी
नीन अंक होते हैं, जिनमें नीन वार, कपद, नीन प्रकार तथा दृम, अर्थ या काम का
प्रयागार नाम। नीन वार, पात्रों से भगद्रह व विद्युत का समोजन किया जाता चाहिए।
इनके पहले अंक में मूर्च व प्रतिपूजा ये दो विविध दृष्टान्तों चाहिए, जाया इसकी कथा
नीनीय मही नीनी (बारह नालिका) की होती रही है। नालिका में मतलब दो पक्षी
हैं हैं। इनमें दिग् नाम वर्षों की योजना होती है ये चम्पा, भूभाज यादा शशुलों के

इत्यां चिन्हेन होते हैं। इसमें नगरोपराय, गुड़, बाज़, अग्नि आदि उपायों के कारण विद्यम हाल होता है। इसमें धर्म, अर्थ, नामा वापरी भी शाहू का व्यवार प्राया द्वाता है। चिन्ह नामाक अर्थशब्दिः, भृत्यात् नामकनुचेत (अयोगधार्य) नहीं प्राया वापर। ब्रह्मन् तो उत्तम इसमें प्रथावश्यक वाच्यों को योजना की जाती चाहिए।

इसमें काच्च के प्रयोजन टिटकांगे लाने हैं। (गमनवीरिंगमें प्रभन्नर्षी इति मनवकार।) इसमें नामक वी वरह ही आमुख होता है। कौरिको वा 'त्रिशि' पहले बापाता है कि सारे लाकों से आमुख अवरह होता चाहिए। चिमर्ण, चौंजह चार संशियों होनी हैं, तथा देव-देव्य आदि वारह नामक पात्र होते हैं। इन लाकों के कल विनान-विना होते हैं। जैता लगुद्रप्रयत्न में निष्ठा आदि लेखार्जी की जगह लक्ष्मी आदि की कल्प-प्राप्ति होती है। इसमें योर अंगी रस होता है, बाकी रस ऊंच होते हैं तथा तीन गुण होते हैं। इसमें नेत्रम अंक का इतिवृत्त वारह गारिकः वा होता है; लाकों दो अंक कमया; चार लालिका व दो लालिका के इतिवृत्त से युक्त होते हैं। इस अंक म तीन करट नयः नगरोपराय, गुड़, बाज़, अग्नि आदि से जनिति विद्यवान् म य उल्ल-एन विद्यव दृश्य होनेत जाहिए। धर्म, अर्थ नामा वापर इन दोनों वरह के अंगारों में ते हर अंक से एक एक वृत्तात्र की दो लालिकों होनी जाहिए। वाच्यों तो प्रदेश आवश्यकनान्यासर किया जाना चाहिए। नामकों के आदि गे चिन्ह व प्रवेशक का वर्णन किया जाया है, परं यहाँ उनकी सीमाओं नहीं की जानी चाहिए। प्रहो गमनवकार का नक्षण है।

द्वात्र इन की बात यह है कि 'अधिजान शास्त्रवस्म' की भृत्यान तथा अधिनिधि नाहर यानें के दाद परिचय न गत्। 1789 में, जब से विलगण दोनों वा 'अधिजान शास्त्रवस्म' का अधिगी अनुवाद प्रकाशित किया, तब से लेकर आज तक कुछ-तों नह देख से पाहन नाहर और रघुभूषि के वारं पे यही छाँच यनःकर नैयार की गयी है कि नह पुरानी गीली करे। यह लेखन के दोल अर्थ, पठन-पठन के योग्य ज्ञाता है। परिचय के द्वात्र से लेखन के लिए नहीं देखा। नाल नालिं भी असुनि करण नहीं, प्रदर्शन के दहरी ग भग्नूर हो। किया प्रश्ना हो, धर्मा प्रधान हो। इसके लिए धर्मार नाटक के रथान पर विशिष्ट 'दृश्या' को रथापिन किया। हमारे न दृश्य का प्रतिनिधित्व वी 'नगरकार' दृश्य आदि होते हैं, जो किया प्रश्न और चात-प्रतिशत्तु तुर्णे हैं, वी नाना प्रकार की अवरीद, गुड़, गंगा, नाम, अग्नि दृश्यों ते भरात्र हैं। इस पर पर्वा द्वात्र इत्या।

पिण्ड नाट्य यकार में एक तरीं वरह नामक हैं, तेरं नाटक अवरीदों वा तो एक भनावादी लक्षित के गुलाक अनुमोदी जन स्वत्ने हैं।

उनका कलाशिः वोक विनाशाहो वी शृंगारोम रोम विषेष, यह तत्त्वायकतावादी नानाजाही बही विरकुण विनाश हे राजवातः हस्तियों के नियमी स्व वी विद्युत धा नोग वह है ? अपर वी हीभिन्न ग जहीं। इनके परंपरा में प्रजापात्रा, 'राजा' की अवधारणा करने लाला। किन्तु राजपात्रा का उपान रहे। वर्मना, जगमगाना, वरज्जता है, जो चुपाम उनके योग, रोमग एवं अवाच्च, आदमचान,

अपन यह उन व जनसम के अशीन व। पर अपनी वीर्य भोता न राजा अशोक व वैद्य व चंद्रगुण, विवरामित्य आद्यां पर हारे वाट मिर्ग है। उन आपल का

पठितमो मानव र उनके 'हीरो' को नहीं चिरित्व के अनुभव है। चिरित्व नवार्थ विश्वास व यह वार्त बैठ पाचीन, केल वाचीन रंग नाल्य लेभा और ने, अपनी राजावादी व अधिनिधि नाहर होती है वरन शिथिन। भमाज भी

जा, अपि वादि उपा ते के
वाम होनी चाहह ता। नुगार
कम्पलर (विवेकलंग) तही
थायी दो दो दो की जानी।

(भगवन्नेत्रित्विभूतयर्थी दोते
है। कर्मचा ए। 'प्राण यह
नहिं है।' विवेक, विजित जार
होते हैं। उपासा के कुन
देवाखो को कमज़ो बदली
ता है, बास्तु रुप शंख लेते हैं
डिविन जान्दे चरित्रका
प्राप्तिका के धौन्दुर से युक्त
हूँ, आम विजित विदि से
हिं। उसे, वर्ष साता काम
न के देवन होनी चाहिए।
हिं। गान्धक के वारे और विदु
जना तही दी जानी चाहिए।

' का अंगुष्ठा ता इन्द्रियों
उड़े ते निविदा नोम का
होगा एवं देव आज तक
ये नहीं छुट्ट धनानंद नीदार
मन दम, दृष्ट नाड़ के देवण
ता नाड़ काहर, जो प्रशुषि-
धन हो, एठना प्रश्नान हो।
' को शहीन। विवेक
में है, तो फिर वहान और
मुद्र, गंदर्द, तात, अधिन,
पुणि नाड़ के दो दो दो

उनका कनामिक श्रोत विवेदर गुलाम प्रजा के द्वारा कृष्ण द्वारा जीवना थी और
तानाशाही की तृष्णभूमि में उद्गुमार उपजा द्वारा 'द्वाम' था। उसी तरह उनका
रोमन विवेदर, यहां तक कि उनका दूसीजीवोंथत विवेदर भी उनको उनी अधिक
नाथकवादी तानाशाही गत्यना का प्रेरणा और प्रभाव में विकसित हुआ था।
वहीं तिरकुण तानाशाही बारणाहों का जीवन, वामहक्तों पे परने वाली बट्टाल,
राजसत्ता इविदर के लिए 'वात-प्रविष्ट' (लिट.), राजमहनों के वहीं चरित्रण,
यहीं गवर्नर आपार या उनके कलापिक विवेदर और द्वामा का। उससे प्रजा, जन,
लोग फहार हैं तो केवल तुनाश, गोकर और वास के ही स्पष्ट ने, उत्तान वहीं
हैमिया० में रही। इनका चुनियादी कारण यह है कि उनमें राज व्यापक्य तथा
प्रभाव एवं विजाप्तीलत, उत्तम्याप्त, प्रजा युवा (विष्वाप्तिर रूप) और भासीय
'राजा' की अवधारणा में उभेज-आगामान न। पाले हैं। 'विवेक' का अर्थ है राज्य
करन याला। जिन्होंना राजा का अर्थ है 'जो मुद्र हो, जो आपो प्रजा के गुरु-
कर्त्त्वाना या धारान रहे। राजा राज से कवाहूँ। नगर राजांति० त. राजांति० यालवा,
चणको०, जगनगाना, मुद्र होना। राजा का केवल प्रवाह है। विवेक का केवल उनकी
राज्यसत्ता है, जो गुलामों, दक्षों की अपनी हुक्मह के अधीन रखे होते हैं। उभी
उनके द्वाक, देवत प्रियत्रीयत विवेदर और द्वामा की चुनियाद म रक्षापाल,
व्याप्ति०, आत्मघात, राजधान और विश्वामित्रान भरा पड़ा है।

अपने यहां जब कल्याण, प्रजा पालन, राजा का सुख करोध्य था। राजा
जगमन के अनीन्य था। राजा रामलंद ने जगमन के प्रविनिधि एवं धोबों की जन
पर अपनी गुणों वीजों की व्यवास दिया। विवेक यूद्ध में भए। के दुष्ट से प्रभावित हो
राजा अशोक न वीज धर्म प्रहण किया। राजा जगमन, राजा युविष्टिर, से लेकर
पद्मगुण, विकामादित्य, उनों प्रभारा के राजगुरु थे। राजा एं हो चरित्रण के कमीठी
आदर्शों तर हमारे नाड़ के नायक की अवधारणा है, जिसमें चरित्र के कमीठी
धैर्य है। जन नायक को सभाना के कारण ही उमे 'नेता' की मज्जा मिलती है।

परिषद्मानाम स्वभावतः हमारे 'नायक' को उही समझ गकान। जिसे हम
उनके 'हीरो' को उही समझ सकते।

विवेक के अनुमार इस दक्षार विरोध की गुरी हानि केवल भारतवर्ष की है
है। विशेषकर नायकविषया आधुनिक भारत की। जिसके बानस में पाठ्यक्रमी श्रेणी-
विविधाम हे वह बाहे देशों की बुनी बोगिया की है कि अपनी नाट्य प्रसरण की वाही
धो दोल, कनल आचोंन काल भी है। इसी के परिणामव्यवहर भारत के आधुनिक
इष्ट नाट्य लेखन और नाटककार की अपनी समाज ने, दर्शक ने, अपनी नरेशन
ने, अपनी रणस्थियों ने। विवेक के दक्षाहरण के रूप में इसी तो सकता है। इसीलिए
आधुनिक नायकविषयों के नाड़ के केवल गाथारण लीलों का चारक में उही धैर्य,
विवेक जिसिही भासान भी आधुनिक अपनी पाठ्यवात्य नाटकविषयों के नाकलचां नाटक-

कार्यों की कृतियों की नहीं गमन पाते। ऐसा समाज है, कि आधुनिक नाटककार अपने देश, नमाज, नृत्य से अलग-अलग रहने वाले। भीरपुरुष प्रदा हुआ अजीबो-गरीब लक्षण है। वह उचित गाएँ के लिए नहीं या नियमित वर्णन में वासी इच्छा के नामाज कलाकारों, नाटककारों की नकल करता है। वह अपने समाज, अपनी परंपरा, अपने दर्शक की चीज़ों की भवित्व की नकल करता है। आधुनिक भारतीय नाटककार इन प्रत्येकों के मध्ये रखने की विशेषता है—हों भासता है। ये नाटककार अपने दर्शकों तामाज की शृंखला भी बनाते हैं। अपने दर्शकों के दृश्यों के पूर्वों के विश्वास की दरवाह नहीं करते। स्वभाव के दरवाह वर्षा तादादिता भी राहतनाम के धरोंभूत हैं।

दरबस्त, हमारी आधुनिकता का शुभारम्भ हो उम दृश्यमाला निकु रोटोडा है जब हमने प्रिहातिक कारणों से परिवर्तन के द्यार्थदादी विवेतर को स्वीकार कर लिया। मारनीय रघु परंपरा, दर्शक संस्कार, नृत्य प्रवृत्ति, इन गतिकों उंधार कर हमने जब यह मान लिया कि नाट्य मायने द्याये भी नकल अपनी परिवर्तन की नकल, गायत्री क हवाएँ आधुनिक नाट्य का दृश्यमाला नरण शुरू होता है। हमने पांचवर्ष के दृश्यों को अनुभाव ही अपना लिया। उस मुख मानकर बैठ गय और जब चलगा चाहा, तो उसके पीछे से—

भारतीय नाटककार यह अच्छी ज़िक्र में जाना या कि अप्य वह दृष्टिय है जो इकलौतों हमें हुए भी बहुत चर्चा है : यह दृष्टि यद्य दृष्टिय है जो अप्य उपर्युक्त दृश्यों को प्रकाशित करती है। आँख ही हमारे स्वूल शरीर का सूक्ष्म गतिरूप है। उस दृष्टि अनिताना जैसे ही स्पष्टीण ये प्रवेश करता है, तमाम भूमि, वासी, जिज्ञासु, नालादिन आदी भी दृष्टियों के आसी-नामने होता है। ये आँखें एक साथ क्या थीन कितने दृश्यों चाहती हैं, इसे भी नाटककार जानते थे। इसोलिए उनके संवादों में गहरा, काढ़-द्वारा न लीज, संस्कृत द्वे गाथा उपरी काशी-दशाओं में जूँच भीर वायें-व्यायाम की अविनव भैरव से भासागुम्भित है। इसी से लगता है कि हमारा नाटककार, नाटक की भासान थी, दृश्यकी उच्चो नक्काशी थी। ईस उमके विषयेन आधुनिक नाटककार दृश्यों की आद्यों में नहीं वरन् वर्तिका उपरी कार्यों तक कुछ पहुँचाना नहीं है।

इस गत्य के गंभीरता में 'समग्रता' और 'विसंगति' की आवश्यकता है।

समस्त कलाओं में नाटक की कमा पुनर्प्रस्तुतियाँ का (रिप्रेसेंसेन्स) है। उमका मननक बना है ? अफील नहीं जोवा है। इस चल रहा है, जीवन की कोई जड़ता

पड़ी है, जूँस उर्जा अभियोगना की हात है। पहला, जीवन प्रभुता का है। वर्ती जीवन है।

कठिना की शब्द जीवन के हार के घास अनिष्ट नाम अपने उदास राम हो जह पुनर्जनना अपहृत है। नाटक रचना द्वारा जीवन के गति के अन्दर अनिष्ट नाम अपने उदास राम की शब्द जीवन के घास अनिष्ट की शब्द जीवन के अन्दर अपहृत है।

काव्य अपेक्षित है : वह यह, जिस दृश्य अर्द्धनामार्द अवधार की है; द्वारा किस दृश्य की कृता की वह नाटक की परिवर्तना

माना जाए गृहक के जबरन

धुतिक नाटकार
हो जाए अपनी यो
नि में नाटक के दृश्य
में बना हो अपनी
लोगों का लोगों
का होना हो। अपनी
लोगों का होना हो।
अपनी लोगों के
होना हो और नाटक

विशु ते हाना है
को नाटकार नहर
बचनी शेषा कर
कि गांधीय की
दहोना है। हमने
र बढ़ाया और

बह देखा है जो
गी अन्य गवान
दृश्य गर्वन है।
जिसी जितागु
एवं साथ वह
इसीलिए उठके
विद्युतों में नृप
ता है किहाना
उनके विद्युतों
कामी नह तुल
ता है।

है। अक्षा
की नींदे चलना

पड़ी है, हम उसी जीवन दृश्य की हथन मार के नाटक बनाकर प्रेषक के लिए
अभिनेताओं द्वारा प्रत्युत्तर दर्शन है। इसका क्षर्ष क्या है?

यही जीवन दृश्य का हम द्वीपीय वर आपों कला द्वारा प्रत्युत्तर करना चाहते
हैं। पहला, जोकर दृश्य का नाटक बनाना, इसी उम्मीद के अभिनेताओं द्वारा
प्रत्युत्तर करना। प्रकट है कि नाटक के कला परंपरा कला है। यह 'बनाने' और
'रखने' अर्थात् रूपक का कला है। वहें जीवन में जीवन के नाटक का नाटक बनाना,
इसके द्वारा नाटक की अभिनेताओं द्वारा दर्शकों के मापदण्डस्तुता करना।

किंतु वो इनके बनाने बनाने का अनियन्त्रित धारात्मिक या अनियन्त्रित है। काविना के
शब्द कीवे में हृष्ट दृश्य में निरुलकार मौखिय भीतर एवं पहुंचते हैं। नाटक-
कार के शब्द उसके गहरा, गहरा के गहरा दर्शक हैं। पाप जो दर्शायें विषयालीका प्रशिक्षण
नहर चढ़ते हैं। इन वाचों के शब्दों की भी दर्शक भीये नहीं गुणों, वाचक
अभिनेताओं के माझदम ने दृश्यते हैं। इसीलिए यह दर्शक है कि काव्य और नाटक के
समान प्राप्तियों में नाटक और नाटकार नों कला रूपरूपित परीक्षा कला है।
गाथ ही वह पुण्ड्रमुखी परामर्श कला है। नभी नाटक विषयन बनता है, किंतु नाटक
रचना बहुत कठिन है। नाटक बनाना आगान है; नाटक रचना बुरिकल है।

नाटक रचना में नाटककार के अहंकार वा पूर्ण विलगेन जैमें एवं शर्न ही है।
इसी शर्न के साथ वे यह शर्न सतत ही जूटी हुई है कि नाटककार वही ही रक्तना
है, जिस पहरे व्यवंहारित और जगत को देखता थे। जोलन जहा है, उसी
शब्दात्मक के माथे अभिनेता नाटकार समझ ही जायें, वही नाटककार है। यहाँ इस
साथ रचना की दृष्टि से एक वहाँ है। किंतु हृष्ट है... 'दृष्टि' और साथ ही। उस
दृष्टियों का साधी भी ही जाना। अधीन जीवन और कला के दर्शकों परह रखन और
गुणम दृश्य एवं नाटक के परम्परा है। गुणम यह भाव है। रखन उसका वात्र
पर है।

काल्य और अन्य लक्ष प्रकाशों की उत्तमा ने नाटक की एक और विशेष गिरिजा
है। यह यह, कि नाटक के शब्द विभिन्न वाचों द्वारा दर्शक तक पहुंचते हैं। नाटक के
दृश्य अभिनेताओं, रथवालियों द्वारा दर्शक को आखों में पहुंचते हैं, विभिन्न के लिए यह
आवाजक होता है कि वे शब्द, वे दृश्य, किस रोग न, किस वृद्धि गे किस अभिनेताओं
द्वारा विन दर्शकों तक पहुंच गहरे हैं, यह व्यापक गोदान वाचों नाटक और नाटकार
की छल की बहुत ही तंत्रिका और तपामय बना देता है। किंतु यह भी मत्य है कि
नाटक की दर्शकता ही उसकी शब्दों वहीं दर्शक ही है।

रंगशाला और उग रंगशाला गे देखे हुए दर्शकों की विषयी में ही नाटक के दृश्य,
नाटक के शब्द वही रचना और उभयों अन्युरुपितरा का हाथ। इसमें छेपा हुआ है।

सिंहासन
का चारा
अगत पर्वत
चंद्रगति
नाटक कला
भागमात्री
ही कलानि
नाटक कला
पदार्थ का
कवि के
मेवा
नाटक के
वाला, जो
राबरी अनु
संबंध संनिधि
व्यापार में
दृष्टि

अर्थी नाम
पर्वती,

अर्थी नाम
संनिधि,

जो इस विषय की जानता है, वही नाटक उच्च स्कूल है। लोग आज भी नाटक 'देखने' जाने हैं और भगवीत 'गुनन' लिए हैं। इसने सिद्ध करा होना है? यही किरणीक समझने की जानी है। हमारा नाटकका विचारनी ही जान भवा है। दर्शक सपाल आजने वही भूमि, भास्मी, विज्ञानी, साजायित आदि के जाहे के साथ रंगशाला में नाटक देखने उसे देख लिये हैं, जिस तरफ पहल उनके दुखों जाते थे। परं विद्यानि आज ऐसी विकट ही सभी हैं कि उन्हें 'देखने' का विशेष दुख लड़ी भिलता।

मनुष्य क्या यथा देखता नहीं है? जो यह जीव जीवन में स्वयं देख रखा है। जो है उसे क्या देखता। बहु रूपक देखता जान देता। 'देखना' वह देखता है जो हम सायाचर्य तथा जीव देख पाते। 'देखना' यह होना है जो हमारी कल्पना में है, हमारे अनियंत्र है परं जिने हम चर्चा कृत्य लिये पाते हैं, वह चर्चा करा। 'देखना' नाटक में गृहम स्वयं का होना है, जिसे देखतर हम अपना यथार्थ बना लेते हैं। यही तो है व्यक्ति में दर्शक का रचना। मनुष्य अपनी रचना को ही देखता नहीं है।

नाटक कथा, संरचित और दृश्य इस तीन घटकों में प्रकाशित रहता है। किन्तु तीनके लियोगे आनुनिक नाटक में ही सर्वोंग प्राप्ति है। आज के नाटक में या तो उन घटक ही जात्य हैं, या केवल दृश्य ही दृश्य है। वही कारण है कि जब हम कालिकान का 'अभिज्ञानाचार्य' (लक्ष्मी) देखते हैं तो हमें उनका शूरा चुक्का मिलता है। जब हमें रंगालूकि यह देखते हैं तब हमें उनका शूरा सुख मिलता है। परं आनुनिक नाटक वो जब हम यह देखते हैं तो हमें पहले का भी दूरा दूरा दूरी मिलता। वे अधूरे लगते हैं। जब हम इन्हें देखते हैं तब भी वे अचूरे दिखते हैं। यह जो अर्थात् अदूरा, अदूरा पहल का बोध होते जानुनिक नाटकों में होता है, इसकी पीछे गहरायी रहती है कि इन नाटकों में नाटकों के भूमिकाओं जान हैं जो रक्षी। इनमें रंग, दृश्य, अर्थात् रूपरचय का अस्ति अपना ही किंवद्दनीय सामग्रिय आंदोलन हो रहा जाता है। हमारी अनुकूल आंदोलन में हमारे कानों में अहों हैं जिनकी ही विद्या है कि आज के दृश्य, रंग और संरचित, इन अनियंत्र घटकों का योग करने हैं।

नाटक का रंग ने जाहे का छोड़ देखने का चारा गच्छ रमाकार का है, जो पूरे रंग है। अनुकूलियों वे बदल देता है। इस संदर्भ में नाटकका रंग अनुकूलियों वे गच्छ होता। अनियंत्र है अर्थात् अनन्ती मूल अनुकूलियों में जुड़ा होता अनियंत्र है।

यह विविध गणों है कि आनुनिक विषेषण, हर देश, हर भाषा का 'आनुसंदेश' की भोड़ ने यह दुखा है। नाटक को कला भारत गठनात्मक व्यवस्था के लक्ष्य पर बढ़ा कर दिया गया है। इसके उद्दरहण में विषेषण के बदही, जाहाज, विज्ञानी, संकाय मैन, दर्शी, रंगालूक, दृश्य सज्जाकर और अभिनेता ही नहीं हैं, बरंतक इस पूरी कीज वो जो गियहानालाल है, निरेशन, जो नाटक की पृष्ठी वर्तुलि के साथ नाटक की यह दृश्य भास्मा भी देंगे जो अनन्तवर्द्ध है, यह जब तक बोनन कीज कर-

है। नीच आज भी नाटक
या होने के यही किसीक
वा है। वर्ता समाज अपने
के गाथ रंगभाला में नाटक
जाते हैं। पर शिक्षि आज
नहीं मिलता।

मेरे सबसे देख रहा है। ऐसी
है हीना हो जौ ब्रह्म मात्रान्य-
कलाता में है, हमारे द्वार
। 'शुद्धता' गूल में सूखम
तोड़ते हैं। यही तो है अपिक
आहा है।

एक उद्दृढ़ योग है, जिस
में जीन के नाटक में या
यही काम है कि जब हम
का पूरा गुण मिलता है।
गुण युक्त चित्त है। पर
भी पूरा युक्त नहीं मिलता।
पूरा दियते हैं। यह जो अपि-
का है, हमके पीछे रहता रहता है। इनमें संभा,
इनमें भूतूल ही रह जाती है।
नाटक ने दृश्य रोप और

ए नमें कलाकार करते हैं,
में में नाटकार का कला-
रंगदृष्टि में दृश्य रोता

ग. कर आया का 'त्रिपटभेद'
कर अवश्य के स्तर पर
जड़ई लोहार, बित्तीवैत,
मेना ही नहीं है, बर्तक इन
को दृश्य प्रस्तुति वे साथ
है जब एक केन्द्र कौज का

भिन्नता लात है, जबन आपसे रवनाकार नहीं अथ तक उसके लिए अपनी संग्रहीय
का चोया हुआ करा आधार पूरा प्राप्त होता संभव नहीं है। अब तक निर्देशक
अपने अभिनेताओं, विभिन्न 'अपार्टमेंट' के अधिक ही नाटक को चाहता। करना
जाहेगा लेक यह एक निर्देशक नहीं बन सकता। निर्देशक का 'धर्म' है कि वह
नाटक के कामे धाराएं, घटक, रंगा रेखाओं और उपाय लिये लग, ताज, बृद्धियों,
भवित्वाओं की एकड़क। उन्हें करन अर्थ में स्थापित कर द। किंतु अगर नाटक
ही नालिवहित है, अगर नाटकार स्वयं कलाकार नहीं, करने का 'धर्म' है, तो
नाटक करना क्यों अभिनेता ही समझ नहीं है।

नाटकार + बनकार, अथवा नालाकार कर, क्या होता है? के बीच से पूल
ददार्थे में नाटक किसे नालाकार करना है? के बीच है:

बनक छिपा-चिपा नहीं, कहा,

बनक दृश्य नहीं, सूपबन्द,

बनक नाचा, अपार्टमेंट, चारी।

नाटक जोशी नो नहीं बनता। लोग ही नाटक को बनाते हैं। इसलिए नाटक
रचना के लिए जो उपयोग है जैसों, जीवन, स्वनय, उल्लासमय, कर्मठा, उत्तमाही
रचना के लिए जो उपयोग है जैसों, जीवन के गोंते वाले लोग। जो इन के बारे में
लोग, जीवन की प्यार करने वाले, अधिक के गोंते वाले लोग। जो इन के बारे में
नवमें अवश्य-अवश्य हाकर रोचन द्वारा चिना। करने वाले जोगों में नाटक का कोई
संबंध नहीं तहीं। यहाँ 'जितन' संग्रह है, वहाँ ही उठता। नाटक है। बीज में
अगर प्राण नहीं है, वीज में अगर पूरा जीवन नहीं है, तो अकेल बुधा भवा होगा इसमें
से। नाटक करने मात्र नाटक है।

उर्ध्वानिरुद्ध अपनी कला, दृष्टि, कला के प्रति निष्ठा, भूलनः आपने समाज के माय
हीनी है। विजेत्वार्थ नाटक की जला, कर्मोंके वह आने समाज, आपने महुदग के
जिग है, अनः उत्त सदृश वी अपेक्षा की अपेक्षा भास्तु रापकर ब्रह्मूप हीनी है।
नाटकार में जो गुणगणकी, जो नवोत्तमा है, वह उम समाज की है जिसका वह
नाहृदय गवाय है। उन्हींलग हमारे महुं कला का नाचकरण बनता। पर तरीं, समय,
काल और युगपर है।

अगर नाटक की जो दृष्टि, जो सनां भेरे चिना है वह ही वह गमाज में
पर्वीदा, अवृत्त में आनन्द, बुद्धि में विश्वान लौक दृष्टि न लौदर्य।

अगर नाटकों में महाज्ञा पर जीवों डाना बन है। इनमा बन कि हमारे यहाँ नाटक
नहीं, नाटक करने की नाटक 'प्रेक्षन' कहा गया है। ज्ञान जो हो समझता, अर्थ प्रब्ल-

नहीं।
त
हो रहे
पाय की
नियान्त्र
राटक

प्राप्ति
के प्रभु
दो विद
वानों स
ब्रैडक
वाला हु
मनुष्य

ह
जगत
पहुँच
बोन, प
गारी॥
सबूत

ब्रह्मान
किंशु-
व्याप
वाली
पश्चिम
वह प
मनुष्य
खदला
पान्निक
के ही ॥

यता है। जो श्रेष्ठियों में मुस्त है, वही शंखन है। प्रथम नाटक में भूमध नहीं है, तब तक प्रियत में गवि है। एवन ऐसी संकल है, जब निर्विध वादों में निर्विधा हुई तुद्धि उन सब विवादों से और उटकार निर्विल भाव ने एक अन्वय में (अवश्या) निया हो जाय। नाटक शब्द में ही वही नाटक है। इस नाटक अलान नहीं है नहीं नाटक है।

आनुभिक नाटक में अद्वितीय गणयन है। वह बुद्धि ने अद्वितीय है। बाद-विवाद ही इसका अध्यात्म है। जैसे यह बुद्धिवादी, ज्ञानी-वादी-प्रकाशक का लेखन है। यह नाटक के पात्रों के द्वारा तहाँ, तथा विषय अनेकों नाटकोंका द्वारा लैभार किया हुआ है। मेरे लिये हुए गान्धी हैं, जो हुमें नाटक नहीं। नाटकार इस नाटक अपनी धैरी, धारों निया, धारों विवादों हैं। पात्रों में बंधा हुआ है कि इनमें रचना नहीं हो पाता।

रचना के लिए रचनेप्रता, आत्मविश्वास, उदाहरण, निर्विधा। और रूपकल्प दोष की अस्थिरता है, वह सब जैसे आनुभिक नाटककार ने गायब है। नाटकार नव तक अपने नाटक के प्रत्येक गान्धी को अपने रूपकार अपना स्वातंत्र्य विद्युतित्व नहीं दे पाता। वह नाटक कहा में रखता है।

नाटक-नाट्य। यह के संरक्षण में, अन्यथा की अनुरूपि वो सच्चाई के रूपकला अविनाश्य है। आनुभिकी भाषा-मुहावरा में 'अन्यथा' को 'अनुरूपि' के वर्ते की चर्चा हम रूपकल्प और विवादत्व अध्याय में कर चुके हैं।

नाट्य रचना के 'नियन्त्रणमें' अन्यथा को अनुरूपि क्या है?

हाँ वरन् नियन्त्रणमें ही दृग्मा छूट करे। हम गवहा अनन्त-अनन्त अंगिन हैं। यह विवादी ये 'कठीं दाये' पर्याप्त रहा॥ है। कर्म-कारण इसके भीतर भी है, हमारे वाहन भी। उसी का विनाशक अवगत भागों और के समाज, कर्मवेश में गये हैं। अनन्त भृदेशी, जोमे वामेजाग्नि, किण-प्राचिकिया वा इन विचार गोप्तिकार यंत्र (नियाम) अवधि गति में बल रहा है। उसी वरह नाटकार रूपवय को, और नाटक अनुरूपि वादी को भर रहा है। उद्द लवतों अपनी निया-प्रतिनियाओं का संभार है। अब यहीं माधुरा या चुनीं हैं नाटकार को। वह उन भारी कठीं वाहन-प्रदान अंगों, अग्न-प्राचि काये सही नियाओं का करने और यादी यादी पूर्ण गायत्रि गंगे बते?

हमारी अनुरूपि गायत्रा में एक कथा है। एक अन्यथा दृष्ट है। एक दृढ़ी कथा रहा है। दृग्मा पंछी उम कल श्वाते हुए पंछी को देख रहा है। नाटककार को जो दो दाये हैं, वही दों पंछी हैं। एक कमी, एक दृढ़ा। एक दृढ़े वाला हुआ है उगता गायत्री। तब उक किया का कर्ता। गायत्री न हो, तब गवि वह किया कर्ता हो? आनुभिकी नाटक नाये जगत का नाटक है, काये गगन का

व नहीं है, जब तक
निव हुई कुर्सी पर
सवस्था) मध्यन हो
गही नाटक है।

। बाद-प्रियाद
रार का निवन है।

तेलार गिला हुआ
वद्य अपनी गौली,
मैं रखना नहीं हो

ना लो इष्पन्द
है। नाटक का नव
नामनंद निरम-

नाई को समझा
हुआ' के अर्थ की

का अपना-अपना
रण हमारे भौतिक
के समाव, परिवर्तन
का एक विश्वाद
टक्कार गवयना,
नरनी चियापून-
गर का। वह इन
जो काकां और

म पर दाढ़ी बेंड
को देख रहा है।
इस। एक वरन
है। तभ ऐसे यह
नाई जूला का

नहीं।

नाटकनाटक की उनका का पर्म और नकार यही है कि वह अक्षन आपसे विसुला
हो अपने गाने के चालियों को 'कुनिया' का बतो हो, ऐसा स्थन वहों जो प्रच्छेक
पात्र की ओर वो उत्तम ही अनियव के भोजन में देखे, एवं और तबको दिखाये।
किया-व्यापार का रुक्त, यही पात्रहोम नाटक का 'पात्र' है। ज्ञान पात्र के दोनों से
नाटक की 'कथा' होती है। इसी 'कीर्ति' का 'पत्र' नामक है।

परिवर्त के विविध शोध भासा के वाल, परिवर्त के 'वाद और भारती' की यथा
के अर्थी और अनियवीयों में भी मूल अन्तर है, इससा आदारामान और परिवर्तक का
दो विभिन्न विभाग दृष्टियों का नाम है। इस कुनियादी अपने भव्यत्व के प्रति
दोनों नामकनियों की अवधारणा में हम लेख रखते हैं।

ओक नाटकार और शोध दाणियाका ने भव्यत्व की 'शिवल एवं पल' अर्थात्
बीमार प्राणी माना। आगे जनकर भव्यत में जब वानर और उत्ताप का बीज-
बाला हुआ तो मूलाय और वनस्पति वाला पात्र हो गया। 'शोधर्वपक वर्णित' के वाद
भव्यत की पश्चि के, स्थान एवं 'दीर्घजूवल' अर्थात् 'जामिन' की गंगा मिली।

हमारे सूचन में मनुष्य, दूसरे वाली ही लेख है। यही जही, वर्तिक यादी पर्यु
जगा, प्राणी जगत और प्रहृति गणेश ममूजा दृष्य जगा यही दृष्यवर का लेख है।
यही कारण है कि परिवर्त के 'दृष्यों' का मूलायाद स्थान है वही, ननुष्य-मनुष्य के
बीच, मनुष्य और समाज के बीच, मनुष्य और प्रहृति के बीच। इसके थोक विपरीत
भारतीय नाटक की आवाज 'रक्षा' है। यह स्थान सबसे दूरतम होता। परिवर्त
सबसे', यहत।

परिवर्त, अप्याद का यो अपनी तकनीक्यि में गमधारा चाहता है, जर्विक
अधिकाम अन्त छापन और संतो का विषय है। उसी नाटक हमारे परंपरा भव्यतार
किया-व्यापार अधीन काम दृष्टि कीदृष्टि है। परिवर्त की दृष्टि अनुसार, किया-
व्यापार अधिकाम के नियन्त्रित है। ग्रन्ति म यमुना, गंगाधो के संग्रह अनुष्वेद म आने
काली समलत अवस्थाओं के सुधारक अनुशूलन पथ पर यह दिया जाता रहा है।
परिवर्त में इनके अन्येषण पथ पर बल रहा है। भारत के नाटक अहा हृदयपाल हैं
वहाँ 'दीर्घजूवल' के द्वाष 'कुनियादी' हैं।

भारतीय नाटक आपि किया-व्यापार में इन 'वायवान' से बोरा है कि
'मनुष्य' के दृष्य कीमे तुर ही, और उन शोर्तारक नियन्त्रित और अवरणाओं को कैसे
बदला शाय, जिनके कारण मनुष्य इनमा दृष्टि है। इस किया-व्यापारों के गीतों और
परिवर्त की नियन्त्रित वासन गाथा उन्हें बदलन योग्यता नहीं है। भारती
के ही नहीं विविक प्राणियों के इन नियन्त्रित का आरम्भ इन शेरोंमा होता है कि दुष्क-

निरूपित ही प्रधान पुरुष हैं। अपने विनारक पह भी पापत हैं कि 'व्यक्ति' के सुध-
दुख के कारण नवर्मनमें 'चारित्र' वही विद्यमान है।

भाजीय नाटक के 'चारित्र' को 'पात्र' कहने के पौरलेख वह कारण भी रहा है।
इभालए नाटक में पानवीद अवस्थाओं व आत्मानुभूति के स्तर गत साधात्मकाद पर
इनना अधिक बल दिया गया है। मनुष्य को उसकी आनंदारक और बाह्य इक्षुवी की
संपूर्णता व देखने की अवधा इसकी फिल्मा एवाइ की वशी है कि मनुष्य-भूमि का
परिकार कंस ही इसके विपरीत। इसमें विष्णु-बाह्यार अधिक नहिं, तांगलट
यहा तक कि रहस्यमय आश्रिती में डिंग द्वारा रखते हैं। वे रहस्यमय इमनिए जाते
हैं कि हम उनके चोदिक, आंगलटपक, नैनिक एवं इत्यत्व के टीक टीक नहीं नमका
पात्र। पानव अवद्वार की जटिलता वस्तुतः मनुष्यों के विशिष्ट रूपवत्ती, मनोभावी,
विवरणी तथा आवर्गी की अहिलता है। जटिलता का नवतेर वहा अधिकान मनुष्य
को विविध रूप चंतना है। अबतः हम भानव अवद्वार की जटिलता को भीतर से
ही ममस लकड़ी है, 'मर्क बाहर ते नहीं।'

अब हृषि आगे दो और विदुषों पर दिवार करेंगे। पहला विदु है नाट्यनि नि
यो लक्षक, अपना द्वितीय, 'जिसे 'कृष्ण' नहीं 'अंग' स्तर और कम न यहाँ पर्याप्त है।
ये दोनों विदु ऊपर से देखने में अवृत्त होते हैं और मैकड़ी नवी से इस दून विद्यों
का इस्तेमाल बिना इनका अपेक्षा और बिना इनकी गहराई में गये करत जा रहे
हैं।

भारत का नाटक 'हृषि' का एक प्रमुख भूमि है : हृषि किंगे कहते हैं ? हृषि
का मूल है 'रूप'। 'रूप' का अर्थ आकार। नहीं ही जिसे अवैजी में हम 'काम' कहते
हैं। रूप मानने लंगूर। हृषि दूर्घट अनुमार यह रूपाकार निचार जवत, विशेष
अवाक्य लारीं बाना है। हरा मारे रूपों ने वही एक अदृश्य, अद्यो ईश्वर सूक्ष्म हृषि
में विद्यमान है। पा हम यों कह गक्के हैं पि पह लालार दृष्य सृष्टि 'उर्मी' अदृश्य
अहर को हो अविवितन है। 'रूप' के इसी गहरे प्रसांग से हृषि नाटक में पात्र की
अवधारणा की गयी है। मतलब मनुष्य हृषि में हम सब पात्र हैं। पात्र, जो उहने
खाली नहीं है। पात्र में 'बोज' पहले से हो मंजोता हुआ है। जो पात्र 'रेत हैं
भरने के लिए। अपनी पात्री अनुकार गात्र में हो कर्म जनि-गंगा होता है, दूसरों गे
संबंधित होता है, और पात्र के कर्म और गंभीरों गे भाव बरता है, जिससे पात्र जो
कभी और संबंधीं से अब तक निकल ना, हीरे-धीरे भरता है। शारीर जर्म गे पात्र,
खाली पात्र को नहीं कहते। जो जानी है, वह बर्तन है। पात्र नहीं है जिसमें स्वर्यो-
भाव पहले से ही विद्यमान है। पात्र का भाव जब तक रग नहीं बिभाग, तब तक रग
कहा हो जरूर होगा ? जो पात्र को पात्रता और उसका नाटक, नाट्यकानि होगा।

पांशुबद्धी दृष्टि अनुसार वहाँ पात्र नहीं है, वही चारित्र हैं, यानी 'कैरेक्टर'। चारित्र

के गीत, जो
में एक तो उ
तक। इतार
गाट) में है
'दोस्तों व
में दो शब्द
हैं निकल
परंपरा एवं
में दून रख
जाते हैं।
इन द्वि-
आत्मविन
गाइ) के
ईस्टरीय
प्रति अप
कैरेक्टर
'कैरेन्ट'
आँव, जो
है। और
विरोध
'दूर' के
विरोधी
विरोधी
का नाम
भतायर
देशबद्ध
उत्तरों।
में इस
उपर्युक्त
है।

है कि 'ज्यामिति' के गुण-

नहीं कारण भी नहीं है।

पर पर साधारणता पर

और बासा प्रकृति की

है कि मनुष्य-पर्यों का

धृष्टि जिति, मिथिला-

दूस्यमण इसलिए लगते

हींक ढंक नहीं गया

न हमेशा, मनोभवों,

बदा अधिकार मनुष्य

विलना की भीनर में

ज्ञान दिये हैं ताहतनि

कम न शिखन करते हैं।

खो से हुए उन लड़ों

ईमें गये रहते जा रहे

किंतु रहते हैं ? हाक

नी में हम जार्म नहीं

बराह जगत, चिमिन

आहा दृश्य मुख्य है

प्रसृष्टि उमा अनुष्ठ

पार नाट्य में पात्र की

है। पात्र जो पहले

। ऐप पात्र दिका है

मैं होता है, दूसरी ने

ता है, जिसमें पात्र जो

शारीर वर्ण में पात्र,

जह है जिसमें ग्यारों-

मी लेगा, गवाक चन

वा रस देखा

हुई होगा। चरित्र

नी 'कैलेटर'। चरित्र

के पांच जो अर्थ है वह प्रतिक्रिया जीवन दृष्टि का रहता है। प्रतिक्रिया के भावों में एक जो बहाँ के दार्शनिकों के निवार है वैय आकर्षन, अखलू गे जाँचन आवि तक। इसाई संतों के अनुभाव मनुष्य की जनना ईश्वर की ग्रान्तहृति (इमल आफ गाह) म हुई है। 'इसे न छोड़ न टूट रख दृष्टि ग रहता है इसी 'इम' गे 'इमज़', 'हो' (जनना), 'इमरेजन' आवि अख और अख जिक्रते हैं। ब्राह्मान योक 'प्रोटिक' गे दूसरे गे ग्रान्त आवि चरित्र वो नक्का करता है, और इस तकन परपरा रहते हैं। इसी तरंगना (किसी चरित्र वो नक्का करता है, और इस तकन में इन बदल भावाहिरेक जो गोमा एवं पहुंच जाता है कि लाग उसके अधिकृत हो जाते हैं। इसी पांच दृष्टि वही है कि भवतु ईश्वर की प्रतिक्रिया (मैन दूर दि प्रोटिक आवि दि नेत्र दिविजन आफ गाह) है। इस प्रक्रिया दूसरे में आत्मविहार होने का रूप्य रही है जिस भवतु जब अपने बींगे (इमज़ जोक गाह) के प्रति जागरूक जा सकती होती है, जही आनंदमूर्ति है। मनुष्य की उत्पत्ति के ईश्वरीय है, पर उसे इसकी प्रतीक्षा नहीं होती। मन्त्र के प्राची अविवाह, अतीत के प्राची अप्रतोति, अनुष्ठ के प्रति अंधविष्णास, इसी ने मे निकला है, प्रतिक्रिया का बैटेक्टर, 'चरित्र'। परिचमी धर्म के हृताय से मनुष्य स्वर्ग वा अधूरे एस गे परिच

प्राप्ति जांच है। मनुष्य ईश्वरीय प्रतिक्रिया होने के बाबतूर मिश्री का बन। 'भेड़

'प्राप्ति' जांच है। मनुष्य ईश्वरीय प्रतिक्रिया होने के कारण उसमें जो

उन और आप्रतिक्रिया पैर हुआ है, उसमें उमकी पूरी बनावट में हर वस्तु का

प्रियोग उनके सामने पक्षहू जैसे गांड का 'प्रियोगी' मैन', लाडक का 'प्रियोगी'

'हैंद', कंठट का 'प्रियोगी' 'सूपरिय', भाँड का 'प्रियोगी' 'बाडी', 'म्पोरह' वा

'प्रियोगी' 'मैरै', सेलम का 'प्रियोगी' 'नातगंगल', झारस का 'प्रियोगी' एडम, घ-ड का

'प्रियोगी' 'पो-म', 'पिजरेस्का' का 'प्रियोगी' 'बमोफिगल' आदि। प्रतिक्रिया के द्वामा

का चारूर इस अप्रियोग कला, संघर्ष का 'प्रियोगी' ददाहरण है। उसको मानविक

बनावट जो कही यह चाहे जर्म हुई है कि बह एक प्रिया ज्यवित, डिविन्युल है, जो

ईश्वर के देश अथवा रवर्गे के लियकार गृहीं वी मिट्टी गे आ गया है। उस गवह

उसके बिन में 'मैन' और 'प्रियोग' के बीच एक सर्व गंधर्व है। इसका को भाषा

न इस तरह तंगर्थ को ही प्रतिक्रिया है कैपेक्टर। साथ ही ग्रान्तजानिक दूष से

उसके नारिय में 'प्रेगनेंस' और 'इररेजन-लू' के बीच में भी दूषन ददाहर मिली हुई

है। प्रतिक्रिया के चरित्र का साकल यहीं गापर है।

स्वर्ग से धरती पर फिर हुए है

तरे महाक

दूसराये जाते ही

सारे दौरकी वृद्ध समाप्त हो जाते हैं वर में

यहि अःथा है दुआ था केवल संघर्ष का
 तो आखिर विभक्ता
 परन हुआ था सबके ने खत्ती हार
 हां सब रन हैं संघर्ष है
 सब के सब
 हम सब का है संघर्ष स
 ईश्वर 'ओरो' का नरण लगाए बाजे नहीं हैं अगर
 हम राव रन हैं संघर्ष में
 राव के राव
 हम सब रन हैं संघर्ष म।

परिवर्तन में सत्यव्य के प्रति यह दृष्टि है कि उसका लिखित संदर्भ न बायाया है। उसके स्वयंकर यह आजवर्ती पर कर गया है कि वह कोई भी चिनाइ ही नहीं सकता है। [उसका लिखित संदर्भ वार ही नहीं है वह फिर दोचारा कर नहीं सकता।] दूसरी तरफ उसके प्रति गहरी कहा गया है कि लाइन में जी दैती नहीं है, अतएव उस लाइन के उसका संवर्ध नहीं है जो वह 'अदम' का राक्षस है, और पांडि दैती लाइन के उसका संवर्ध नहीं है यह 'पाना दा वह' कैलास ही है। 'अदम' और सत्यव्य के बीच अवास रखते और पूर्णी के बीच लगी उनके द्वारा विभिन्नों की कल्पना की गयी है। ऐसी लिखिता सत्यव्य से बाहर वार को यहाँ कहता है (मैं बेथ), के अने याजी घटनाओं के बारे ने तक्त करनी है और दूसरे, उसके प्रति के सत्यव्यों को जापाह करती और बालि देनी वी तजाह देनी है ताकि उसका बल्याद हो। किन्तु स्वभावतः व्यक्ति नहीं पान्दा, वह संघर्ष करने का। अजबूर है, फिलहाल लिखित एक और अपने ही विश्व अहार्दि करना है और दूसरी ओर अपने चारों ओर को व्यवस्थर, परियोग के लियाह लड़ाई लड़ना है। 'कैरेनटर' को इसी मनमार्द मार्गी दर्शन है। 'हावा' लिखित हुआ है। ओपल 'मैं नहीं' की यही अवधारणाएँ हैं।

'कैरेनटर' के विकास-स्तर में दो चरण हूंस मिलते हैं। लिखित का यह संघर्ष कि 'मैं नहीं हूं', इसी ओपल से लौक दैनिक और लोकसाधारण की दैनिकी का प्रतिक्रियन हुआ है। गेनापियर के बाद उसका अधिक और दैनालौजी का जी इशाव एंड इस्लम पर पश्चा, उसके उसका बुनियादी प्रश्न और संघर्ष 'मैं नहीं हूं' का। जाह भनुष्य क्यों है हो गया। जाहिर है कि पहला प्रश्न जहां अवधारणक तज्ज्ञ भिंगे हुए था, वहां दूसरा प्रश्न यमाजशास्त्रीय हो गया है। चरित्र के महां चरण में जहां करना। और काल्पनिक था, वहां दूसरे चरण में चरित्र के साथ मतोविज्ञान, अवधारण और यमाप शौधिक तत्त्व युड़ गये। चरित्र में लिखना कुछ विवेक थी। लिखित, दूसरे और मावना, भोजन और बाहर, पर्याम और 'प्रब्लड' के थी। यह संघर्ष छिड़ा, हाँ का राहज उपहारण परिचय का सारा आधुनिक द्वापर है।

इसके लिये
 पूर्ण है। जान
 का प्रणालीकरण
 चला है। उस
 गया है, कर्म
 ने दूरी, 'का
 कारण है नि-
 धि। मामांज
 लरह ताके अ
 अवधारण में है
 भी यह काम

आज
 उसमें न ब
 लवर्गण है
 (षष्ठी) है बह
 अवधारण में
 जयशंख प्र
 कृत्ता है।
 चारित्र, हां
 दूसरी ओर

अपनी
 दूसरी ओर
 माना जाया
 जो बां ने द
 दृष्टियां भी
 जाता है। भ
 धार्थ रखना

लोक द
 से प्रश्न।
 उठन आक
 दृष्टियां वहां
 नहीं चलती

हमारा
 है, जो न पा

इसके विपरीत पात्र के रोमधे से भाष्यकारी में वहा हुआ यह जानना महत्वपूर्ण है। संस्कृत ने लेकर इस देश के भृगुदग्ध नाम के नाटकी में पात्र अवधारणा का अधिकार किया है। पात्र की व्यापकता वस्तुतः अड्डोनम् और उर्ध्म दोनों की गाव लेकर जब्ती है। यह गुण एवं व्यवहार पात्र है। जिसे कभी भद्रादल नाम दिया। भद्रा है रुद्रादल कर्मिण्, कर्मी गिरि, गिरि ग्राम आदि। इसी विवरण पात्र में दृश्यता, चक्षुला, विशागदग्ध व्याख्या आदि पात्र जात है। संस्कृतः यहाँ कारण है कि हमारे यहा जप्तों में 'प्रियाणिककथा' और 'प्रियाणिकवाच हो चिरं जात थे। सामाजिक और धार्यवादी पात्र नहीं। पात्र वस्तुतः जनानन है। कथा की विवरण जोकि और चालक दोनों पात्रों में गत वर्वत गोकृद है। तो गत विस्तृत्या में है वाद्यूतान उसम जाप, रुप आवाज है और इसी तरह नाटकी पाठों पर भी यह का अंग है। हाता है।

उद्देश का आधुनिक नाटक युक्त अपनी संस्कृती गृहीतः विचलन है, उम्मीद उसमें न बढ़ी कोई चारित्र। पात्र के अस्थानपर अस्त्रिक फा अवतरण ही आधुनिक सारणीय नाटक है। चारित्र के पीछे लोक युग्म और वित्त (धर्म) है वह हृष्णे स्वभावातः प्रियमध्ये के गमन नहीं है; इमण्डि, हमारी चरित्र अवधारणा में पात्र और चरित्र का अनीवीभाव आभासमेल है। इदहरणे के लिए अध्ययन क्रमानुसार आते रातभी की नरसंसोमा पर गहुचक्रम् जब यह बढ़ता है। 'क' 'पुरुषे पात्रियों की समाधि' और 'पात्रों की स्थिति' दोनों एक साथ चाहिए, इतमें कहीं एक और विभीतवशीयम् के पुरुषरथा 'पात्र' का नज़र है, तो द्वारी लीर हम्मेश के 'प्रियकर्ता' का नज़र।

मारनीय नाटक आते चीज़ और विदु में एक और 'गर्भ' के भौतिकता जगत है, इससी और नाटक के पूर्ण अधिकार की जागीरीय नीवत की उत्तर वश में आत्मविनि पाना जाना है। इन दोनों इनियों में अंक अधिनि 'गर्भ' से गोद एक की जो पात्रा चीज़ वह से होनी है वही याजा। एक अंक से हुरारे अंक में अपूर्ण होनी है। अंक इमण्डि यी है कि भाव भरे पात्र को अंक में गमाले हुम तरहीतर रस की ओर ले जाता है, याज कहीं छलके नहीं, पात्र कहीं हुरू नहीं, इमण्डि नाटक के अंक में वाये रखती है।

एक इसके विपरीत एक-एक 'एक्ट' की शुरुआत से 'प्रवान' बनता है (एक्ट में प्रवान) 'प्रवान' ही चरित्र है। 'एक्ट' ही 'द्वंद्वों' है। 'द्वंद्वों इत इमि-ऐण्ट अप्रृक्त'। मनुष्य जब स्वर्ण में विचार, अपने द्वंद्वों नवत्र से अलग हुआ तो उन्होंने भद्रकाम् (आदि दोनों) की वृत्ति विदेश पैदा हुई जो अहृत वज्रनी 'धर्म की तरह चरित्र के 'से' के गाने में बंधा लगे जाते थे तरफ खीजता लगा जा रहा है।

हरारा आद्योगिक नाटक हस्ती पृथ्वे से बंधे हुए अनिन की एक ऐसी मात्रा है, जो न गत हो पात्रहा है न चरित्र। न वह पूरी तरह ये अन समझ सक्ता है, न

'प्रदूष' का यह हाथ है। इसलिए वर्तमान जाटक से जाहे वह पश्चिम का है या भारत का, इसने 'प्रदूषण' की गतिशीलता नहीं है और न ही अंक का इस।

गढ़वाल

1. नारदगीर, प्रबन्ध १९४५, ५०-५५
2. योगी, ५५-६५
3. 'प्रदूषण' के लिए भारत-प्रश्नोत्तरी—
प्रदूषण का विषय है। यह ताँड़ि वालीनाम। — योगी
4. योगी नाम के अन्य विषय (प्रदूषण आदि) के बहुत कोई हैं—जल जल,
दूध, जल की जलता जलता है—गंगा नीर और जीव है—जल जल, पांखना—
दूध दूध।
5. गंगानीयर के देशों का नाम में प्रदूषण इत्यराजने अनुदर्शकों में बहाव।
6. दत्त रामन, योगी अटाक, १५-१७२
7. बड़ा, १८३-१८४
8. यूरोपियन्स-ने नदी राष्ट्राभान विवरण
नमायारना। यूरोपियन यात्रावाच्चापि।—नीता २०३
9. अक्षरारा योगी अन्योन नीता।

आज हम जीव
हैं जेण्युपा
प वृन्दवन
('दूषण') के
किसी भी स्त्री
गण है। उद्य
में एक अनाद
पमारे लड़ी हैं
जलदें दें अद्य
अनीं कियन
रात्रि और
'प्रदूष' का या
कर्म और आ
वाहाविक का

स्त्रीग
हम जन्मे तो
मनुष्य को कु
राफिर रहते
थे। कर्म को तो
है। जलदें
प्रधान है।
'प्रदूष'

वाहू वह परिष्वेष का है या
न ही अपना रहा ॥

—गीत
इति गान् है—१८ अंग,
यह है—भास एवं प्राप्ति—

प्रियोगात्रा वा विद्या।

: 2.53

रंग रचना और करता

आज हम जीवन की रंग है। दोनों क्षयों में भक्तालय शेरीन प्रसुध तत्त्व देखते हैं चण्डूना, छड़ा और व्यवस्था। इसके आगे हर वरिष्ठाम के स्पष्ट में दो प्रवृत्तियाँ देखते हैं—उत्तेजना और गत्तेजा ('गति', 'रेपोर्ट')। यह शब्द 'करते' ('दृढ़ता') के अंत में लिखते हैं। आज हमारे जीवन का प्रथम ज्ञानार्थ वाहू वह विभीती भी नहर, दीवार, घरांशुज का क्यों न हो। ऐह 'करते' के अपका। रूप में जूँड़ पड़ा है। उत्तेजना के लिए दिलाह का कामे ये लौजिए। विद्या ह आती बुनियाद में एवं अनुकूल है, एवं गेहा मिलत पते हैं। जहाँ यूनत की अंतें अंभासनाएँ हैं वह पत्ताएं व्योंगी हुई हैं। विद्यु आजकल विद्या के दृश्य को देख लौजिए। विद्या ह तथा करने में गठन विद्यु गंभीर होने वाला हमारा दूर दूर तक कोई काम नहीं रह जाता। प्राप्ति 'करते' का यही दृश्य हमारे आपसी गतियों और गंभीरों में भी दौलत नहीं रहता है। कर्म और आचरण एवं न यही दृश्य कर्मकांड का स्वरूप आरण न होना है और वास्तविक उम्मी का तत्त्व योग्य ही जला है।

मनुष्य मात्र के भवस्तु कर्मों और आचरणों की हम आरंभ्यन ने देखे तो हम देख दो जानी में बांट नहीं हैं—'रचना' और 'करता'; कर्म के ये दोनों पाद गनुभ्य के द्वृतित्व पदा को ही उभारते हैं, इन दोनों पदों पे दो द्वृतिशायी भव मांकित रहने हैं। रचना में इत्यान् योग और मरक्य के तत्त्व प्रसुध हैं। तभी रचने के काम का कला का दर्शा पाया ही जाना है। अर्थात् जो रचना गया है वही कला है; 'करते' के गंभीर वृद्धिमया, चालकी, आवहा। रचना और मरक्य के तत्त्व प्रधान हैं।

'रचने और 'करने' में जो अंतर हमरे किया है वह दोनों को अलग हर में भवस्तु के लिए किया गया है और मनुष्य की वृत्तियों में जो अंतर

मनोवाच व
दस्ता वार्षि
विश्ववाच

जिग
दस्तक सज्ज
ही जगा है
लकड़ी या
मक्का बड़े
उपग्रही जा
धर्मी : जिग
नें पा वज्र
के शब्द न
रखता है उ
जित्ता शहर
जहाँ तक व
की माला
गतानन नन
कम साना
गः नवास
निश्चयानि
जहाँ : इन
इस परम म
नहीं न्याय
शोग से गा

अपन-अपा
जांडे दूर है
लायगाय
लोही, मुति
द्वयम् य म
गुनाराय मी
पद कर अधि
जीवन ।

जीवन ।
गो वर्ण ।

रिखाता है वह जो न वन समुद्रे के निपुण रिखा है । मनुष्य एक समूर्ण सत्त्व है । उसी 'सत्त्व' की निपुणता, उसी ने पकड़ना बहुत कठिन हो जाता है । 'रचना' का अंदरूनी समूर्ण भौमा बाहर से दूरी है उसे हनुमान उचनकर्ता भूमि पर अपनी आकृति कह राकर्ते हैं । ये 'रचना' की अविवादीयां हैं ।

चारों ओर गाना काने पर और सामग्री बक गाये हैं, दूसरी ओर चामूहिका, तीसरी ओर अब फिल्म बढ़ावा है उगमनमाय उक्कीनी दशाएँ वापसी भूमि भूमि भूमि भूमि हो गई वह अब यहाँ पहलज्युणे हो जाता है कि ऐसे लक्षण में न ला के स्वर न रचना लाय है ।

ब्राह्म दर्शनी रुक्मिणी के दौरे मनुष्यकी गतिशील है । हरदिय, युग और कला के इतिहास से पहले प्रकट हो रहे हैं उनके निकाम में संवधारणी में निकामी पहुँचायी भूमि भूमि भूमि भूमि है । अन्यैव काम ये न दाजा गंरक्षक है, न धर्मभूक संवधारणी है । यह गंरक्षक का कार्य कवल दी आकृतियों के हाथ में है । याजकांड और पुराणांशित । इन पारिवर्णनयों में वर्तमान बला प्राण 'करन' के पथ नो खोर जाना चाही चला जा रहा है । अधोत्तरी संघर्ष में लक्ष्मीरार ने लक्ष्मीरार की अद्वेष दिखाया है इन्हें वो वादनगार बलाकार न लक्ष्मीरार भूमि भूमि पर दिखा । ध्यान होने की वापरहूँ कि इस अवृद्ध वर्षों दूजन मंभव नहीं है, यानि 'रचना' सम्बद्ध है । गिरु वडी वर्षों पर यह है कि इस वर्तमानी में 'रचने' को जगह केवल 'करने' का विमेवारी कलाकार पर ही आती है, संवधारण (राज्य और दूजीरण) पर नहीं ।

इन दोनों के विवरणों ने गम्भीरता आवश्यक है । एम श्लो भीशं
मंवधार लोर दैवन भगवान में दूसी दृष्टि है । जो लोग ये कलाओं का काम जा दर्जों न
देखते केवल उद्यमाय का लोर देते हैं, सूहन का दर्जा न देकर बैठने जोक मानते
हैं, इस दर्जा दर्जों वा । नहीं कर रहे हैं । हम उस प्रदर्श और भूमीके गामने
अपन आपका लड़ा अपरहूँ है तहा॒ र्यान्दूऽएक कला है, जहाँ पह औप नहीं,
गृहन है बहर एवं सर्वानन्द के गाथ-ही-भाष्य अपरहूँ भी है । इस भूमि में
सराधन घोर नहीं ही, रुक्मि, तुशीर्दि वा दृष्टक गमान, उसके चंद्रकल के भानु
हीं दूसे प्राण नहीं वे लक्ष्मी हैं, यद उप्य है । कलाकार के ही दृष्टक होते हैं ।
बाहरी संवधार लोर भूमीर्ण भूमि । जित कर हम बाहरी संवधार ने अपन
मृजह कर्म के द्वारा बचनशब्द हात है, यहों उसके प्रति अपना दृष्टिवृत्त्यानं का
कैराना आरंभ है उसके बाद हम अपनी रचना के दृष्टवृत्त्यानं का बन्द हैं, जहा॒ यह
आपसीरण या या या नहीं है, यहाँ 'रचना' नहीं है, बल्कि 'परना' है, 'इसी हम
आपसी वृत्ति आपसी वृत्ति आपसी वृत्ति है । मनतव जैसी विहारी, वैता काम,
जैसा काम, जैसी दिशाएँ ।' मजाक और निष्ठाकार का अंतर कभी न योकुँ छिपे

है। मनुष्य एक समूर्ध सत्ता है।
सच्चाएँ ये उपर्युक्त विद्युत की
कर्मणा बहुती हैं, जब तथा उपर्युक्ती
वाऽमनुष्य तद्वत्तम् है। वै उन्नति

जिन कर्मों हैं, जिनी और सामूहिक,
ये उपर्युक्ती दशानाथी या पूरा दूर
दृष्टियाँ हैं, किंकरं रंग कला में जला के

शर्मिन हैं। उन्नेष्ठ, दृश्य की कला
एवं संस्कृति एवं किसी भहन्वसुर्ण
राजा संखेकर, न अपेक्षु लंकाक
यों के हाथ मेरै— गृहग्रन्थ और
कला प्राप्त उन्नति के ग्रन्थ नीं बार
के शब्दों न सद्गुण में कलाकार को
मारने वायना एवं प्रारंभ कर दिया।
उन्नम संभव नहीं है, पाव वै ना।
इस गारिमयों में 'रमें' वी नगह
ही शान्ती है, गरमक (शब्द और

वाचश्चन है। रंग-कला मौलि-रीति
जो नाम रंग-न-ला का कहा जा दर्जा न
का दर्जा न देकर कल शैक्षण संभवे
हृष्प उपर्युक्त और नृत्यों के सामने
ये पूर्ण कला है, जहाँ यह गीत नहीं,
साथ आन्माजन भी है। इस संदर्भ में
दण्णेन गप्तवत् उपर्युक्त संदृश्य के भीतर
। कलाकार के दो विषयों होने हैं—
जिल इष्प हम बाहरी शैक्षण ये अपने
इसके दृष्टिधर्म द्वारा एवं दिग्दीपों का
वा के स्वरूप संवधक वा ते हैं। जहाँ यह
नहीं है उद्देश नहीं है। जमे हम
हैं। गालव 'जैगों' द्वारा ही, वैता कला,
लालाकार का अंगद चर्चा की पीछे किंतु

मनोभाव का द्वी प्रत्यक्ष है। मनोभाव ही किसी कार्य का उन्नति वाला देखा है अत्यधि
उक्त नार्य यो साव यस्ता कर देता है। पहुँचती, उन्नामार के विद्युत की दो
विलेपताओं की ओर बदलते हैं उसकी शैक्षणी प्राप्ति। दशा उमड़ा पैदे और राक्षस।

जिन क्षण कलावाद विद्यों का विद्युत कला देखता है, जहो से
उसके उपर्युक्त का शुभार्थ होता है। उसके श्रीर शैक्षणी द्वारा से उपर्युक्त इत्यक्षण स्माप्त
हो जाता है। विद्युत माल्यम से वह कार्य करने वा उन्नति विद्युत का उपर्युक्त हो जाता है, जो 'पृष्ठी', शीटा, शाहु,
ज्ञानीया या अविद्येन, जिसके द्वारा वह उस कार्य की पूर्ण करने लगता है, उस
गृहमें वह यस्ता कार उपर्युक्त हो जाता है। योगा उद्धव भूति वंश है, 'हम'
उपर्युक्त का हो जाता है। उपर्युक्त के माल्यम से वर्णन, यमया, एकता अंतर्कल्प
अविद्येन दिया। उपर्युक्त का गाय, उन्नति में लगता है, उपर्युक्त के विद्युत
द्वारा का उत्तम संभव है उव नामों का उपर्युक्त उद्देश्य बहु जाता है। उन्नति
क्षेत्र म उपर्युक्त ही 'उपर्युक्त' है। कठोरियों वा विद्युत में उन्नति वह
उद्देश्य हो जाता है। उपर्युक्त से वीर्य लक्ष्युः हैं जो उपर्युक्त साथ हा वर्ती वा
विद्युत विद्युत ही उपर्युक्त की वास्तविक्षणी से हृष्पकर उत्ता तो उसी सम्मै देखी जाता है,
उपर्युक्त कार्य के अविद्यिका की दृष्टि उपर्युक्त विद्या सभव नहीं है। उगी उपर्युक्त प्रतिनिया
यों गाथाना रहा गया है। कठोरियों उपर्युक्त से यमात्रज न उच्चारण वाले वारे में
नवानन वायव का ज्ञान दिया है, उपर्युक्त उपर्युक्त वहाँ है यदि उपर्युक्त कलार को
कर्म साधना में काई भी संलग्न हो ना तब उसे लगान चाहती है। (उपर्युक्त क्षेत्र)
आनन्दलाला वृद्धि में विद्यों उपर्युक्त कर देता जाता है। उसी उपर्युक्त विद्याम
उपर्युक्त के अनुमान कर्म में विद्युत उपर्युक्त प्रवर्णियों को प्राप्त ही जाता है।
उत्त प्रवर्ण में यहाँ यथा कला रथा है कि उपर्युक्त वासी दायरेयुः ही न हूँ जाये।
उन्नी उपर्युक्त के अनुमान कर्म में विद्युत उपर्युक्त के अन्तर्मुखी वासी भी
नहीं जायेन। उपर्युक्त उपर्युक्त से अविद्येन के मृदुप्रवर्ण वासी विद्यों न दियो न दियो
दोष गे आवृत हैं।

आवृद्ध उपर्युक्त कार्यों के कला है कि 'वालाकार कर्म' उपर्युक्त नहीं होता, अविद्येन अपने दोष में
विद्युत उपर्युक्त कला में हैर प्रवृत्य कलावाद है जो उपर्युक्त कार्यों का उपर्युक्त से
जाहे है। यह उपर्युक्त के उपर्युक्त कला है कि यो श्राव उपर्युक्त के अवलोक अपने
विद्युतमें नहीं लगता है, वह उपर्युक्त कर्महीन है। कठोरियों द्वारा उपर्युक्त
लालाक, शैक्षणी, चिलवार, पौदा, योगील, उद्धवार, मृदुलाणी वा उपर्युक्त भी
दृष्टिधर्म म आनो उपर्युक्त के अनुमान गंतव्य है यो वह उपर्युक्त है। उगी उपर्युक्त में
कुमारकामों का उह प्रवृत्ति उपर्युक्त है, यो उपर्युक्त है। 'जो उपर्युक्त नहीं उह उपर्युक्त में विद्यो
कर्म का आवृद्धकार नहीं है।'

उपर्युक्त के नभ्य ही उपर्युक्त भहन्वयुण प्रवृत्ति गहन ही उह जाती है, किसी
यो कर्म (उपर्युक्त) का नहीं करता है, उपर्युक्त पारी वाला, उपर्युक्त उपर्युक्त करने जाना

ओर उस प्रभाव में रखा गया। दो नवा संदर्भ हैं? तथा यह गब अपने गुण के लिए ही अधिक व्यापक जनहित के लिए ही वे सभी प्रभाव वश्वास सुधर की अपेक्षाओं, छच्छाओं ने बढ़े हुए हैं। जब हम हमारा सभाज परामर्शों की मात्रा से बदला थे, कुल परिवार और सभा या सम्प्रदायों, समाजों के लिए या नव भवन सुधर को इच्छाएं तिथियाँ और निर्णय दी। आगे अपनी इमाद और इसे नुच्छे ही वर्णन अभ्यास रचना के प्रभाव एक विशेषक विद्वत बन जाता है। इस इतना में 'रचना' की अभ्यास रचना बहुत ज्ञान हो जाती है। अपनी परामर्श और निज गुण, दो यजु यज्ञों की प्रवृत्तियाँ हैं, मनुष्य संसार की प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। जैव युध का नियन जिसके अंतर्मध्य इसके सुधर है ऐसे कुमारस्थामों ने प्रभुता 'नमुद्धारण' कहा है। वज्रंक पश्च के बाल यही जानता है कि उसे क्या। पश्च द्वारा ही इसी सुधर की खुलासे यह पूर्णांकिता है।

वीचन में सुधर का बहुत गहराव है। सुधर तन्व औपन के महत्वी प्रेरणा है। लिख गब गुण को पूरे जीवन में लकड़ा मात्रा और सुधर की गवाया नियमी मात्रा, और विधिक रक्षित होने के अपनाये आता है तभी यह अमालविना हो जाता है। जहाँ 'रचना' हैरान के प्रति (भृत्यमें) एक दूजा है, वहाँ अपना कर्म करना हैरान के बहिर्भूत पाना है, वहाँ नियमय ही वह कर्म जारी हो गा है। इस संवृणना में मात्र नियोगुण तो भीदर्श की कठोरी मात्रा के द्वारा अत्यन्त है। आनुनिक दूग के सुल पि व्यक्तिगत ग्रन्थों, आज नियोगुण की कल्पिता इतने भयनाक अवयव के स्फूर्ति उन्नपाल हो रही है। विनक मामने अतांदि बाज में व्यवस्य जानियों के लकड़ा गवायारे, उनके कलाकृतियों को हम अपने आगे ले लें और प्रभावहीन लिख लेने की प्राप्तिनीष्ठा जाटार्ह कर रहे हैं।

भृत्योंपर कला। विनक को छुल उपलब्धि जहाँ नमरह वास्तविक कृति को अपनाने का एक मौजूदे किना माना गया है। बगाल लाला श्याम हाड़कर लाला की दिक्षन मानिगला हृषा रण या व्यामिक्यकिन माला जा रहा है। शुद्ध भारतीय दृष्टि से कलात्मक वस्तु क्या है, इसका अन्यन गरजन, भृत्य उत्तर हमारे वहा, हास्योंपर कला हो या लोक कला, यह दिग्गज रथा है कि कला हमारे उत्तराय, आपेक्षा ना प्रकाश है। लहू उत्तराम और आतंद जी उत्तराला के 'उपानिशद' ने जड़ा हुआ है। वर्णित 'रचना' कह तक्क है, 'अमवा बाज व्यविना को है। यह अपने उपानिशद के अनुसार ती अपनी कृति को रखता है। इनके लिए हमारे वहा उद्यादरण दिया गया है। इसके द्वेष सुधर विनक का गुणित है, वेल ही लोट्टी भी रचना रथनाकर के जान दुकान उपरे अपनी उपादान दर्हती है। जमन भाशु और दर्शनिक मीटिंग एक हार्दिक ने कहा है, 'कला ईश्वरीय देत है। मनुष्य का साथ लोकों मोदर्स उआस्ना की अंदर उत्सुध है। शुद्ध कला मनुष्य के लिए अभी अब बाबू है।' कुमार व्यासों के लकड़ों पर 'कलाकार कोई निषेध व्यक्ति नहीं बना' प्रत्यक्ष व्यविन एक दर्शा उपर्याग का कलाकार

वायर तब अपने गुप्त के जिम है बहुत, मग्नम् वी लोकान्। परमार्थ के सामग्री के चलाकर चला था, के बशीर वा द्वंद्व स्त्रीय को दें और निः शुल ही उस गम्भीर है। उस दशा में 'रचना' की विनियोग, वृश्चिक भूमि की केवल गुप्त का जीवन इंग्रजी 'शुद्धिमत' कहा है। परमार्थ के छोटी शुल की विनियोग में उह

ओटन वी गहरी परम्परा है। गुप्त रूप भवेषः तिजो मात्राम् असान्तोष हो जाता है। उहोंने अपना रूप नियन्त्रण के द्वारा है : एक गंगांगा में पाख लाने हैं। आधुनिक गुप्त के मुख में इनसे अवकर भूमि के स्पष्ट गुप्त अनेक विनियोग के कथा लह और प्रभावदीर्घी बनते हैं।

इन तप्ता फलामाल रुगि को तो अपना ध्यान हड्डाकर रक्ता ला जा रहा है। गुप्त मात्रामि रुप, महत उन्नार इमारे गुप्त, कृकृत हतारे दलाम, कृपद बर के 'छापान' में जुड़ा है। जो होते हैं। उह अनेक भूमि जात के अपने ऐह इवाहन विद्या द्वारा रचना रचना करने के लिये अनेक अन्नार्थी वह विनियोगाना लो और उसमें दूर भूमि के गवर्नर में कला-एक पात्र विद्युत कलाकर

है। जब वी गुलाब के फूल का विन विनामा चालना हुआ तो वी आदमी म गुलाब के फूल से चित्र होना नाहिए। चित्र म वारकारिक गुलाब के फूल की नकल नहीं करते। वह कहा है ति रचना क द्वारा नहिं है पहला रचना के विधार के रूप (कार्य) का उत्तरण, दूसरा है गवर्नर के गास्त उम रचना का द्विविवित होना, तीसरा है उगके अन्नार विद्या द्वारा उग विद्या को ओर छाप जाता है अधीक रचनाकार उग विद्या 'वद' का 'उत्तर' करता है। नाह वह वस्तु अवका विद्या एक फूल हो, वा देखना है। एक गुलाबुर के अपने विन्ध में द्वारा कि तुम विनामी के 'विन विनामी' द्वारा नाम दुम आओ और अपान न बैठा। जब उपहरे विना में काँहे विनेप प्रेरणा द्वारा उपहर तो तब रचना करता। भासीय रचनाकार, भूमिकार, विनियोग 'अपान', 'वाट' का इसी विधि का प्रयोग करते हैं और नहीं हैं।

कला की 'रचना' किसी वस्तु पा नियम वी गुण व्यालग और उसके संगुण स्थिर का आरोग्य है। यह नियम हांत हुग, वी लागांग, रुपात्मक और वृहन्नात्मक है; कला की रचना को अगंत्र विविधों और जैलियों हैं विन् कला मात्रमीम बाणी है। तेलिया ती कलाकार वी अभियांत्र का वी गाध्यम साव है। वर कृषि में, रचना में प्रत्येक रचनाकार अनाम अग्नित्व छोड़ जाता है। यह अग्नित्व ही 'परम वद' है जिसका सर्वथ उसकी आत्मा से है ; जब रचनाकार की रचना कला की परमामात्र, 'विन वद' पर बहुत जाती है वह उसका अन्न हो जाता है। दूसरे शब्दों में रचनाकार का अंग अनामी रचना के द्वारा उग परमपद' को प्राप्त करता है जिसके बारे दुष्ट भी 'पाता' वा 'रचना' शब्द नहीं रह जाता। आनंद कुमारस्वामी न जिया वी कला निर्माण का व्यापक तत्त्व वही है कि उगके द्वारा प्रहृष्ट की विनियनि अंग प्रहृष्ट की गपरा अनेकांतों का रचना होता। भासीय दृष्टि में 'रचना' के भूमिका से प्रहृष्ट की विनियनि विनामी और भूमि अवस्थाओं की देखने का अंग है सूष्टि के सब अंगोंको चरितों की हृष्टि के अंग से जाता।

कला वी मानवांशी में अपने परंपरा और हीरिये लो अनामिक महत्व है। यह एवं और यन्मान है वी दुसरी ओर लोरपांकि है। इसी की कला-विनामा नहीं है। रचनाकार वी कलाकार का अंग अवका भाष्य, विनामी, वी प्रदर्शन रुद्धि अवका परम रागत तंकेतो जिल्लों के द्वारा होता है। यह तब हात हृष्ट भी विन रचना में अदाप प्रेरणा, उल्लंघन और रंग नहीं होता वह कला नहीं होता, वह 'रचना' म होकर केवल 'रचना' क्यों रह जाता है। वह हम अम्बी चर्चा करते हैं।

पर्वतम में रचनाकार वी दुमिया में रचना एवं विकाक माल है। यह तप्त वही भवहरी शाक्की में दिख गया था। दुमियों शाक्की नम आने-आते राज्य

बल 'जानने'।
पोर्ट जार की
नमै जान में ब
हा तया संवेद
नक्कुड़ि (जार
गड़ी हुई है)
उत्तरे पृष्ठ ही
दूसरे को बर्ता
मण्डल हो जाए
गृह नहीं है व
जींग नक्कुड़ि
जिंग लहड़ी
परम गांगांग
पांचवें हमले
केव संभव है
नाम है। ये उ
उत्तर विश्वा
रही है। क
व्यवस्था के

'जानने'
'जानने' ना ब
बहुत बेष्ट ली
निः उत्तर
ने गधवाल

दृश्यका
संरक्षक पर
पर्दी अली न
दिल्ली त्रिपुरा नि
कला है। उ
आमझान ऐ
निः उत्तर
लोट मला

गांगांग
के गांगांग से

और अधिकारियों के दूरी चिकित्सा के साथ-साथ हृति और कृतिकार, अथवा इनका
और रचनाकार के बाज में एक तीखरी बढ़ी जनित आश्रित यही हुई जितका जीव
है याहूव, व्यवस्था, बाधार को रोच और मांग। इस नीतिमें चिकित्सा को इस रचना-
प्रक्रिया के शहर में अधिकारिक गवर्नरक बद्दों। रचनाकार के भोगार, विषय संरक्षक
की विधियों में अभी तुनियादी अंगर था आपा है। जाहर है आधिकारिक अधिकारियों
व्यवस्था में रचनाकार का वह अंतरिक गवर्नरक जाने अनजानी उभी
तको इसके भीनर बताया रहता है। ये गवर्नरक ने गवर्नरों से प्रतिष्ठान नहीं
मिलते। इसोलिए हम प्रायः देखते हैं कि योगिनिया रचनाकार, 'रचनाकार, अधि-
कारी, गांगांग, रवि, विषयक, प्रतिष्ठान' योग्य कुछ वही वही दूरी है जो
उनके महज प्रारंभिक दिनों की दूरी होती है। ये वह वहार के गवर्नरों द्वारा
प्रतिष्ठित नहीं रहता। अतीव लंब वह महज ही अपने अन्यरक्षक के अधीन
अपनी रचना का सूजन करता है। आएवयं को बताय होती है कि व्यापे याहूव मुख्य
के आधार पर बैठ-जैसे बद्द, प्रतिष्ठित होने लगता है, बैठ-बैसे वह आधिकारिक
को दूर हटाता हूँदा बाहर के व्यवस्थक प्रशासन संरक्षक के अधीन होता चला जाता है।
उनकी यही प्रतिष्ठान विधा, बाजा संरक्षक की अधीनता उपरे अंगरे रचनाकार
की भूमिका गे चुनून कर मांग के अनुसार 'कर्म' को बाजा कर देना है।

जब वे आरनीय व्यवस्था परिचय मेरे जारी नी हुई, ये ये कहे कि अधिकारों
की गुजारी के बाजा हम पर आर्नित उन्होंने की अवस्था का विकृत रूप है। इस
व्यवस्था के यानुभव की यदि हम एक ग्रन्थ में लिहा चाहें तो यह व्यवस्था नीचे
से ऊपर आ, यामन दिलाओं में आगण को आवस्था है। इसे सामाने के लिए
ओर यहा के प्रयोग की अधीर स्फूर्त करी के लिए हम आपने यहा की जिधा अवस्था
को ने सफल है। अधिकारों के आने से पहले हमारे यहा की जिधा-अवस्था सुर और
जिध्य के सबंधों की दुनिया थी। इस दुनिया में गूर्ह जिध्य को यही जिधा देना था,
उभने हुए बेश की गंगा, अनीन के लेणवय और विदा इकानों के जान देना था।
उन जान के आधार पर जिध्य ने अपने 'व्यवधर्म' के अनुसार उसका व्यापार अधीर
चरित नियम लिया था। गुरु से प्राप्त जान को गुरु में अपने चरित के द्वारा न
जांचने में बहुत अनुभव है तो उन्होंने गृकाना लगा जाना था। यही ने उमे अपने
बांकन की एक रचनाव्यक मालिका का प्राप्त मिलना था। उभी जाव और अनुभव
प्रकाश में, उह अपने परंपरा, अपनी सदाचानना और अपने प्रसंगों में अपने बांकान
और विधा को देखता संभवता था।

लोक इसके लियरीन आधिकारिक व्यवस्था ने गुरु-जिध्य नाम से जीहा
कर द्वारे उस वर्दी पर्याप्त के भूग में अपना अपनी जड़ से उत्तर दर नाम प्रबाह की
धारा में दृढ़त हुए। उभ यक्ष की तरह कर दिया जिध्य की अपनी जीहे लोपना था।
दिया दी शेष न रह गयी ही। आधिकारिक विधा जान की विरोधी है। इसका पूरा

वाचक, अन्तिम शब्द।
दूरी हुई उम्मीद नाम
उपलिखि। वो हृत रचना-
संग्रहक विधिन संस्कृत
आधुनिक शब्द, २००५
में जाने आवश्यक नहीं रहा।
कार, गिलासार, गंगा-
योग वहाँ हैं तो ही में जो
हर के संग्रहकों द्वारा
अन्तिम संस्कृतक के अधीन
किए थे भहा। मृत्यु
से दूर, उत्तमसंस्कृतक
जीव होना जल्दा जाना
उपर्युक्त रचनाओं के
कर देनी है।

वा. वृंद के अधीनजो
का विकृत वप है। इस
तो पहर व्यवहार नींदे
इस तपश्चान के लिए
हो गए गिर्द अवधा-
रका-उद्यवस्था एवं और
दी तो। इस देना था,
रोको का इन देना था।
दृष्टि द्वारा काल्पनिक और
जाने जानने के पार्श्व में
गण गर्भी रहे तभी वहाँ
दृष्टि जान वो अनुभव
दृष्टि ने भाव वर्णनान

एवं प्राप्ति की नींद-
वप कर दाता व वाहु की
कर्तव्यी की अनिमा। या
रोको है इसका दूरा

वल 'जानने' वह नहीं है, बल्कि गूचना वह है। आज के विजार्ही के मामने जब भी
जोड़ जान को वाल फहीं जाती है, वो उनकी गहरी प्राप्ति की वह ही होती है कि
उसे जान में ज्या लेना-देना है, उसकी आवश्यकता में उभे अनीत और परंपरा
की कथा निवार है। उसमें कोई आस्था नहीं निकलता कि भवित नहीं। उसे मात्र वह
है कि वह निवार है। उसमें कोई आस्था नहीं निकलता कि भवित नहीं। उसे मात्र वह
है कि वह निवार है। उस वर्क्षुद्धि से वो रास्कृति आज हमारे वारों और पनची दुई है
जोड़ दुई है। इस वर्क्षुद्धि से विषय निवार है जिस विषय की विषय वारों, जिस वरह से
उसमें एक ही मनोभाव कावेद्य है जिस विषय निवार है जिस विषय की विषय वारों, जिस वरह से
इसमें कोई विचार नहीं निवार है। इस व्यवहार में वही भी कोई विचार नहीं निवार है, वही वह
काल हो जाते। इस व्यवहार में वही भी कोई विचार निवार है, वही वह
गृह नहीं है वो ही तस्कार व्याकरण व्यवस्थाने वागृह वही, अपना भैंस और
गृह नहीं है वो ही तस्कार व्याकरण व्यवस्थाने वागृह वही, जोने वर्क्षुद्धि करे। आज विधाल के इस भवित व्यवस्था का ऐसा हवाल है जो कहा है,
जिस वह भी पर्याप्त नहीं तक वह क्या तेज रहा है जोर दाने रहा है। वह अपनी
परम नानालिक आधिकारिकों और दूसि क पर्याप्त वागृह है। इस व्यवस्था से जो
परिवर्तन होता है जारी और भरही का जाल बुझ रहा है, जगम रक्षा करता और
भीम वर्ग है। भूख और रास की वृद्धि ही इसली निवार व्यवस्थाके आवश्यक-
ताएँ हैं। ये आवश्यकताएँ रचनाकार को रचनाके शूल केंद्र में पूरी तरह दर्शाकर
दर्शाते हुए और व्याकरण की संस्कृति से जोड़ देती है। उसमें वही वर्क्षुद्धि भाँकण
दर्शाते हुए जो जीव वह नहीं यकृती वह विश्वरूप है। विकर्ता वहाँ है जो
व्यवहार के अनुकूल या उभों के उद्दारे और मांग पर चढ़ी जाती है।

'रचना' ही 'रचना' करना है। वर्तमान व्यवहार ग निवार जान की संस्कृति
'जानने' युन्ने के विषय जहाँ है। उपर यह जानना। संख्य कीं सोग। यदि इस
अभी जानने की क्षमता विषय न उपर्युक्त होती है तो आज को जानना-
करना ही और विषय की संस्कृति से जोड़ देती है। उसमें वही वर्क्षुद्धि भाँकण
दर्शाते हुए जीव वह नहीं यकृती की उमे तरह कर में जैग एवं संग व्योकार
दृष्टि वर्ग विषय आधार या गर्भी की उमे तरह कर में जैग एवं संग व्योकार
करता है। एक सद्वार व्यवहार-विषय के लिए। आधुनिक अवधार 'इस तरह
शास्त्रज्ञान के विनाश है, उस जान के लिए वीरिया मूली न। याम है एकमात्र
विश्वलूप है, जिसे 'करने के पायलालन ने कुकल होकर गम्भीर 'रचना' की ओर
लोट सकता है।

मार्गीय छलाक (जीवन और आपासा को) जोड़े जाने ग्रूप्स लंबाएँ मूलीं
कर भाँकण से जपने रचना लोग लगता है। यहा मृत्यु जन्म आध्यात्मिक एवं

आंतरिक दृष्टि में प्राप्त होती है। भौतिक वाक्यकनाओं का स्थान यहाँ सदैव पौण रहा है। तस द्वाय का समारे वहाँ सदा आवश्यक लंबा कर दिया गया है। वह अपने शास्त्र में इनाम प्रत्य होते हुए इन्हें दुखन के सामन्य को प्राप्त कर लेता था, जहाँ वह मनुष्य की मनानन आवश्यक शर्तों के हार पर इतक रहा था। इसके उल्लंघन के बाद श्रवण की शास्त्रीयता छाप नव पड़ी थी, जब इश्वक और श्रीना के विच को उच्च धारा उच्च संग्राम सम्भवत, उपलब्ध होते हैं। तबकी रचना में ऐसे प्रश्नों का उत्तर भी दिया गया था जो रचना के महत्वार उद्देश्यों को छिपा हो आशा होता था वो यहाँ भी उत्तर दिया गया था।

इसी अनुभावी विद्युत के दर्शकों का संचारी के नाम अनुभूति रचना हमारी रचनाको मुन्ना पहुँचात है। पर अनुभूति इस अवधि में नहीं थी। तब उसके में इस रहने हैं, उसकी बात आराधियों को उन्होंने विभिन्न उत्तरों के उद्देश्य से दूसरे अवधि के विभिन्न प्रकृतियों द्वा व्यापकताएँ निकाल अद्वितीय को जाते। किसी देशी नीति की इच्छा हमारी आवधि कीमी विश्वास रखने पर देख लगती है, या देश सकारी दों, उन उसकी भावनाएँ जनन प्रदान करता (जैसा कि एक दम के अनुभव विषेष और अस्ति में है) हमारा उद्देश्य है। यह दिशाना या श्रोत्रवाल के दृश्य में अवश्य है, एवं वासानाण निर्माण, व्याभास्तका, यात्राविकला है। यह यह भौतिक वास्तविकता में अधिक कुछ है, जिसी वास्तविकता है जिसे त्रायामा दुरुपयोग लना है कि पहुँच उसके अल्ले लेनी ची है, अपनी आत्मा की है। हमारी शूल आसे उस देखने वाले गाती है जोनों हैं।

हमारे रचना जगत् में विश्वास आवधि और साक्षर के द्वारा यह प्रथम उत्पन्न किया जाता है, उस भावनीय इच्छा की अनुभूति दृष्टि का अध्ययन। विशेष गुण है-

रचना ने संदर्भ में एवं शूलियादों वाले भावों का अवश्यकता को निरात आवश्यकता है। भावनाय नस्पता गे शूलिय और स्फुरा वा बोता के बीच भगवान है। हमारे गहरा ना यह पत्ता विश्वास है कि उपर्युक्त है, जो असाधि, अस्त्र अनुभव है वही इस उत्तर, गोपनी विद्यार एवं एकमात्र भवनाद और अचलताद है। यह दूर तत्त्व लीट हर नमुदु एवं एकपात्र अनावल वहाँ है। इस संदर्भ में भूमिका नहीं रचना कार है न वह किसी शूलिय का गर्जक है। पाठ्यक्रम का गहरा अक्षय गर्जक अद्वकार है इस अवधि इन्द्रियों और अस्त्रमान के बीच है। जैसे कुछ अमेय या दूसरे के द्वारा करता है। संक्षेप यही करता है कि एकमी शूलिय। में कर्म, अर्थ, अवश्यक वर्ण इनका प्रतिक्रिया है। यहाँ इस प्रश्न का ही अन्त है। इस नमा है तो मनुष्य आर्थिक है और जो कुल वह कर रहा है उसका अर्थ है तो यह है।

भावनीय दृष्टि और अंशों के अनुभाव रचना है जुकाम है, हर उपनामे

यही आदि अवधि
रचना जो यही दृष्टि
भूमिका नहीं रचने
वाली उपनामे
मतना, जो
‘अनुभूति’ द्वाय
द्विभूतियाँ उपनामे
उपलब्ध हैं, जो अवधि
भूमिका नहीं रचने
जाप ने अपने अपने
कामों में उपनामे
हो गया है।
इसे नामानुभूति

मरण

१. अनुभूति
२. उपनामे
३. भौतिक

स्वतन्त्र होने वाले
का कह दिया था।
मर्यादा प्राप्त कर
कर इनके लिए।

पर उठी थी, अब
उन्हें आश्रय हीते
था रवना के
उपर पास छैया की

जुनूनी हमारी
जैसे जल में हम
के दृष्टि संस्कृत
नी जल। जल
उत्ती है या देख
प्रथम के भवितव्य
है यह इमारा कि
भाषणारा, जन्म-
मी बार्बिकला है
लेकिन है लगारी
ही जाती है।

जिन्हें अवश्यका
सार्वत्र है। हमारे
इष, बहुआदे वही
है। यह हर वन्य-
जूला न तो अधिक-
गत सर्वज्ञ भूमार
या सूतन जा वही
जैसे अपनाया पर
कि साध्य जीवित

हो और यह रक्षा में

बड़ी जांच अवश्यक समागम हुआ है। प्राचीन शंखना रखा। तभी उस स्थलों-
रक्षण जो भी वह करेगा वह शंखना के उत्तरी होगी। दौस उसी उत्तर ओर एक
मतुरा गृह अनुप्रयोग जो जा पहुंची न। इसका है, वह यह अहलों थार में दो दोनों
रक्षणी वह जलना, वह पहुंचना जो नहीं होता है।

मन्त्रिय, जो इसका ली चुप्ती है, उसी के बाहर 'अवश्यक' का योग्या है।
अवश्यक वासने के लिए हाँ जूनी इन्होंने अपनी अवश्यकता (अवश्यक) जीवि-
तियों कुपारदारी के लिए जैविक ('जैविक') उदा नगार। युक्त जैविक देवी
जैव उपायदारी के लिए जैविक ('जैविक') उदा नगार। युक्त जैविक देवी
जैव है। इनकी मुद्रा जो उत्ती ही जाता है। ऐसा ही रक्षणी है। परं पह मानवों
मुक्तन अपार्हत्व देखे नहीं है। इस कुरुक्षेत्र में तृतीय प्राचीन सोना है। अपने
अपने अंत तक उत्तराय देखिये जलना। इनके द्वारा यहीं। वे रक्षण
करते हैं, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की
जैव जैव, वे रक्षण कर रहा है, वह अवश्यक ('अवश्यक') बोह देते। अक्षे उत्तर की

जैव है जैव, जैव।

जैव जैव।

नोट

1. प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख, पृष्ठ 24 अवश्यकता, 406।
2. अवश्यक विषय, 112।
3. अवश्यकता की 10 अवश्यकता, 15 अवश्यकता।

दून कामों का
जाते हैं। रीतियाँ
रह जाने। उम्मीदें
मुक्की पाक सम्बद्ध
है। यह आशा
है। इतिहास
ताल ही जाए
वहाँ वहाँ है।
सा सुन्दर है
हृष्टा तो यह
प्राप्ति, तेसे प्रा-
वही लक्षण है।

कथा लक्षण
प्रक्रिया कथा
धर्मी व्याख्या
कोई आवश्यक
कर बहुत ही
भूमिगत व्यापक
मज़ादार है।

तभी अ-
कथाएँ। निव-
वाचकी की व-
कृता आनन्द
भावा के दृ-
निष्ठित रूप
हमारी कथा
कथा की ओ

है। कथा कि
न मरी हुई
की न रह ल-
का। धर्म स-
वेद, व-
आग्रहियका

कथा श्रद्धा : विश्वासपात्र

अपने नाटक का प्रथम नाम है कथा। कथा में जो वस्तु है, सामग्री है वस्तु का जो व्यत्ति है, वही वस्तु कथा है। इसीलिए कहा गया तथा वस्तु है। जो कथा नया है? कथा की सौन मामधो नया है? वथा की सामग्री के लिए चाहे वह ग्रन्थ-कथा हो, चाहे ग्रन्थभारत कथा या राम-कथा, पा-पर्वती, देव-दानव, मणुज देव-कथा हो, उस समझने में लिए यह जानने विनिवर्ये हैं कि कथा के कारे में लोक-विश्वास क्या है? हम रो वेदों, लोकनियरों, पुराणों, वीद जैन तात्त्व स्थ में नया है? इन शब्दों वह लोन-नींग एक चौंज समान है जिसमें सूख रूप (प्रथा) में जागन, जिस, कला आदि सबको इस गवह अपने आप में वापर करता है। मनुष्य, यह कथामूल है जो जीवन गुर्विद्वय मणियों, जीव जगत, इच्छा-प्रदूषा भूमिगताओं ने बोर्ड से भूवरकर जीवन-नींग कथामूल रखना है ली। अपने से अहंकारी की प्राप्त कथाओं से आगा। जीवन रग भरना रहता है।

ऐसा बयो?

कैसे?

जीवन राम में एक छमटा है। निरुपर जीवन के लिए। श्रद्धा भाव पैदा करने का। इसे के बारे जीवनों में प्रथम लक्षण है। जीवन से मुक्ति ही निरुपर श्रद्धावान हीना, जीव जीन की प्राप्ति गंभीर है। गंभीर को निरुपर का मुख्य रूप साना गया है। इसीलिए हम याते हैं, अपनियद, तीना, रामायण, आदि तभी कथा-कथन गंभीर हो रहा है। गंभीर का उत्तर अवभावी। यामज और ज्ञान ने प्रति उठा दी। इसी उठाने ने निरुपर कथा रखने और कथा जीन की प्राप्ति और इतिहास दूरी है। यह अभ्यास भोगे लोक-विश्वास नहीं, जीवन स्थल के मार्ग कार नी। नि-ह। जीवन लक्ष्य के मध्ये जीवन भभीय जी भावा है। उनके हारा उनी लक्षा करने का माहग ही कथा है। नमी हमारी वहनी नया है। 'उद्दृतागृ', दूसरी कथा है। 'विद्वुद्वरह'। इन्ही अविक्षणाओं पर जो गाढ़ लगाने यहाँ नेत्र गंभीर, प्रस्तुत हैं, उन्हीं को कथा से नाद्यगार्व का युग्मांश है।

इन कथाओं का संकेत यह है। यूनासुर हो या शिरुर, इनसे दूर शिव पर जाते हैं। शीघ्रता ही जाते हैं। शोगा में गृह्णा भी संभव है, तथा लीमा, हीमा न इह जाते। कर्णीलि भीमा गङ्गुरवयं उद्ध पा शिव में बंधा हुआ है। इसलिए दोनों को मूर्त्तन एक माथ है। कथा को यहीं आन्मा हमारी गार्ही कथा परवरा में निशमन है। यहम का छत्र यानी याप की सीपा चायण है, उसी नश्वर चायण की शीघ्रता राग है। इसलिए दोनों की शृंखला एक शाय है। अर्थात् जीवन में जो दून आवजते, वह गप्त ही जाते, यहीं ही कथा का शर्म। जीव कथा के इस सम्म का द्विष्टार अपन यहाँ पर्ज के स्वप्न में हुआ है। वाट्टु का अनिन और जल में विराजन स्वप्न में हुआ है। अपनों कथा के कथय या वश्वत जीते हैं कि जब उन ताल होता रहता है तो लहज ही गृहित रखता हीती रहती है। अर्थात् अवधार वी बार-बार प्राप्ति, तेसे एक रात्रि पर यह ५० भर्म है, तेसे ही भासीय कला-संग्रह पर याद्य का वही अध्य है।

कथा रचने, कहने और उन्होंने प्रक्रिया ही जीवन की प्रक्रिया है। जीवन की प्रक्रिया कथा की प्रक्रिया है। कथा जीवन की आकांक्षा है। आकांक्षाओं के मूल अपनी कथाओं में भट्टे हैं। जीव में आवज कथा संवेद। हर कथा के मूल में कोई न कोई आकांक्षा है। हर कथा में जीवन मेंभावना ही 'वस्तु' है। जीव रचने वाला, कथा का वश्वत होने वाला, कथा कहने वाला, कथा गुनने वाला, कथा लंग करने वाला, भूमि पर नहर करने वाला और कथा को देखने वाला, वे सारों प्रक्रियाएं मर्मित की जायेगी हैं।

अपि जपते यदा कथाम् अवत है। जिनमा अनंत जीवन, जीती ही उसकी अनंत कथाएं। शिव-कथय के देवता (भाव) हैं गाँड़ों, घड़ों (भाव) को देवों हैं। शिव-पार्वती की कथा गम्भीर भाग्य के दोनों कोंठों में। मर्ज्जां। राम मर्दीवा के प्रतीक हैं। इन आनंद रह (कर्म) के अधीका। राम-कृष्ण, जीवन के दोनों पदों के जरिय रासा भाग्य देते हर कुछ में बंधा हुआ है। यानय समाज, अफिल के जीवन को जीने, विषयित कर्म के लिए इस सुप्तों और तत्त्वों की आंखोंपेटा है, जो ही यस्तुत हैं हमारी कथाओं म। और अद्वा ही सर्वप के द्वारा स्थित है। अनंत अद्वा नहीं तो कथा का जीवन अंदराला कहा?

जिस धर्म से जीवनीय चंस्कृति परिचायित होती है, रुग्न, उर्धा की मंदाहिका है। यथा जिवन का ही स्वरूप है, जिससे जीवनाल है - न नीत-ज्ञन, न शुद्धात्मन, न मर्म हृड़ हृदयों। हर जीवन आते होंगे में कथा का जर्वे-कर्म करता है। शर्म को नश्वर अपनी शीलों में। यह अनीत का लगता है, पर यह है दूर कर बर्नमान का। शर्म में जो अद्वा एक सनातन ज्ञान से अभिन्न है, वही अद्वा कथा-रूप है।

वेद, ऋण्डनमद् गुरुदत्, लोका, रामायण, महाभारत की कथाओंमें धर्म ही तो अभिभृत है। तथा तो हर कथा में धर्म की ही नश्वर गेतुके मूल्य और उसकी चेतना

का बोध होता है।

वाया में देव, दानव, पशु-पक्षी, गाने त्रौपि, असुर और गुहम सब
गमाहित हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यापक अर्थे में, इसे नहीं ही तरह, सभी एक ही
चेतना सूत्र पर परिवर्त्य द्वारा है।

इसी विशेष गंदर्भ से हमारे पुरुषों ने यह कहा है कि उसे पालन या मनुष्याश्रय
नहीं है, वह मनुष्य के दाया आदि रूप ग्रन्ति और अद्वैत विवरणता का विनाश
है। उसी का अनुरूप, अनुरेता कथा के व्यवस्था में है, जैसा लगता है। वाया में
मनुष्य के भाव पशु-पक्षी के जगत् जगत् के रूप दर्शाया जाता है। याम-पर्विन, खो-हल्का,
जीव जैन, जगत् परमात्मा एवं द्वय हैं— इससे पहले उकड़ है कि उस व्यक्ति
एक-दूसरे के जीवन में घटे से हो चुके न कही जूड़े हैं, परम्परा गत्कारित हैं। मुख्य
में कलान् शोषो दृष्टि, अन्त एवं वर्तते द्वारा जगान का, वह, अद्वैत, पर्व मनाई हुई
हैं की, राज्याधिकार बहुत करते हुए राजा नां, राजभूमि पर विषेश वर्तते हुए
शिखिता, अकर्मी आदि को नहीं अवश्य करी बराबर आता है कि उन्हें न जाने
किन्ती दृष्टि-अदृष्टि शक्तियों से वह क्यों नहीं का मिला है? इनीं जैन कि वे
अपनी जनानन कथा की बाद उन्हें ओर अमों परिवर्तन कर्त्ताओं का निर्दार करता
न भूले।

वह जनानन कथा क्या है?

कथा यह है कि निर्णी वीचन हा, या गायत्रितात्, एवं गुहाश्ची का जीगत हो या
कलामूष्मि का जीवन, मामी वं गंदर्भ एक विष्य और शास्त्रा विष्य को व्याप्ति है।
इस जगत् में कूल ऐं द्वय से खलग नहीं है।

इस कथा के गनुगाद और अवश्यकित के लिए जिन गुणों की आवश्यकता है,
उनम् वृत्तिगार्दी नहीं है अज्ञा।

अद्वा वा अस्य है— हृष्टव की अनुगृह्णता। जीवन में धीं का हंसादग। धीं पा
बुद्धि को अवधारणा में जान और गाया दानीं का यात्र सहत्यपूर्ण प्राप्त वया,
व्यक्तिक जीवन में जीर्णा, पीयन का सबोचन जानते हैं। इसलिए हमारी कथा, जो
पुलन् वीरामित है, अस्ये संपादन मनु-जगत् में शोभा है। मा पत् ना नायक हो
पीरामयुक्त वर्ग के जीवन का उत्तराधित है। अहमामा और गमायण में यहीं मंत्राम
का अर्थ है। दी इंवामस्त न्यायों का सर्वत्र वाय और अन्याय का संदाम नहीं हाना,
वह नहाई हीनों है। जाति नह नी को इन् वा द्वारा द्वारा ही जा गई दान राडवां का।
इन व्यव्याप की लहाई न वृद्धिरित, अद्वैत वैसे उगत जाय व्यार्थ ल्यान की ही
अवेक्षन सम्भव है। इसी मार्गांच जीर्ण परंपरा में राधी का अनिश्चित की भावना
से शून्य, अहेतुताय विद्याय उत्तेजनीप व्याप्त है। तो हा विभिन्न स्वाधीने वीच-

एवं शुल्क और सुधार सब
की ही तरह सभी दूर हो।

इस प्राचीन कानूनात
शुल्क विवरण का नियम
ऐसा लगता है। जो भा.
रा., राजा-प्रिण्ट, लाइ-डाक्स,
प्रकट है । इस वर्गण
शुल्कालयकालीन है। भूमि
विवाह एवं बनाई हुई
विविध प्रयोग के द्वारा
जाता है । इसमें जो जाने
जा है ? इनीलिए । निये
करनेवाले का नियम है जिसमें

‘नृहत्था’ का दीवन हो या
अन्य नियम वो लिखा है ।

दुष्टों में आवश्यकता है

‘दौ’ का विवाह एवं योग

महन्त्युणि सामना या,
संविधान समाजी वर्ष, जा
मन वर्ष जा वापक हो
तामर्थ्य ने की संवाद
वर का संवाद नहीं हाउ,
सिफ़ गाँव पाली का ।
वापत्तवर्धे यांग को हो
वा प्राप्तिग्राम की गताना
दिनभन्न गताना के वाप

की लकड़ी है, युद्ध है । दूसरी उसमें व्यापक-व्यापाय का क्षेत्र विवाह ही नहीं है ।
प्रानिया वर्णित होता है । शमु या नियोगकार तो, कियों सी गायन,
वाय गे गराजन, गृह्य नाज ही एकमात्र लकड़ है ।¹

इसी कथा का लापारम्भ : भाव तकि वदा है, और वदा ने उद्भुत लोकों
जीवं का भाव है, इत्यादिम् । हमारे नाम्य गे विव लकड़ का । भवोच्च रथान है, वह
है कपड़ाजी में भी वायात कथा, जिस नाम्य में वायिकार्यक कथा कहा है । आधिक-
कारित, इच्छ की व्युत्पत्ति करने हुए इसका लकड़ करते हैं । फल पर नाम्यवर्त प्राप्त
धरना अधिकार कहाना है, तथा इस पर या वायाभिकारी वहलात है । उस
फल या फलभोजन के द्वारा फल-प्राप्ति । ५. निर्वाहित वृक्ष या वाया आधिकारिक-
वरहु कहनाती है । उच्चाहरण के लिये वायिकार्य, तीना प्राप्ति तथा रामराज्य की
तापण । रामायण कथा का फल है, इसके स्वामी या शोका । राम है और ओरज से
रायणवध, तीना प्राप्ति तथा रामायण भवेत इस की कथा अधिकारित कथाकरतु
है ।²

इस कथा का प्रयोग तो या फल परा है, इस प्रति का उत्तर देते हुए दशावधक-
कार बताते हैं कि इसका फल (वृक्ष) धर्म, वाया वाया कामस्न विवद है । यह फल
कभी तो इनमें से एक ही ही सूक्ष्मा है, कभी दो वर्ष और कभी तीनों वर्षे ।

इस नियमे स्वप फल के माध्यन को विवेचना करने हुए बताते हैं कि ‘स्वपक के
आवाम में अलाहपर ये ग्रने तिन वर्ष वार्ष और लकड़ के फल या कामा है तथा इधि-
कृना में अन्तर्कल्प में अच्छात होता है, योज कहना ॥॥ है । अल्पस्वप में निर्दिष्ट हेतु
जो वृक्ष के लाय (फल) का मात्राक त तथा वृक्ष के दोज की गत्ता पूर्वविन होकर
अनेक गाय वृक्ष की गत्ती रूप के रूप में विवृद्ध होता है, वह प्राप्तिभायिक रूप में
बीज कहलाता है ।’

यह कथा हमारे नाम्य और अपनी गायायी की, अंदरों से गहरे क भारत स्थि
त है । अपनी भारत में अपनी कथा के शान इनकी कहानी (ज्ञान) का ‘आर्तीपण’
शुरू हुआ । शन् । १२६० ते १६३० के बीच हर अंत में आर्तीय गंभ्याओं और
सहस्राओं के चौक्के हमारे मास्तुंत्रक ग्रने-वारों (मूल, ज्ञान, इतिवृत्त) की गत करके
प्रयोगों ते आगे ‘रटोरी-लाट’ लो लाच-गदा किया ।

नन् । १९२० तक भारत देश के प्रधानमंत्री वर्ग के एक वक्तु वड़ा हिंगा अपने
समाज हे अनग-प्लग हो जुहा । या और उसने अपने दिवंग, वार्त्तरनिक और भार्त्य
कला जीवन को विनामी विचारों, गमनालों और मापदंडों के प्राधार पर ढालना

कहानी
 कहानी
 नहीं पाएँ।
 जिये वगवा
 देखने वाली ज
 दुनिया ग
 कहानियों म
 जिनकी व
 रो उड़ले
 कहाने
 के दूसरन क
 एक ही है, ज
 का मै शब्द
 बहुत सुनिक
 कहाने
 किकान ने
 रास्ते मै ल
 ही आसानी
 मै जीता है
 खेल करने
 मिर्क मुक्के
 बाटों
 जाती है।
 बया होना
 काम करे।
 'मार गोन
 भर मै है
 काम पर न
 लीट जाय
 आदपी न
 डगर-डगर
 आदमी बढ
 उनमै
 कवा सुनाए

गुरुकर दिया था। नाट्य देव ने उमा। यहून एक और पारमी चिरेहर मै दै, दुर्दशी और इसके प्रभाव मै है नारकार अद्यनंकर प्रसाद के नाट्य मै जनका सारा कथा विद्या।

वह ने निरन्तर शब्द के हो नमान व वह के बारे मै भी एक अधिक धारणा यह बतायी जानी चाही 'क' कथा तो हमारे गाँव बाजी, पिछुहे लोगों को भी न है, जो अपनी गमेवी, शीघ्रता, विद्याना और हारा वा जीवन जीति रहे हैं। भारतीय शासकों और उभे ईश के गमांगिर, धारिक, शिति-चित्तावाङ्म के द्वारा जिनका भयानक गीरज हुआ है और जिन्हें असंख्य विजयों द्वारा गया था, कथा उनके मृत बहनाव का साधन है। ऐसा गमन जो उनकी परिविष्टियों, अंष्ट-विज्ञानों की देन है।

इसी ज्ञान शोर भय एचार और प्रगति की विठ्ठलमूर्ति मै यहू व वह के व्याप के द्वारा कहानी (कहाना) की व्यापान आशुतोष द्वारा और 'किलान' मै गुरुद्वारे। हमें यह गीरज-विचारों की उपरत ही नहीं गमझो कि आर्यों हमारो भी अपनी कोई विधा रखते हैं, विचार हैं।

कथा और कहानी दोनों पूलाएँ दो विभिन्न वीजल दुर्गांठरों के रूप हैं।

कहानी आशुतोष और अर्थवाचक की इन हैं। गिरहोंत अर्थवाचक राजनीति और अर्थवीर्य शूल की, उन्हें इसने वहने एक 'किलान' की दुनिया बनानी थी। उनकी वह 'किलान' दुनिया हर मूलक मै मही। समय पर इनाद की गयी। जिसे यार्पन दे 'बुजुंगा' कहा है, भवित्व उसी का व्याख्याकार है। वह चृक्षि बार यथार्थवादी था, उसके लक्षण ऐसा है जिसमें अनेक बाधाएँ थीं। सज्जाकलः उम सारी बाधाएँ दो वृत्त द्वारा उगाके लिए जारी हैं। भारतीय वृद्धा उगको सबसे बड़ी बाधा थी। इसके मामौं यह दूएँ कि उसको सारी कोशिश अहु थी कि जो हो रहा है और जो होगा, तो किसी को दोहोरी तैयारी की जांग वाकि नया भवदि हो रहा है, और यह वर्ति हो नका है, दोनों व्याप को न रही हो सुन तके न हो। आन सके। लोगों का व्याप मिहि कायदा और मतोरंजन तक ही सोमित होकर न रह जाय। फायदे और मतोरंजन को इनिया घं कंसा हुआ व्यादवीन स्वरूप कभी आगे बढ़ सकेना है, त कभी पोछें। उसे मिहि दोहोरे रहना होता है। गल निरंतर दोहोरी स्टोरों का व्यार्थ है। वही उगका संमान है। उसके व्यार्थ से परे (परा) नया है। उसके परे है अपनी बापा। बापा जीवन संधार है; कहानों निजों लकड़ी है। जहां कोई जीवन-मूल्य नहीं आने कायदे के मिचा।

कहानी मै अवर्द्धत तर्क होता है।

कहानी मै नवदेश व्यार्थ होता है।

इति एक बोर पारसी चिंहित पर है, विश्वाकर प्रसाद के नाम्य में उनका साथ

के बारे में भी उनका आप धारणा पर वालों, पिछड़े लोगों की भीषण है, जो का बोरन जीत रहे हैं। आरम्भिय रैरिटर्नर्सों के दाया इनका अध्यात्मिक निर्दिष्टियाँ अस्ति गगा आ, माधव जी उनकी पर्याप्तियों, अध-

की गुणभूमि में वह कला के द्वारा पर नक ड्रामा और 'प्रोफेशन' में गुरुद्वारे ही नज़रे कि आनंद दमारों भी

मीठा दूँटयों के लिए हैं।

प्रथा की देन है। जिन्होंने अपनी राजनीति एक 'प्रोफेशन' की दुनिया बनानी पर गहरी ममता पर दिखाई की थी। वही का आचिकार है। वह भूमिका खोर गेव बाधा परी। अभावतः उन सारी थी था। आरम्भिय कला उसकी ममते की सारी नीतिश यह ही कि जो ही दीयार की ताय, ताकि व्या अवधि हो पा को न कही गे तुन मक्के न हो। गान्धीरनन तक ही मौफिल होकर त रह सा द्रुग्या आदमी न स्वपंक्षी आनंदेव द्वाना होना है। यह उल्लंघन दौह ही उसके पश्चात्य से परं पारा क्या है। न है। कहानी निजों चड़ाई है जहाँ

कहानी में हर घटना और चरित्र की बौलिक गारंटी होती है।

कहानी नैपार करन वाले इमको बड़ी खिला रखते हैं कि कोई और सोचते नहीं पाय, कोई और देखते न पाय। वे सबको लिए युद्ध सोचते रहते हैं और सबके लिए वराभर देखते रहते हैं और उन्हें हर बक्स यह गारंटी देते हैं कि आपको न देखते की ज़रूरत है, न शोचने की। इनीर्मान दे सबके लिए अगमी 'फिल्मन' की दुनिया में हर अनेक लोगों के यह कहानी है जात करने में लगे होते हैं। उनकी नदारियों चे हर बक्स उन ने दुनियों और नये तुनगों से आगाह किया जाता है, जिनकी नज़र से लोगों की जान-माल खनीते हैं है, इम कहानी यो गढ़कर वे लोग, जो खुद लोगों के दृश्यम और स्वरूप हैं, उन पर चढ़ो डाल देते हैं।

कहानी में लोन तत्त्व होते हैं। एक भोज 'मैन लाइंड' युगों ओर 'मैन लाइंड' के दृश्यम और लोसरों ओर उन दृश्यमों से 'मैन कार्ड' की रक्षा करने वाला कोई एक होते, नीसांके बदला, फिल्मों की कहानी में आप अक्षर देखते हैं, नयी कहानी जा ये जांचा हालीयुह नहीं है, वा एक्सेड या कास, जर्मीनी यह, इमस। पना जगाना बहुत मुश्किल है। सुंप्रकल और कायिन हीं उनका स्वरूप है।

कहानी का मौजा-मादा लक्ष्य यह है कि जो तांद अथ और राजनीति का मिलकर दीयार करते हैं, उन्हें अपनी कहानी में यह दिखाना पड़ता है कि जो उनके रास्ते में हकाबट ढालेंगे, या जो उन्हें लक्ष्य-प्राप्ति में बाधा देंगे, उन्हें ये हानी ही आकर्षणीय तो यिला सकते हैं और बदला कर मकते हैं जैसा कि उनकी हर कहानी में होता है। कहानी का सिरक एक ही गो सारी आधारी का फिल्म दृश्यमन को छपन कर देता है। मारे लोग उम होंगे का वासि सिरक बेकरे रहते हैं। मतलब लोग मिर्क भूक बर्णन करते हैं।

कहानी भीड़ के लिए, जिसे 'मास मोरादी' कहते हैं, उनके लिए बनायी जाती है। कहानों में सिरक वह विद्युत होता है कि अच्छा जीवन और बुरा जीवन क्या होता है? अच्छा जीवन भह है जिसमें आदमी यिन धोखे-चाले नपचाप अपना काम करे। घालब माल हीयार करे और जो माल ऐसा करते वाली नस्ता और 'मास मोरादी' के कान्दे-नानून हैं, उनका लप्ताना जानत गरे। और ही में अपने घर म रहे। मज के भागे, चूपनाप भेटियो गुने, ऐसी विजन देखे और मुबद्दल मात बेजे काग ए गही, धधे पर निकल जायें। आप को सन-आठ बजे मीठे जनी पर में तीक आयें। जो जग भी इस रास्ते के लिलाक नहीं, वही बुद्ध अद्वीती है। जो अद्वीती काम करते-करते दूसरे में बने करता है, जोगों ये पिलास-नुलना है और इधर-उधर की बने गुनता और खला है वह बुद्ध अद्वीती है। और सबमें बुद्ध अद्वीती थह है, जो जागों में बैठकर लोगों को कोई कला कहाना-मृलना है।

इनमें बुद्ध और यज्ञरात्रक आवर्ती रहते हैं जो लोगों को आग चाप द्वारा अर्थी भो धया गुनाम है। वाप-दादाओं की कथा 'फिल्मन' वालों के लिए इत्तिए बनानाक

अधिकारी हैं। तो अपनी काम पर काम करता है। अपना प्रबन्ध इसी दृष्टि से करता है। यहाँ वेदवाच मेहराज और महादूरी है। अऽग्राम के नाम पर केवल 'हार्षी' है। तिनी भनोरंजन, एकांकी का एकाकी क्षेत्र।

'कहानी' का न कोई आदि है न अंत है। इसमें कोई चरित्र भी नहीं है, हीरो-हीरोइन की बात तो दीवार है।

वस्ता जगत, कथा की दृष्टि इस पश्चिमी कहानी अभिनव और विश्वार से मर्वधा भिन्न है। कथा में मध्याव है। कहानों में व्यक्ति है, 'डिडिनियन' मनुष्य नहीं, तभी कहानी की 'अपील' व्यावहारिक है। इसके विवरोत्त कथा का प्रभाव, कथा का रिस्ता सामाजिक है। कहानी में आतंक है। कथा गी लीखता, लीखता लाच। कहानी स्वार्थी जड़ाड़ है, गिरमें व्याख, अन्याय, उचित, अनुचित का विनाश नहीं है। वस्ता सामाजिक व्याख, विवेक प्रतिष्ठा का व्यवधारणा है। कथा अन्याय, अनोत्ति, अन्याचार के चिकाप, लड़ा गया मंशाम है, लाकि व्याप, नीति, आचरण, की पुर्वतिष्ठा है।

अपनी कथा में मनुष्य के ताकने दो चेतों एक के बरण का प्रयत्न गदा रहता है। एकी को विवेष के गामी भंकल्प कहा गया है। एक और ब्रेकर है, तुमनों ओर अंशयस। मुख्य को दिये द्वारा जीवन में अनंत्र प्रेजोन्ट है। उन्हीं बलोभनों में योग्य हुआ कहानी का 'व्यावेत' व्येनल प्रेयम के बरण के लिए विषय है, जैसे अधिवेष, मैवेषेष आदि। परं कथा का मनुष्य गविकेता, अर्जुन, जैसे जिजासु, विवेकशील पात्र अपरा और प्रेयस का विवेक विचारपूर्वकः कर दो में एक। अंशयस को चूकता है। अंशयम में आदर्श पात्र के (नायक) दीनों गुण और जाते हैं, श्रीगता और नीतिता।

अगर नारक में कथा के बाद पात्र दुर्गता नहीं है। पाप नारक में है, नारद्य-रास्त में बह गायक (नेता) है, मतलब जी आगे नहिवली पात्र में भाव की रस (विभवास) नक ले जाने में अवश्य योगफल हो ही है, साथ ही वह राबको नहा ही जाने में तेजुल्व कर रहे। अधोन् ग्राम में विचार दृष्टि में जानारदन है, लोकन में, गुजर में कला भूमि पर वही पात्र है।

वस्ता (छड़ा) के निर्दर्श में पात्र विश्वाया है; पर दर्शक के निर्दर्श में अर्थात् अभिनवता अधिनवत के निर्दर्श में पात्र धन्वा है और दर्शक विश्वाम है। इसके नीचे अपनी कला दृष्टि राखत है। बाहर में देखने में अत्यधि भगवता है कि नारदकार, अभिनवता और दर्शक। अथवा कथा पात्र और व्याहक, मनलव मूलिकार, मिट्टी और नीति को देखने जाना दर्शक में हीरों अन्यग्रन्थज्ञ है, जैसिं गुरुजन और भीवर्य स्वार पर, नमर्जन लक्षण को और गतिशील होने के स्तर पर सदर्शकावत्ता और

धर्म तो नहीं है। पात्र का कला पाप होता है। कानूनिक दृष्टि वही भाव जैसा पात्र नहीं होता।

वस्ता का उनवे जो जल भगवता है वही प्रमाण और वही संरक्षण।

मारम की दृष्टि परना शुल कर
कराया है। यहाँ जो वल गेहूंतल
है, उसी मनोरचना, एकम का
कोई चिन्ह भी नहीं है, हीरो-

ते और यिगार से गवेष। इन
'दिव्यधन' मन्त्रों नहीं, लभो
गीत कथा का। प्रभाव, कथा का
उत्ता, गीर्वाच। रहानी स्वर्थ
विद्या का विचार नहीं है। कथा
है। कथा अव्याय अनीति,
प्र. तोनि, आचरण, की तुन-

के बहुगत त्याग तदात्मा
एक ओर प्रेम है, दुर्गां ओर
न है; उन्हीं प्रलोभने में कथा
जिए विद्या है, जैसे ओडिया,
हैन, जैंग ऊजाग, विकासीत
में एक ऐयम की नुसना है।
तो है धोरता और योरना।
है। पात्र नाटक में, नाट्य-
रित्यर्थी पात्र में भाव की रस
प्रथ ही यह अवश्यक यहाँ से जाने
के जी नायक है, जीवन में,

गर दण्ड के भवयमें अर्थात्
क्षेत्र विश्वास है। उनके पीछे
क्षेत्र जाता है कि नाटककर,
नवलव उगिकर, निर्दी और
है, ऐन्जिन दुनन और भोदय
के लिए तर सबम एकता और

अखंडता है। अनेकांश में एकना, भागात्म प्रवानात्म का स्वीकृत और अनुसव, यही
तो आगामी कला और जीवन का वर्षमनक्षय है और यही पुरुषार्थ है, दीनों भूरों पर।
इन पर काफी विचार किया है आनंद कुरार स्वामी ने। अर्थात् "कला में अन्यथा-
करण अलंक आवश्यक है। अन्यथा करण और कुक तहीं है, एवं डिव्येसिंप है, एक
इसनों दूरी से देखना है जहाँ गे संपूर्णता दीखनी हो, केवल एक गध, एवं प्राकाशन
या प्राप्ति न दिखना हो। जहाँ में वर्त्येन्द्रिय-नला दिखती हो, यहाँ से देखना अन्यथा-
करण है। आप, बहुत वे तहीं देखा जा रहा है, जो जो बन्धु दिग्गजी हैं, जिनके में
दिखती है, वह ठीक नहीं है, वह विश्व ते अराकून है, उगका अव्यायाकरण कराता
जाहिए। अव्यायाकरण में जिसे गुरुवटका सोचो वाले, देखनेवाले या तत्त्व
कहने हैं वह नहीं है, विकल वस्तु के प्रकाशित स्वामान वा तत्त्व है। वस्तु जैसी
यथाभूत है, उस प्रथाभूत जो दूरी तरह आन्मताग करने के लिए, एक डिव्येसिंग,
एक अन्यथाकरण आवश्यक है।"

अपनी इस नव-दौरान से एवं इस कालिदास के अभिनवताव, 'अमिकान-
ग्राम-प्रसादम्' के नव-वाच शकुना को रापकर, प्रस्तुत करने जल्दी भूमि उगकं क्षण
परिव अर्थात् उसके मनुषीयकरण से आगे जागा होगा। क्षेत्रीक नाटक शकुनला एक
सुदूर रक्षी भाव नहीं है, वह एक नवी पात्र है। उस पात्र गे जो आधग भूमि का
विशेष वृत्त है, जो लंगल की शूप है, जो दृष्टिवत्त-वृक्ष, वानु की गिरावच है, हिरन
कावकों का जो विश्व है, जननी विद्योह है, प्रकृति का जो जीवन रम है, वह उस
पात्र की उमर्गुनि में अपील है। इसने भी गहरे उस पात्र में जो बीजन रम है,
आजीव शकुन है, उसे भी नो व्यक्त होना है। नाट्य कला की शकुनला पात्र नभी
हो एक अविमरणीय रखना है।

धर्म वी तरह करा और पात्र एक आपवर्योगान पदार्थ है। खासरुर भरने पहाँ जो
पात्र वी कल्पना आगुंव है। भूमि आधार संतात है कि जिम विगेवाः में कोई गदार्थ
पात्र होता है, वह उगका दृष्य चरित्या प्रव्यक्ष गृण या सामर्थ्य नहीं होगी।
क्षेत्रीक दृष्य विषेषता व। वर्णन इत्यक्ष पर आधित होता है। नाटक जिए, नौरुदं
दृष्टि की श्रीवज्यका नहीं होती। जैसे प्राकृत पदार्थ धर्म नहीं, उसी तरह प्राकृत
जन पात्र नहीं।

पात्र का नायककल्प जिसकी निष्ठृत नर्ता नाट्य आंद गंधों में है,
उनमें जो लक्षण और प्रवृत्ति दिये गए हैं, उनके परवत और गोरक्षोद्धरण से वह
लगता है कि वे पात्र के प्रति आध्यात्मक प्रस्तुत करते हैं। नायक के बातें सर्वोपरि
प्रमाण और जलाण देते हुए, भी पात्र विवरण पर नाटक निर्देश नहीं दे सके। नाटक
को गंरवना में पात्र निर्माण की नालामक कुम्हस्या ये रो रैम जूझा ॥। सकता है,

नाट्यज्ञान के नायक मंबंधो प्रमाण और लक्षण समाधान प्रस्तुत नहीं करते। वे या निश्चात हैं, उसके लिए हर कृति नाट्यकार के अंतर्विक का आन्म-निर्देश हो। एक मात्र आधार है। यह वर्तमान परिवर्तनशील रंग समन्वय और उसकी अपरिभावित नाट्य स्थितियों में अधिक रूपान्वता या लागू होती है।

पाप को अभिनय और अभिनेता के प्रताग में देखता, जानता महत्वपूर्ण है।

भारतीय अभिनेता जो किसी ऐसी भूमिका कर रहा है, वह उस पात्र के भीतर उसके निरित्र को देख रहा है। इस तरह भारतीय नाट्य में एक सार्थक योग्य को ओट गोता है, व्यवहार 'जो है' (पाप) से 'जो होना चाहिए' (निरित्र) तक की यात्रा को पूर्णपार्थ भासा गया है। उभी हमारी इटिंग आदर्शवादी है। इससे और 'जो है' (निरित्र) उसी के भीतर उसके 'मैं' को छोड़ना और नलाशना, वही है परिवाप का दृष्टमा और विवेटर। यही आज का अभिन्न-गोय निर्णयक बृहत्ता है। 'है' यह प्रवृत्तिवादी दर्शन छोड़ता है, हर समय कर्मयता छोड़ता है। जोनना रहना है, बहेन संजना रहना है, यथार्थ स्थितियों का निरूपण करना रहता है कि क्या है? हमारे जहाँ का नाट्य 'है' से 'होना' के साथ को लेकर छड़ा है। योकि जैसी हमारी जीवन-इटिंग है। उहाँ 'होने' की बात आती है, उहाँ सूख्यों की बात आती है। आचार भास्त्र की अनिवार्यता भासी जाती है। 'होने' की यात्रा के साथ 'मुस्त' क्षमा होना है, "यह भी बुढ़ा जाता है। वही है पाप-सुपाप की देखना। और पाना।

'हमारे यहाँ जेतना' और 'संजा' इन दो निदुओं पर प्रेषण के प्रमुख में जैन अंगमों में बहुत विवार किया गया है। दस संजाएं मानो गयी हैं—आहा रंजा, भय संजा, भैयन गंजा, परिष्ठ रंजा, बोध संजा, भैन संजा, अम गंजा, लोभ संजा आदि। चेतना वहाँ संभव है यहाँ और रंजा नहीं है।

दर्जन में जेतना को संजातीत कहा गया है। 'संजाहोन चेतना' का अर्थ बिशुद्ध चेतना, केवल जेतना। अर्थात् देखना। जहाँ जेतना के साथ संजा का उभयंग होता है अर्थात् जो चेतना संजा से व्यापित होती है, वह जेतना, संवेदनाभूक होती है। इनके देखना 'देखना' जहाँ हीला बल्कि देखना, मंजा से रगा हुआ होता है। यजाएं कुछ ऐसी होती हैं जैसे साफ पानी में कुछ सौचड़ि मिल गया हो। चेतना चुल है, उसमें विद्य कीई संजा युङ गयी है तो वह नंदल हो जाय। इसीलिए रूपरे रेखों पर भोजन करता, भैयन, भय, हल्ला आदि संजाएं यजित हैं :

गदे नारी जो साक निया जा रक्फना है, उसके अनेक विशिष्ट-विधिय हैं। प्रलिङ लिता, गंदली जेतना को पिर में बुढ़ा किया जा सकता है, क्योंकि उसको निसेजना की नियामा नहीं जा सकता। संस्कारण या कार्य-कारणशर्त जो कुछ उसमें आ मिलता है, उसमें घूल गया है, जो पिर निकाला जा जरना है, जरन तुन: शुद किया जा रक्फना है, हफ्ता भावनीय नाट्य, संगीत और तृतीय हमारे रम-पन्थ नक्शा, यहाँ एक कि द्रुष्टरे लौकिक कर्मकार, इसी उद्देश्य के प्रति जश्यनिष्ठ हैं।

व्यावहारिक जगत्
इस देशन में जो हूं
जो कुछ जितना दिन
रशूद में मूलम की उ
संकृत नाट्य अद्वा
वृन्दियाँ हैं, इन्हा
चले, देखते चले,
जायेंगे। इन अवन
आरवंद्यकारिता रह

हमारे दहा व
नाटकों, पहाड़ाव
कि कथा, 'पाप, च
रन जे ज्ञन पर्याद
दरअसल उनकी
दण्डक जहुं देखना
जायेंगे। जिस वर
दिन हमने निरन
माझपम बन जायेंगे
है। उसका पान

अब हम यह का
कि गम्भीर अनें
प्राप्त द्वाना अपैर
अभिनय की कला
भूमिका करना च
है। वह मदा हृ
कर रहा है। वह
प्राप्तचम वा अपैर
वह देखते जौ ज
मानना नहीं हो
काम है। इसीले
पहले इसी का गु
वहा मन छहा ग

द्युम तमाध्रान प्रश्नत रहीं करते। मेरा के अंतर्विवेक का व्याप्ति-निर्देश ही एक जो समाज और उसके अपरिभासित होती है।

या ने देखा, आजना गहत्वगृह्ण है।
भूमिका कर रहा है वह उस प्रवाह वाह गायत्री नाद्य ने दृष्टि सार्थक (१) में 'जो होता च विहार' (भरिय) एक आमारी दृष्टि आदर्शवाची है। इसमें को हृष्टा और नलाण्डा, यही है आभासी निर्देश कुहना है। 'हे' कर्मसन कुहना है। बंलना रहना है, निष्पण करता रहा है कि क्या है उनके लिए रहना है। लोक जैसी हमारी है, यही भूमिका की बात आती है। 'होमे' की बात के साथ 'मुखे' क्या है दृष्टि की दृष्टि और गाया। विद्वाँ गर ग्रेया के प्रसंग में जैन ग्राहण मार्गी हैं - आद्य ग्रजा, मान ग्रजा, भूम ग्रजा, लाभ ग्रजा ही है।

। संज्ञातीत नेतृत्वा का लक्ष्य विद्वन्नता के साथ ग्रंजा न; द्वितीय होना। वह नेतृत्वा ग्रेया अधिक होती है। ग्रंजा में रुग्ण दुखा होना है। ग्रजा अड़ भिज गए हो। जैनता गृह है, ही रुग्ण। इसीलिए द्वारा रुग्णिट पर्वत है।
उके अनेक विधि-विधन है। मूलिन सकता है, स्वांकि उपर्युक्त निर्मला-प्रकाय-बालग्राम, जो कुछ उसमें आ जा सकता है, उसे प्राप्त कर दिया और नृथ द्वारा रुग्ण के अन्त अधिकारित है।

व्यावहारिक जगत में हम जो प्राप्त देखते हैं वह उसके मूल रूप को हो देखते हैं। इस देखने में जो हमारी शूल दृष्टि होती है, वह इस बात को भुजवा देनी है कि जो कुछ जितना दिव्य रहा है वह उतना ही नहीं है, उसके भोग भी बहुत कुछ है। मूल में सूक्ष्म की आर जाना, शूल में सूक्ष्म को देखना, यही है भाग्यी नाद्य। संस्कृत नाद्य अवबा भाग्यी कलाओं में जो इनका गिरिषेषण है, इतनी पुत्ररुचिनियाँ हैं, इतना जितार है, उसका रहस्य यही है कि आप देखते चले, देखते चले, देखते रहें। एक क्षण प्रेमा आवेगा कि आप गहराई में उत्तर जायेंगे। इस लक्षणरूप में इन्हें नमेनमे पर्याय उस वल्लु के नामने आयेंगे कि आप अच्छेद्वाकृत रह जायेंगे।

हमारे यहाँ स्वीकुर्ती पुरानी कलाओं, पौराणिक प्रती, नौकरायाओं को नाटकों, बहाकालीनों की आधारत्तु बनाया जाता है। इसके पीछे यूज कारण यही है कि क्या, प्राप्त, अदिति, रथ, यागिनी, मूर्त्ति आदि के एक बार के दर्शन से वे अनेक गर्विय हमारे मामणे प्रकट होते ही सकते। इन्हें वर्त-वार देखना, मूर्त्तना, दरबमल उनकी गहराई और सूक्ष्मता में जाने का तिमंत्रण है। जैसे-जैसे कोई दर्जक उन्हें देखता चला जायेगा, वे उनका पर्याय एक-एक बार उद्घाटित होते चले जायेंगे। जिस दस्तू को हम इन्होंने बार देखते और सुनते चले आ रहे हैं, वह वित्ती दिन हमारे जिए गया आवत्ता कुछ और ही जायेगा। अब उत्त वह सन्ध्य के उद्घाटन का मालय बन जायेगा। इस अर्थ में क्या और पाप को देखना केवल देखना ही नहीं है। उसका अब पारिणाम भी है।

अब हम प्राप्त की दृष्टि (पाद्मर) के प्रसंग में देखें। नमोनेना निका रूप में देखना वा भासने आगों से बाहर आना। देखना मामने जो दृष्टि है उसकी गति में गतिशील होता और उस पुरी प्रशिल्य के प्रति गाजन हो जाना। हमारे पद्मों द्विम अभिनय की कल्पना है, उसका आधार यही देखना और दिखाना है। दुष्कर की भूमिका करने वाला अभिनेता ऐसा कभी आभास नहीं देता। कि वह स्वयं दुष्कर है। वह मदा दूर धारण ही द्वितीय देखना कि वह अभिनेता है और दुष्कर का अभिनय कर रहा है। अपर अभिनेता दृश्य दुर्घात ही जाने का इस पैदा कर दे, जैसा कि परिचय सा अभिनय सिद्धांत है, तो दर्शक संशय और सम वा शिकार ही जायेगा। जह देखो जो जगह सोचाया, वह कभी देख नहीं सकता, और जो देखना उसका सोचना लगता ही जायेगा। सोचना मत का काम है। देखना एकाद्वयांग संगुर्ण मनुष्य का काम है। इसीलिए हमारे यहाँ नाद्य, तंगीय, मूर्त्ति, रुपासन्ध, सुर्यो कलाओं में पहले इस का दुर्ग प्रदान है कि दर्शक वा नन बढ़े। यह कोहमारे यहाँ पल कहा गया है, तभी बार-बार यह कहा गया है कि जो जिम्मेल नहीं है वह

राफता है तो

गान्धी

साधगं जो इस

अलग-अलग चै

का अवलोकन

अंगहर और

शरीर, स

सोये हुए गति

जिसे ना

'कदर अबतर

भारतीय ने'

व्याख्यानिक

है, वामपाद

हांडे / गी

आनं श्रांते

रहना। इस

जाना। ३४

लग लिए। म

अपनी

है। पुरा ना

न गहर-ग

करना। जब

चंचल। ३५

चनन करें।

आ . वारि

लग दी क

मैन की ए

दली। नम

राय और

स्व अधिक

के बुद्धि, अ

में

दर्शक नहीं हो सकता।

जैन और वौद्ध गाथना पढ़ति में प्रेता को ध्यान की संवेदा की गयी है। ध्यान वही सभव है जहाँ मन पर विजय प्राप्त कर लिया गया है। 'मन के जीत जीत' यह कितना प्रोसेस और गहरा सुदृश्य है। सत्यन नाद्य और नोका नाद्य प्रस्तुति-करणे और प्रदर्शनों में जो इनना पूर्व रंग, पूजा, पाठ का विधान है, वह दरअसाल मन को काटकर उससे दरे जान की विशा में एक सार्वक किया है, व्याख्यात में दर्शक हो जाना।

देखने (दर्शन) में जो शक्ति है वह विचार में नहीं है। विचार की पहुँच बहुत मीमित है। विचार को इसी सीमा को तोड़ने के लिए हमारे यहाँ देखने (दर्शन) पर इतना अधिक बल है। हमारे विचारों का प्रवाह बहुत ही इसी देखने माध्यम द्वारा नहीं वा कहाँ भी नहीं है, विचार जो उन्नत मनुष्य है वह विचारों के प्रवाह को रोकने के लिए कोई महार अनुभव तथा गहरी अनुभूतियों को बान करने का प्रयत्न करते हैं।

उद्य: हम नीद यह प्रणत करेंगे कि क्या देखें और क्यों देखें, अस प्रन्तु विकल्प को कैसे देखें यह अगर देखना इन्होंने कितन है तो कैसे रखें ?

जो वात सामने आये खमे देखो। यहाँ देखता है यहा यह प्रश्न ही नहीं उक्त मनुष्यांक किमकों देखता है, दूसरे किमकों नहीं देखता है। हम सदृश्म में हम सबमें पहले अकार का देखते हैं, दूसरे को देखते हैं, एवं ये ने देखते हैं। यह हम देखते नहीं अलिंग प्रागुपनिक हम से हमारी देखने वालों द्विय, अर्थ्य, रूपयं तरों देखते लगती है। इसमें देखने वाला (दर्शक) अनुस्मित रहता है। कोई देखने वाला देखने इसके लिए उपरांत करना स्वप्न वाला करना अनिवार्य बान है। इस रूपों की बुनियाद यह है कि ये वे ही जो देखने वाला उभी दर्शक हो सकता है अथ वह अगलों विद्वा, शुद्धों (पूर्व संस्कार) के प्रति एक सम्मान हो।

हर पात्र, रंग दृश्य के दो रूप होते हैं, दाढ़ी और धीरारी। देखना संसूप्त वृत्त से लग किया कर की देखना है, इस मन्त्रात्मा के आश के रूप में छिनका होता है व्याख्यातिक उसके भूल-भूल रह है। जहाँ रूप होता है, वहाँ छिनका होता होता है। इस छिनके बीच में दूसरा रूप को भी दर्शन, यहाँ है पात्र वा, रंग का विद्वान् होता। यहाँ है व्याख्यात्मक अभिनव :

हमारे नाद्य ने, विशेषाकर अभिनव प्रक्ष में व्याख्यात्मक अभिनव ५८, अबांग हमारे शरीर पर कर्ता इतना अधिक बन है? इसीलिए कि पात्र म वह प्रदर्श दृश्यतान है। इतने विश्व गहरा व्याख्या बन है कि हमारा शरीर अभिनवों के अभिनविका का चाबने शिलजाली का माध्यम है। कला वी दृष्टि से शरीर लियना सारभूत है, उतनव सारभूत हमारे लिए कोई दृश्य व्याख्या नहीं है। इनी व्यूणों ने ते वर्गतु और बृह गहरों ह। सोदरों की, ईश्वर की जो किसी भी जानित की अभिनविका लांडे कर

अथवा की शब्दों में यही है। इसाग
ता याहा है : 'पन के जीते जीत' यह
नाट्य और नौक नाट्य प्रनुभिः
शब्द का विधान है, यह दरखास्त
मार्गक चिया है, अस्ति में शब्दक

ही नहीं है। विचार को पहुँच बढ़ान
निए हमारे यहाँ देखते (दशंस)।
यहाँ वंद ही देखते इन्द्रिय साधन
ननुष्य है नह विचार के पवार को
वन्मुभिनों को प्राप्त करते ही।

ओर क्यों देखें, उग प्रमुखिकरण
की देखें क्यों ?
ता ही वहाँ यह अस्ति नहीं उठ
सकता है। इस मंदर्भ में हन सद्ये
दर्शन की देखते हैं। यह हम देखते
अद्वितीय, आंध्र, स्वर्ण रंग दंखिते
हैं यहाँ है। कोई देखने पालन
जीवितादेश नहीं है। इस गते की
तभी देखते ही सकता है जब वह
नहीं है।

नी और अंतादी। देखना संगृण
के साथ कल में फिलका हुआ
वह छिनता होता ही है। इस
का, ऐ का देखने होता। यही

किं अभिनव पर, अथोरुहमारे
पाथ में वह पर्याप्त दृश्यता है।
जैकियों जो अभिविक्ति का
रीत जीता साधु है, उतना
अजीनीं संगृण नुवूँ वर्ष अंतरुकुल
नित जी अभिनवित कोई कर-

मकता ही जो यह शारीर ही कर सकता है।

पाथ के मंदर्भ में अभिनव वा अथ है, उभके वर्ग को जाओगा। वह
जाओगा जो इस विश्वास पर खड़ो है कि गरोन के अंग-प्रत्येक और उपग्राम में अपने
वासन-प्रलग जीताये कोई हैं। इन जीतों में अभिनव द्वारा विकाश प्रवाद और शक्तियों
वा अवतरण होता है। भारतीय अभिनव इन्हों तृत्यवत् गतियों, मुद्राओं, वर्ण,
प्रणाली और रचने ते भरा है, इगके पीछे गरोन याधना का ही अर्थ है।

गरोन माधव अपवा आंगिक अभिसय का अर्थ है पाठ अभिनव के लिए अपने
सोंप हैं शक्ति कोटीं जो जगता, सक्ति बनाता जीए उन्हें गरीबीत करता।

अगले नाड़व में जो इतना रुक्कलव पर बल है, पाठ के अभिनव में जो इस
'कदर अवतरण' का इतना बहुत्तर है, उसके पांच अवतार का ही राकेत है। सद्य
भारतीय जैत्य इसी एक और इतना बहुत्तर है कि अपने भाग में बाहर तिकलो।
व्यावहारिक स्वप्न अपने आगे बाहर है कि कैसे निकला जा सकता है ? एक ही उपाय
है, बाताविष्वाम। उदाहरण के लिए बीज में मैं बीज बाहर कैसे निकलता है ?
जार्हिर ही पौधों के लघु में निकास करके। विकास के तात्पर्य गति का गहरा नोट है।
अपने आप से बाहर निकलना (अवतरण) आम-प्रिकाम नहीं, हर क्षण अद्विमान
रहता। इन जीतों रिवतियों की एकाभ्यक्ति स्थिति वा नाम है, स्वप्न में पांचाल ही
नाम। स्वप्न मायन तो दृश्य है, स्वप्न मायन जो अदृश्य भी है। स्वप्न नदेशने जो हर
अण विकासन और अंतिमान है।

अगले स्पष्ट-व में सदर्शन मंधान ल्याप्तर के साथ मीन अद्याधिक शहनवशुर्ण
है। धूरा स्वप्न गतों प्रकट होता। जब भाषा का व्यापार करा होता। ऐसा हमारे पुरुषों
में नरह-नरह में करा है। भाषा का, शब्द का पहला कदम है नवलना उत्तल
करना। जब सपने होते हैं; तभी यन्हें अर्थात् दृश्य गैदा होते हैं। बोलने से पहले
चंचलता, और बोलने के बाद चंचलता। गोलने का अथ है, पहले आगत आपको
नवल करा, फिर बोलो। इस रहस्य में ज्ञानीय अभिनवा पूरी तरह परिचिन
हो। वार्तिक अभिनव से पूर्वे का अभिनव और वाद का अभिनव उग्री यन्हें को
हो देता है। सार्थक वर्णन है।

मीन वा एक और भी राकेत है, अनिर्वचनीयता, भूलब है कि स्वप्न को, दृश्य को,
देखो, उसकी अंतर्बंधीयता में उतरो, बोलो नहीं। कोन रहता अपने भूक अभिनव,
स्वप्न और गोदांकी की गुरुता का राशनत और इबल नाभन है ; पाठ का वादतयिक
स्वप्न अर्थात् दृश्य पौरुष है। मीन ही स्वप्न है। 'उनरगामनरिदा' की संगता, नामनाथ
के बूद्ध, अजना के पद्मसारण, तस्वीर पात्रां के मीन स्वप्न हैं।

ऐसे पाप और तेरो रव की देखना बिना ज्ञान के संभव नहीं है। देखना मायने

होने आप जहां
ते जिसे

संदर्भ
1.
2.
3.
4.
5.
6.
7.

जीता। यहां आये देखना ; देखना। आये जानना। देखना और जानना दोनों समानांतर है। विना जाने हम देख नहीं सकते, बिना देखे हम जान नहीं सकते। नाटक 'देखने' का अर्थ ऐसा 'जानना' यह है कि विना जाने हम 'स्त्र' से 'ल्पण-शिर' नहीं हो सकते। यह मेरे स्पष्टात्मित होता, अपने आप से बाहर निकलता, यही ही रूपानाशक दीता। देखने और जानने के अलाएँ हमारे पास कोई दूभरा उपाग नहीं है कि हम बदल आप, स्पष्टात्मित हो जायें।

नाटक में कथा, पात्र के प्रस्तुतिकरण का पक्ष अधिक्षिण है। प्रस्तुतिर के गवायें हैं कि किसी पात्र का बार-बार दर्शन। हम एक वादेय को 'जितना' बार-बार देखें, उतना ही उपर्युक्त हो जाएगा। 'जानना' कोई जह तथ्य नहीं है कि एक बार जान लिया, वह जान लिया। जानना एक चक्र। जीवन प्रक्रिया है जियाका अभ्यास करते रहता आनन्दक्रम है।

अतिकल 'देख नहीं हैं कि क्या उसी कदा और पात्र की बार-बार देखना? देखने का दोहराता भावते हैं। दोहराता ही उन्होंने नबद्ध बढ़ी जड़ है। पर वे लोग यह नहीं जानते कि हम एवर्य को दोहराते जा रहे हैं। हम स्त्री को देखने वाले भी हैं और हम स्त्री को देखने वे यात्रा भी रहे हैं। हमारे नाटक में सूनि, चारसना, रामायण कला, मंडोद, नृत्य वे भी हताएँ दोहराया जाता है, उसका यहीं याथेक संनेह है कि स्वयं अपने पात्र को देता। देखकर जो आनन्द होता है, वह है विश्वास।

एम न बान्मीकि से पूछा कि मैं कहां रहूँ तो बाल्मीकि ने हमारकहा-- कोई जगह
मेरा बीं नहीं जहा तुम नहीं हो। किर भी तुम युझे कहनाता चाहते हों तो मैं
कहूँगा-- "मिनके थथण मधुद गमाना, कक्षा तुम्हारी गुम्हा मार जाना। भर्तुहि
तिर। रांदि न पूरे, मिनके दिव तुम्हार एव लौर।" कहो तो बहुत-सी जगह, बहुत
में बिन्द है, तो नृत्यगम तुम्हें विन्द है भव-विन्द, स्वयं भगेसे की जगह है णव्द में
गम्भी कथा। जिनके बात में गम्भीर तुम्हारी कक्षा की अमर्य सरियाएँ आये और
गम्भीर हैं भवुद न पूरा हो। गम्भ आहे कि नया गर्भाना कोई और आये, एक कथा
कोई और दोन न हो जाय, एक लक्षी लोडा और दूटिन ही लाय, नाम का एक नया
चरित्र और उभीजिह ही जाय, नाम के प्रेम का एक नया रवस्तुप और अवतरित ही जाय "भर्तुहि तिरार लोहि न पूरे"। ऐसे आदर्शी ने हृदय में तुम्हारा तिवाम हो,
जहा तुम्हें भुनने के लिए, तुम्हारी कक्षा के लिए, तुम्हारी प्रक्रिया के लिए

देवता और जागतः दोनों हम दाने की तकते। निर्देश न हम 'लग' में 'क्षणंतरित' से बाहर निकलना, यही है राम काँड़े दुसरा। इस

है। प्रशुति के बाबने है कि तरीः भार देविगे, जाता हो तही है। एक भार जनना होता है बिसका अन्याम भरते

यार-बार देवता निखने करते, पर वे लोग यह चहों से देखने जाते भी हैं और सुनि उत्तमना, अपनी जगह पहों सार्थक मरते हैं कि है तिथ्याम् ।

हंसरकवहा कोई जगह
हंसान् आजने हाथी मे
रुम् लांच जाना। भरहि
तो बहु-र्ता जगह, बहुत
अनेमं ने जगह है जट रं
भिन्य बिनारं आये और
बीई और बाई, एक कथा
जाय, राम का एक नया
उत्तर और अवतरित हो
ने तुम्हारा भिन्नात हो,
पर्किण वे लग में परित

होने के लिए, तुम्हारे अस्ति के भाव के लग ने भागान्तरि। होने के लिए निरंतर अवधारा रहे, अत्यन्त लालरा बनी रहे, वहीं तुम्हारा दर ऐ जहा। अंदोष हो गया, जहां तृतीय हो गया, वहां तुम्हारा तियारा तही है।

इसी रूप में न्यूनमोदाम न आगे चढ़ा है। 'अम कथा चंगुलत अगाही, रत विशेष ते अना नाही।' कथा में जो अद्वानत्व है, यही है नमाम रस विशेष। इस रूप विशेष से स्त्री या दर्शक रहे जो वास्तुभूत होती है वही है विज्ञान।

संदर्भ

1. भजवाना विज्ञप्ति—गीता, १४३
2. भजा 'विसर्वन'—नारद ग्रन्थ (गीता)
3. गीता, शो. वर्षे इन भास्त्रनीय वर्णन के दूसरे लाइ त्रिवर्षी
4. शोभा, विग्रह, पर्वीनामीमन वर्णन में नारद वी कहाँची
5. वज्र वराम्, प्रथम इतिहास, पृ. ४
6. भास्त्रोग कला दृष्टि त्रिवर्षीमासो वर्ण भास्त्र-निरूप, पृष्ठ ५३
7. गणितगण कालांगी शिष्याद्य में अब ये जात दर इतिहास न। यहां दृष्टि है तब से, भास्त्र वर्षों में नेत्र दृष्टिको लिया, यादि तेज, योग होना, स्त्रीमानवत्वी तक लिये प्रस्तुतिकरण करता पर यद्यपि क बल 'विद्या विद्या है' जनां दर्शन '॥। यादि, योग-विद्या विद्यम् ये पत्रपूर्ण करने पर दी जाता जाता है। इसके बारे दिव्यनि पर जिन तीन नारदानी वर्णित, विज्ञान दृष्टिको, गीता, शुक्र ने वर्तमान एवं में जन दिया है। इन नारों ने जारी विद्यानि के अग्र वीर्यादा किया है।

त्वारक
उमा
५
भाव
उत्तरा
अपने
कथा है
याग
के अ

ली

का १
नगर
स्थान
प्रवास
विनियोग
नियोग

उद्योग
प्राप्ति
लाभ
प्राप्ति
माला

माला
गणेश
देवता
ब्रह्म
मनि
नम
प्राप्ति

५

अधिनय

द्रुमा ने 'एक' है जब नहीं, नभी अक नहीं। भाव नहीं, नभी पात्र नहीं, चरित्र। चारों माने कांफकरो। चरित्र है नभी द्रुमा एक^{३६} में सुनियोजित है। उत्तर: एक से ही 'एकत्र' होता है। स्वमानः जो 'एकत्र' करने जाता होता है - वही 'एकत्र' है। पर टीक इसके बिपरीत भावनीय स्वप्न, न ठक में अंक है। अंक में पात्र है। पात्र में भाव है, मो पाय अंक में है। अंक में संभाल कर अभिनवता (एकत्र नहीं) कुछ ऐ जा रहा है, जोते हुए दर्शकों को भी वह अपने यात्रे जा रहा है। यह विस्तो विशेष दिशा, लक्ष्य और कल प्राप्ति को छोड़ने जा रहा है। नभी जो जह है अभिनवता।

गद्यन में अभिनवता शब्द में अभि उपसर्ग है, जिसका अर्थ है— किसी विशेष दिशा को छोड़, नह कर सतलब है— ले जला, अर्थात् जो शपना कला से दर्शकों का, जाटक और स्वयं का किसी विशेष दिशा में ले जाय, उग कला का नाम अभिनवता है। और उस कला का रंगाकार अभिनवता है।

लाइंग उत्तर दृष्टि-अनुग्रह एक्षम का इच्छा 'एकत्र' में अन्य हुआ है। हर वक्तन काम, किसी व्यापार, अपने कार्यों से यह वही और अर्द्ध जीवन का मारा कुछ प्राप्त करेंगा और जन नेना जाहा है। उसकी 'जित' कल-प्राप्ति नहीं है, कठोरिक उत्तर। अपम्य जिरधास बल्कि अहंकार है कि कल तो उम प्राप्त होकर ही रहेगा। इसलिए उसके कार्योंके पीछे अमलों प्रेरणा यह है या हर चाँचके विनाय में, नाहे वह संवेश हो या अस्तित्व प्रभाव हो, काई खोल हो, चाहे कोई विसो तरह की लदाई हो। हन सबके बारे में यह अपने उद्यगों द्वारा तारा जान यही, अभी इसी उत्तर चहे बीमे प्राप्त कर लेना चाहा है। न उस अदृश उत्तर विश्वास है, न उसे दिखाना न रह क्या कर्त्त्व संकीर्त है। जह देख कुछ अपने उसी अदृश में ही देख और जन नेना चाहता है। इसीलिए द्रुमा के एकत्र में और स्वयं द्रुमा के अस्तीनों में इतना अधिक कार्य-व्यापार भरा पड़ा है। यह स्वयन करने भी करता है लो। प्राप्त

स्वाक्षर कुग तहीं बल्कि उमका, 'भोचना' और 'काया' तथा 'कहना' यह सब मुख उत्तर क्र। १५ किये ॥ २६ काय-लापारों के पोनर हीं होता है ।

यह दूर के लक्षण-गदक-पात्र-ओभिनन्दा वो मुख्य निःश यह है कि भाव कहाँ है? 'भाव' यह कौश भोगा, अविश्वाय यह है कि अभिनन्दा और दूसरे दोनों एक ही अन्माह में हैं जिस रूप होता है । रात्र के आटे में एक विचित्र भाव यह है 'कहर कोई अपने जोनाम में रूप भावना है । भावता हसीलिंग है किंगी को एतद नहीं है कि रूप कपाह है, और कहाँ है, नमी तत्र अभ-प्राप्ति के प्रथल में जोग द्वारा है । तामी की रूप की व्याप्ति है, गमी रूप के लाभ में चंचन है । इमका कारण यह है कि 'वाग्तीय वित्त ये अनुमार रूप हीं सार है, रूप हीं सार है ।

भाव, चिन और इस तक की जी यात्रा विविधा है, वही आंखनय की आत्मा और रत्नरूप है ।

"अवगत गम्भीर एवं परिविवितियों में संचित, अवगति संस्कारों वथा वायनाओं का आशाद ही न तत है । यह चित एक गहान हृदय के सदृश रात्रि-वक, राजग तथा दामन गुरुकारों एवं राजसनामों की तदनुरूप वृत्तिश्वरों डैपियों से आदोलन होता रहता है । चित के विविध वृत्ति-आपार या अनुसंधान नान्दन्य की वस्त्रवस्त्र से प्रतीकी का विषय बनाने के लिए मन के सज्जर दो गयाँ हैं । यित यह का जनका है । विषय की भूमिका यह मन का लोटा-कर्तुक तरीन द्वारा है । चिन-कार में भरे हुए विविध नामना-बीज ही विभावत मन की गणि प्रदान करते हैं ।

मन का रम्पुण गविन्दीजगा थे, दो एवं है । एक में 'अ' गे लेहर 'ह' तक सदृश द्विलोक्ल मुक यानि काये करते हैं, दूगाँी और हपायमक ॥ १६ विष्व-कार विचित्र्य-ग्राहक ॥ वर्ण ॥ आव-कल्य या आभासनशील ॥ दोनों ये ही विश्वान रहनी हैं । वर्ण २५ यह दिशात्व वर्णन-सम्बन्धी लिए हिष्पत्र आवरण है, जिनके छाता-सोदरों पर मुख द्वारा तृष्णा, कृप तो साज के गहान उद्देश्य की भूमिकर उमी से उलझा रहता है ।

मन की प्रथम पर्वींग वचलना जब निभी थेष्ट या आङ्ग विष्व या शा०, भर को दिन ना हो तो यही मानि का दद्य होता है । मन को विचारमयी नामों का प्रश्नल 'विषयन या' भावना ही मिल है, दूगाँी और चित-वटयर मन की स्पष्ट त्वेना रम्पो । विचार का धारणक तीमान मैन को नाम दें और आकर वा नंचल अवसर रम्पुति जो । मन अंत नाम और स्पष्टमक जनों की धारणक परिणीत कमज़ोगति और न्मूलि के नाम में अभिन्नि भी जानी चाहीं । यही और रम्पुति का स्माहान बुद्धि म हो । त और बुद्धि के उत्तरान उत्तरन द्वारा है । प्रजा, मेधा और प्राप्तिमा ॥ २

हग, रंग, इवानि, गणि, लभ, तथा शब्द आंद विषयों जोग बुद्धिसे आये भाव हैं । जो भाव है, वहा वृग्नि है । अभिनन्दा-अविन य विषयों के हृदय का भाव अन-

मंख होंगे। पर अपनी 'वृत्ति अनुसार' अपनी शक्ति के स्वरूप में परिणाम हो। जाता है। आभाव के साथ न्यक्षित यह प्रस्तुत दृश्य और अपनी प्रतिक्रिया आदर्शसंग दोनों के संयोग से जो अधिवेचनीय उच्च रंग-शूमि से जन्म गया है, उसी की अपने नाट्य शास्त्र में 'अभिनवालियका वृत्ति' की संज्ञा दी गयी है, वर्णात् आभाव-अभ्युत्ति के भाव, अनुभूति बनकर भावना पिर महाभाव की दशा पर वहुभूती है। यही अवस्था नियंकलय होकर रस-अवस्था का प्राप्त हो जाती है। और मविकल्प इशा में यही महाभाव है। 'महाभाव का आदर्श' से वेगांतर-भस्त्रके गृन्ध प्राप्त हो जादात्म्य ही भावमस्थापित है। इस विवरण को प्रस्तुत्याकृत्यमय महाकाम और कामेष्वरी के महामध्य के नाम में जाहा जाता है। अपनी शक्ति ने चबड़, परमित यत का सार सौदम अमृतरथामय 'महाकाम' ही कवि और काम्य का गोष्ठेतत्त्व है।¹⁴

महाकाम का लोक, अंकरण, नेतरा, हृदय वार्ता भाव का है। किंतु प्रश्न यह है कि विनका भी आम्बादन नहीं हो रहा, उसके 'एवं इतती आकाशा वर्णोऽहे ?' पहले गवत है कि कृष्ण इसका आम्बादन अवध्य हुआ है। नियंकलय ही एक दिन सेमा लगता है कि यह गारा संमार उस रथापान से भवनवाला होकर आम्बाविन्ध्या हुआ था, पांखे नियंकलय की प्रेरणा में उस अवस्था से ज्युत हो गया है। 'हृषी' के पांखे का मनुष्य रथर्य से जर्मीन पर गिरा हुआ व्यक्ति है। उस पहले के विकास 'हृषी' में एक अंगुर भावोद्धा और प्रतिक्रिया है, विनका प्राणिकला 'एतदन' और 'एवेत' है।

हमारे गहाँ रथापान से आम्बाविन्ध्यन होकर चृत्ति होने का चरित्र है। इसको वर्ण यह हुआ कि "योग से अष्ट होकर गंतार आज उसी की पुनः प्राप्ति की आवश्यकता योगी माण वाले भर्त के समान व्यक्तुल हुआ-ना साग रहा है। जब तक यिर उस योग की रथापना नहीं होगी तब तक इस अवस्था के हठन की सभावना नहीं।"¹⁵

जात्यन के स्वरूप पर यिर रथा का हमरे अनुभव किना है, वह परिच्छान, एक-इश्वरीय लिंगिक और मलिन है, किंतु विन रथ की जात्यत है वह इत्तक विषयीत है, जिये पूर्ण आनंद, पूर्ण सौदम और दूर्ज प्रेम को सज्जा दी गयी है। इसन यह है कि इनका जब कभी आम्बादन हमरे नहीं किया जाता इनके जिया नुस्खा जानी कौन ? जिये परम मीरिये ते गीते रहकर तृणा की गायाय है, उसी का किर गायने उपलब्ध किए जिना यह आम्बादन होगा कैसे ?

इस आम्बादन के शारे में हमारे आगम, लिंगभ और कला प्राभुओं में यह जात लिंगिक संकरां में नहीं गयी है कि इस रथ का जब हों आम्बादन हुआ। यह, तब बास नहीं था, वहें हमरे हमका अंकरादन किया था, यहाँ देख-नहीं सा, वह हमारी 'योग' अवस्था-अववा-प्रियन का थाण था। उरांक वाद हृषार्ती यर्तमान अवस्था योग अण अगमना चिरहु की है। किन उस प्रयोग में जाते ने लिए हम प्रट्टियाँ रहे हैं।

गुरुमित्रन चाहते हैं वेश-काल को जिन अर्थात् विभन चाहते हैं ऐसा काव्य, जो आम्बादन देना वही भाव है। प्रयोग दाना गया है, उसके जो लिंगों भी अभिन्न 'विकासोंवर्द्धयम्' इन दोनों में उनकी उन्हें प्रस्तुत करने का। लालोंत करने का

नाट्य प्रस्तुत व्याप्ति, नीतिकर, अमीर है। आनंद का अभिन्न गये है। एक ही उद्देश्य अभिन्न होते हैं, विनको दृष्टियाँ होती हैं हठन, विकास प्रस्तुत व्याप्ति, विनको दृष्टियाँ होती हैं पद और इनको योग होता है। यही वर्तमान दृष्टिकर आज हम की अभिनंदन अनन्द को पढ़कर हमें इनमें मुद्रा नाम्बादन अलावा भावनाय अद्वेष का दृष्टि, अप्प और उनके विकासोंवर्द्धयम् अभिन्न तत्त्व से हैं। अंतर्गत पाद्य की इसके वाद पाद्य के और प्रस्तुत। इस अनुसार अवस्था-अववा-

गण हो जाता है। आत्मसना दीनों से पूरे अपने नाट्य शास्त्र-प्रमुख में ही नहीं अवश्य कृता रहा है वही पहुँच नाट्य ही। अपनी कृति के गामरण्य तक नाटक नायिक

का है। बिना अपने नाटकों की ही एक विनाप्ति 'आनन्दार्थिम्' हुआ 'द्रुष्टा' के पांच का 'विलय' 'द्रुष्टा' नाटक 'प्रभु' द्वारा गकेन है। इसका प्राचिन की आवाज है। नव तक फिर उन नीं संग्रहना

परिच्छिन्न, एक-इलंके विनाप्ति है। प्रथम यह है कि लग्ना नाटों की रुपांतरण्य

प्राचीनों गे यह बात आपने नहीं की, तब काम करना बहुत अवश्य कींग एवं कठोर होता है।

पूनर्विलन जाहत है, अर्थात् हम जिस देगा और काल में नियांसिन होए हैं, तिर उसी देख-काल को छिपा-जिता कर, विजेता कर यैसे ही योग 'द्रुष्ट' होना चाहते हैं, अर्थात् मिलन जाहत है।

शेष काव्य, नाटक अथवा मंगोन इसी विवेग का अनुभव देकर तांग के रस का आनन्दानन देता है। भारतीय नाट्य के जो श्रेष्ठ उदाहरण हैं, उसका आधार यही भाव है। आरं नाट्य गायण में अभिनव और धारण के क्षेत्र जो इन्हीं प्रकाश ढाला गया है, उसके पीछे नाटक के माध्यम से यहीं रंगारवाण कहना परम लक्ष्य है, जो किंगी भी अभिनव के अनुष्ठान किल नहीं है। 'अभिनव शान्तिलम्,' 'विकार्यीलम्,' 'उनारम् भन्तरितम्' नाटकों में वाचिक अंग व अभिनव अंग, इन दोनों में इनीं गायण विधियां इसीलिए रखी गयीं कि अभिनव के अवतार पर नहीं प्रस्तुत कर दर्शन और धोना समुदाय की योग्यता देगा-कर्त्ता से डूटाकर देश कालांतीन करने वा उल्लंघक उथम चिया जा सके।

नाट्य गायण में ऐसी भरत न अभिनव का विवेचन वह विचार से किया है। आंगिक वाचिक, आहंय और सात्रिक, ये चारों प्रकार नीं अभिनव प्रवृत्त्याएं नाट्य नहीं। आंगिक आंमन्य में एक-लूक शारीरिक अंग-उपांग के नमाम अभिनव बनाये गये हैं। एक ही उदाहरण गायण ही है। कि नयन और दूषित से छतीन प्रकार के अभिनव होते हैं, विद्यम से आठ रुपों की, आठ रथायी आत्मा की, बीस मंत्रारी भावों की दूषित्या होती है। आध्य, पलक, धीर, चाक, कपोल, अधर, चिकुक, पूँछ, पोता, हृस्त, विवेद सूदाओं, जैसे समुत्त सुदा सम्पूर्ण, सुदा, विनत, 'वरनीं, चिकुप, चतुर्मुख, पञ्चमुख, दणप ल्यापाकां त्रिल, यणपाल, यन्त्रिन तथा धेनु, ज्ञान, वेराम्य, पद और छन्दों योग्य, गंध, लिंग और निवाण आदि अभिनव दृश्यों का समर्वेश होता है। इसी प्रकार वाचिक, सात्रिक अंगों में भी विनता विचार है, उसे देखकर आज हम आपचर्येवकाल रह जाते हैं।

अभिनव अपनी किया में वितना अपाप्त है, नाद्यशास्त्र का अभिनव अध्याय को एकत्र हमें इसका अनुमान हो जाता है। क्षेत्र हस्त अभिनव में किंतनों भव्य मुदाएं नाट्यशास्त्र में दी रखी हैं, उसकी पहचान हम विश्वाय में पढ़ जाते हैं। इसके अनावा मारनीय अभिनव से 'नारि', 'मण्डल', 'स्थरी', 'लौसूद', 'रथानक' (स्वर्ण होने का दग्ध), 'मण्डल' और 'गणि', 'करण', 'अंगहार', और 'रेचक' वे जर्म, प्रयोग और उनके विस्तरों का देखकर आप, वालिदास, नद्रक नायिक के नाटकों में अपाप्त अभिनव तात्त्व से चुनिं-हृदय अस्तित्व हो जाता है। इसी दृष्टि वाचिक अभिनव के अंगों या दृष्टि की छह आवृत्ति, रथर, च्यान, वर्ण, काकु, अलंकार और अग, आनी हैं। इसके नारदपात्र के भी छह लंग यानि गंगे हैं, विज्ञेद, अर्पण, विर्मण, अनुवंध, दीपन, और प्रगस्त। इन आवृत्ति का प्रयोग विभिन्न नाट्यों में, विभिन्न वर्वशास्त्रोंके अनुसार अलग-अलग होता है।

इन मन्मुर्ग अधिनय विधान जो भारत में रखकर अब हम उस कानून के अधिनेता के बारे में भी जानते हैं, तो दो बातें स्पष्ट इत्यादी देती हैं। पहली अधिनेता जूँकि विस्तीर्ण की शुभिका प्रश्नुत करता है और उपरे अधिनय के साथ वह दर्शक भगवान् जी देख आने में परे है जाना नाहिना है, जानिए उसको अधिनय कला में शरीर के चित्रित धरानों से कहीं ले जाने का अथवे प्रयास होना है। द्वितीय बात, अधिनेता अपनी अधिनय कला से राजा सह स्थापित करना चाहता है तो कि अधिनेता उपर्यंत नहीं है, वहिंक दृष्टिका अधिनय कर सका है। इन दोनों बातों के बीच जो अल्प है वह प्रश्नुत: भारतीय जीवन दृष्टि, जिसे हमारे पुरुषों ने लीला, वरिष्ठा या विविध कहा है। इन अधिनय में जूँकि विस्तीर्ण पात्र का अधिनय, अधिनेता कर रहा है और जितने दर्शक उसे देख रहे हैं, वे भी अपने-अपने प्रतिभानाएँ हैं। इन दो-रो प्रकार के पाथों में एक भगवा, यही भारतीय जीवन, नाट्य, अधिनय का अनोन्त है।

इन अधिनय में कार्य-स्वामारा, शब्द से और भाग-दीड़ नहीं है। जूँकि विस्तोरण से 'योग' की पुनर्जीविता के लिए ही नाम अधिनय हो रहा है- इससे यहां अधिनेता भारतीय 'कार्यकर्ता' नहीं है, वह कलाकार, भावक और योगी है। वह शब्द अधिनय कहा है, तो हर व्यक्ति लोर अवस्था लो भाव के प्रशासित पर उभी तरह जन्म-ज्ञान जगता है जैसे गायक, वादक, जो कि या नौर या मनुचिलिपी कर रहा है। इसके उपरांण से भारत के लकड़ भरा हुआ है। विकम्भे शोध्यम नाटक के लकड़ थंग के गुरुत्वा में उर्जाओं विस्तृत जाती है। विलुप्ति यंगल से एक जन्म हो जाती है। वह जटा वृश्चिका के भिन्नकूल भर्पाव है। जिस विही गुरुत्वा अपने व्यान में उग जाता है, तता की जगत कर रही पूजा-उबंगी के रूप में पाने में इनका अप्त्वा नाट्य करता है कि उसके अधिनय में किसी अधिनेता जो उड़ पाएँ में कम समय नहीं जगेगा।

भारतीय अधिनेता स्वस्थावल पात्र की प्रतिष्ठा करता है। वह पात्र की अवस्थाओं का कलाकृति के रूप में दिखाता है। उन अवस्थाओं के भीतर में भाव की अभी शुभिका एक ले जाता है, अथवा पात्र को रस में भरता है, अर्थात् विस्तोरण गे चलकर तांत्रिक रस घटानाता है। भारतीय अधिनेता निवार है जो शोलकर भी हर शब्द, हर विधित, हर भाव मुदा का अधिग्रह करता है। वह हमें हमारे वर्तमान देश-कला में अपनी जेना द्वारा हमें 'परे' ले जाता है।

अधिनय और किया-व्यापार के रहस्य को हम और गमन के।

आधुनिक (पांचवीं) विद्यान बहते हैं कि व्याकृत नाटक में कार्य-व्यापार का विभाव है। प्रथम यह है कि हर को कार्य करते हैं, उसके पीछे प्रस्ता क्या है? हम दो कुछ दो करते हैं, उसके पीछे कोई-न-कोई अभाव होता है। अभाव के भीतर

जब तक उन लोगों के अभिनेता के हैं। लोगों, अभिनेता जैसी किसी भूमि के गाय वह दर्शक समाज को उमड़े अभिनय भला में प्रशीर के रह जाता है। इनीं लोगों को अभिनेता नहीं हैं। उनीं लोगों को अभिनेता नहीं हैं कि अभिनेता दुष्प्रिय हैं इन दोनों लोगों के पोंगे जा। सत्य है कि उपर्युक्त ने जील' प्रशिक्षण के लिए अभिनेता के लिए अभिनेता बर रहा है और उनको उनका नहीं है। इन दोनों लोगों के अभिनेता नहीं हैं।

गां-दोउ नहीं हैं। जैसे विदेशी तो यह है। इनमें यहाँ अभिनेता नहीं हैं। वह जब अभिनय शरणार्थी तक उगी तभी हम प्रशिक्षण के अभिनियों कर रहा हूँ। इनके विकल्पों गोपनीयता नाटक के चुरूं कर विश्वल संपादक द्वारा ही जाती विही दृश्यता अपने स्थान ते दर्शकों के रूप में पाने में डगना अभिनेता को देखते हैं कम

जा सकता है। वह आख की अव-अवस्थाओं के दर्शन में भावना को अपने विदेशी नाटक के नाटकर है जो दोनों दोनों है। वह हमें हमारे उपेमान है।

तमस्त्र ले।

कह नाटक में गाय-व्यापार का स्वेच्छा प्रेरणा नया है? हम वह ही हैं। असाध के भोक्ता

हो ही हमारे मारे आचरण, कार्य च्यापार, नेटापार, प्रगति निकलते हैं। एक तरह तो कहने कहने के लिए जैसे अधाय व्यापार है 'विद्याल' जैसे अंग्रेजी में 'एकटी-डिली' कहते हैं जो एक देखे नी हम देखेंगे कि जो कुछ भी हम करते हैं उसके द्वारा दरअसल आगे आगको ही दूँकते हैं। पर जो 'है' उसमें अपने आगको दूँकता, अकात्र को भाव में बदलने का अवसराज है।

अभाव क्या है? अभाव यही है कि दृश्य अपने 'स्वसाध' को नहीं लाने। उदाहरण के लिए पैर दिलना, शारक-माया में 'विभाव' है। इसी तरह तमाम अव्यवस्था सब दिलान है। प्रगति यह है कि इन लोगों विभावों के पांसे वह नृज ऊजों का है, कहाँ है, जिसके कारण भारे विभाव हो। ऐसे हैं? जहाँ देखा है, आदि ते अन तक देखा है (परिवर्त, आधुनिक) वहाँ केवल विद्या-व्यापार हो व्यापा॒र है। लिंग नहीं देख नहीं, (हैन केवल अज्ञान के व्यापा॒र है) यहाँ किया व्यापार की उनीं स्थितियों नहीं होंगी क्योंकि वहाँ सारी भावना दृश्य से विद्युत रही थी। हैरही है, अलान से ज्ञान की ओर, विदेश से प्रश्नाएँ की ओर, बीज-कर्म से फल की ओर ही रहा है। इसी तरह हमारे कर्म में चाहे वह किया गया क्षा हो, जाहे अभिनय लिए जाए, इसमें परमार भावन अनुभावन का ग्रहण प्रभुत्व है।

यह जानकर आपने चकित नहीं होना चाहिए कि पतंजलि, भगवान् हरि ने यताया है कि काल वे, मात्र मांसित-सा प्रनीत होने वाला स्व 'अनित' द्वारा किया के रूप में जात होता है। पर जही रूप जागी और मैं कालहीन-सा लगता 'भाव' कहलाता है।" पाणिनि, पतंजलि और भगवान् भर्तुहरि इन लोगों ने यह बताया है कि विद्या, वर्ण, विनक्त नृज संबंध 'है' धारा में है, उन धारा का अर्थ ही भाव होता है। भाव में ही किया लियो रहता है। वह कुछ पिछे जाने पर भी बेवफा माय विद्यमान रहता है। हमारे नाटककार, अभिनेता, 'विद्या-व्यापा॒र' को इसी भाव में स्व में लेते रहे हैं। भावलीय अभिनेता को शारक्षने का रहस्य इसी शब्द में दिखा दूँखा है।

पाणिनि के इमान के 'कैरेक्टर' का 'एकिट्टा' वीं वायविक्ता इसमें विश्वल बलग है। 'एकिट्टा' को बुनियाद 'एकशन' है। 'एक्षान' क्या है, इण्डो-पूराणीय आदि लंस्कार संपर्कान 'एकान' लकड़ से निकला है। जिसे 'एकोनी' शब्द निकलता है। लोटों भावामें 'एकोन' विशिष्ट वर्ष में इस्तेमाल हुआ है। 'एकोन' उस पादनी (भीम्ट) को कहते हैं, जो बाल-गुजार में जानवर की बाज़ बढ़ाता है। अहर वर्ष में चाहे वह प्राचीन भागत हो या परिवर्त, हर कर्म एवं बलिवान है। इसाई दर्शन में खातकर प्राचीन ईश्वर घर्म में बड़प दृग तक 'एकशन' के लिए दो जो धार्मिक सिद्धान्त हैं उन्हें जान देना। एवं मायक अनुभव प्राप्त करने को दिशा में प्रयत्न है। वहाँ 'एकशन' को अखिलान के ही रूप में लिया गया है।

वहना बलिदान अपने व्यक्तित्व का है, वह व्यक्तित्व जो 'मै' (हम) में अक्षा होता है। इससे 'एकशन' प्रभु (या हम) के प्रदि विनय, समर्पण के भाव को लेकर

होता है।

लोगों, कर्म में अपने पारों के प्रति प्राचीनतम का विवर है।

चीज़ों, उत और उपयोग हैं।

पांचवा, हर बलु और कर्म की सत्त्वा और दृश्यर से मनातन मन्त्रों के भीतर गे अनुभूत करना है।

सूजा, लोप, इन्द्रिय सूख आदि से अपने नो पवित्र रखना है।

सातवां, गांति और अस्तिता का जीवन जीना है।

किसी के प्रति ईन्हें भर्ते के विचार चरित्रप के अध्यात्म में मदा शुरूआत रहे हैं। परन्तु अध्युत्तिक 'डाभा' में किसी के प्रति से मारे धार्तमिक विष्वास कही नहीं रह सके हैं। उनके पहला धार्मिक नाटक एक विशेष प्रकार बनकर अलग-थलग पढ़ा हुआ है।

भारतवर्ष में, विशेषकार हमार प्राचीन नाट्य में, नाट्य रचना से लेकर अभिनन्द, प्रगृहितकरण, नाट्य-पृष्ठ, दर्यक-रागान् इन सारे धरातलों में सबैक हमारा धर्म, हमारा अध्यात्म, हमारा राधिनेत्रीय विलिङ्गमात्र और हमारी परंपराएँ, सब कुछ हमारे जीवन, कार्य-न्याय-र के बाय ही प्रकट होता है। धार्मिक नाटक तैयार कोई भी प्रकार अलग नहीं होता है। पश्चात् में अद्वय धार्मिक नाटकों का एक अलग प्रकार भिजते जाता है, जिसे उमर्से भी बधार्थ जीवन का आधार द्वारा हस्तांत्र प्राप्त नहीं है।

राज्यमि के गंदमें में अभिनन्द और अधिनन्दा के स्तर स कीन सा थामे रख लाना है? कर्म जी तुकद द्वाया दिया गया है, न्यायावनः यही रंग लगेगा जिन्हें जी 'ध्यात्म' द्वाया दिया जायेगा, जह कर्म छह से होगा? पर आधिकाय के स्तर से यदि 'पतुष्य' के कर्मक संग्रह ओभिनन्द दिया जाय तो उससे रंग अवश्य पैदा होगा:

'ले' अथवा 'नाटक' से जुड़ा हुआ अपेक्षित अभिनन्दा होता है, मग्नुर या कर्म-चारी भट्टो। अतः, यत्पाप समन व अद्यात्मिक गतहस्ति के वायण लब कांड कल-कार नहीं रह गया है, सब कर्मनारी और मजदूर ही प्रयोग हैं, तो अभिनन्दा करो कक्षकार बनकार 'हु' लकता है?

ग्रंटोकर्णी ने 'एकटर' के द्वितीय कार्य में कुछ वरदान लिया है। उनके जवाबों के भीतर से 'एकटर' का 'हु' स्वरूप प्रकट होता है। उसने पूछा है:

क्या विवेदक वस्त्र विन्यास और मंज राज्ञा ने दिना संभव है?

हां, समझ है।

क्या विवेदक सहजोंती संगीत के दिना संभव है? हां, संभव है।

क्या विवेदक नाट्यमुक्ति के दिना संभव है? हां, संभव है।

यह काम दिना अ-
न्ती, विलुप्त ना-
इन्द्रिय द्वारा है जि-
सका नाम नाट्य
है। भ्रम नारे तथा

वेदान दाता है के प्रव-
त्त होना है कि मेरा
प्रवत्त है जो तुम्हें
अभिनन्द नहा का
जापन द्वारा किये सं-
हित है। दातिक ने इन
नाट्यवाचिक विविध-

ज्ञा व्यवहार के
में वह कंसा अभिन-
द और हमेल वापां द्वा-
रा भवद्वारा साय अभिन-
कला हो जाती है।

प्रत्येक व्यवहार
संबंधी का एक सूची
नाटक के दिनों पास
मुक्तिवाचि न होना चाहे।

दूसरे व्यवहार
को भूमिका, अन्त-
व्यवहार की तरफ
नाटकर, पापा जी
है। इनके लिये प्र
'पूर्व', 'पूर्व' अथवा
हुट जाग और यह
संबंध नहीं होता।

आद्यन्त एवं
मानाम भूमिका
मुक्तिवाचि जाता है।

पर नगा विना अभिनेता के होई खिंचवर या रंगमंच नीति है?

नहीं, विनुज गही। नहीं अभिनेता भी। एक दर्शक, यहाँ दो अभिनेता नहीं हैं।

इस तरह हम खिंचवर को यह परिचय देते हैं कि जो अभिनेता अभिनेता 'अभिनेता' तथा उसके लिए 'लेकेर्टर' के बीच ने प्रदान है वही 'खिंचवर' या रंगमंच है। अत्यं गारे इन दोनों नहायक मात्र हैं।

महात्मा के नंगादों को पड़कर आते का अभिनेता, अद्यता, खिंचवर यह नहीं है। क्योंकि गवाह दस्त है। इन संवादों की अस्ति ज्ञानात्मक अस्ति उपशमा कहला है, और उसके महत्वात्मक दर्शन है। लेकिन गही अभिनेता यो वाचनम् ने अधिनय व सा का दर्शायी है, वह मास्टरत के इन मंथादों के बीच दो दूष, उन दोनों का गहराई। कि ये संवाद यो वाचन जाने के लिए नहीं है, बीक द वर्चाचक' अधिनय है। यो वाचन एहाँ दूष भी भला है, कि ये वाचिक का वाचिन अभिनेता, वाचिन अभिनेता नहीं वाचिन अभिनेता है।

जो अभिनेता के बीच संवाद द्वारा लगता है, अथवा के बीच नंगाद का अधिनय लगता है वह कोरा अभिनेता है। संवाद का केवल वाचिक अभिनेता नहीं, वहम् गरल और हाथ काम है, कर्मिक ऐसे अभिनेता अपनी गलक से बोलि रचता नहीं करते। नंगाद के नाम अभिनेता जब अपनी ओर से 'रचना' करता है, तो वह कर्म अभिनेता कहलाता है जानी है।

परंतु वाचिन की उस ही अभिनेता भी कल्पों तंत्रधीय व्यक्ति है। हम नंगाद का एक मुखोदा सर्वत पहले रहते हैं। इनी नृत्रीों के कारण अभिनेता या नायक के निर्णा पात्र या नंगाद से कम्पों कोई सद्य सम्बन्ध नहीं हो सकता। इस मुखोदे का भूलना आवश्यक है।

इसके अन्तर्कल अभिनेता की दुखी मत्त्वाड़ी है, जूँकि उसे विवाह घसार की भूमिकाएँ करनी पड़ती हैं, इसलिए वह निनांत थवेना ही जाता है। इसी अद्यताम् जो दक्षता के लिए उसे भूखोटा लगता एहु सकता है। इस मुखोदे को अंडकर पात्र की भूमिका में अवतरित होना अवैत् गंविधि द्वेना करना काम है। इसके लिए डाकीन रंगभूमि पे और उसी विशेषकर जीवः वर्णाय म 'पूर्व देव', 'पूर्व', 'पूर्व' अथवा 'मंगोल' का प्रयोग होता है कि अभिनी इसकिल का भूलना दूर कर और उस कलाकार अभिनेता ही जाय। उसके अभिनेता से पात्र का सहज संबंध नहीं रखा।

आधुनिक समाज में आधिन कुकि अपने वयोर्धि जीवन में निर्भिन्न दोनों व्यक्तियों में नपाय भूमिका। लो-करन व्यभाया अवेदा ही जनाहे और उसी एक व्याद्य भूखोटा ओँडा पड़ता है। वही आधुनिक व्यक्ति व्यभि निम्मी महाफ़िल में दीरे-दीरे

शशवं पीकर (पहो उगका पूर्व रंग है) अपने मुखो की तोड़कर अपनी अमलियत में आता है, तभी यह अभिनेता बन जाता है। पर इस लाभुनिक अवधि का दुर्भाग्य दोहरा है। लव वद यथनात करता है, क्योंकि वह संवेदित नहीं हो पाता। उसके और संवेदी के बीच में व्याप होती है। अभिनेता और उसकी भूमिका तो नदि कीहे अहंकार लपी नमो का संवेद है, न वहाँ भी अभिनय करना नहीं बन सकता।

प्रतिद्वं नाल्द्यनिरेषक द्वितीय दृक तो आपनी पुनर्वाच 'द एप्पली हॉम' में एक संक्षेप आता है कि नद एक वार 'कॉमोटिव ट्रैन' में एक रिहरेंज देख रहे थे, जिसमें एक दुखा एक एक दुख एक्टर के नामने छड़ होकर इस तरह अभिनेतन करते हुए संवाद धोल रहा था। आपनी वह किसी आइने के समाने पढ़ा होकर अभिनय-अभ्यास कर पहा दी ओर देखन भी उग अभिनय-अभ्यास में सबोंव हर से भाग ले रहा है। इकला अर्थ यह हूआ कि अभिनय करना एक पारंपरिक कला है। वृद्ध एवं युवा नद एक्टर 'एक्सिट' का अर्थ और उसका रहन्यम प्राप्त करता है। पुरानी कला नद के ही परंपरा में आरंचार जांची जानी चाहिए और संगतामयिक संवर्धन में ही परंपरा को संतोष दिया जाना चाहिए। इसी को हमारे यहाँ 'पुनर्वाच' को संतोष दी गयी है।

गोटर दृक ने उस पुनर्वाच में अभिनय और प्रभुगिकरण के ब्रह्म व शिवठर को नार हनी व देखा है 'द डेडली थिएटर,' 'द होली थिएटर,' 'द रफ थिएटर,' 'द हमिडिएट थिएटर'।

उसने 'डेलो' वा मृतप्राप्त उसे बहाही जो किसी काल विण्यु में कंधा अथवा जड़ हीवर रह रहा है और उसे शास्त्रिय, प्राचीन, गवीन प्राप्तत, नृद्य-प्रधान, 'नोबुल 'हीरोइक' रीपालिक आदि नाम देकर बदल दिया गया है।

क्लॉसेनोन का या उगाची अभिनय कला का दिलाई दिकाग तभी समझ है जब अभिनेता का ज्ञानी 'भूमिका' भी सज्जा संवेद हो। दूसरी ओर उगकर आपने दणोंक नमाज गे रीता, महस, अर्जन संघर्ष हो। इन संवेदी से जीन गहरतपूर्ण चीजें पैदा होती हैं। ऐसा, नारंग और रामानुज के प्रति एक यह एक दुमरा, दुमरा, उभारोग। उसके संवेदी होत रहने की आदि, नीराता एक ही भूमिका वो बार-बार करने से उगमे हर बार एक नयी अनुभूति (स्त) का उत्तन।

मिदोत रूप गे नाटककार स्वर्तंत्र है, रूपगण वर कुछ भी नहीं न खिल। परन्तु अपनाहारिया रूप में वह जीवन का। उन्होंने हिम्मा रोक्कम पर उपलिप्त कर सकता है यि यि। उनकी वह प्रका जे अस्त है। उन अनुपात में आभिनेता। उतने बोहों ही जीवन अध्यार्थ भालने वो विवश है जो उभकी भूमिका-सेवा में अस्त है। पर कलाकार अभिनेता वह है जो अपने अध्यार्थ को उस में तक्षी की गीमा में बोकर न देते। अभिनेता का आभगण क्षय उभका में दी गयी भूमिका के अनुचार गीमित है

तो दर्शक को
नाहा। अभिन
द्यके जरिये
प्रकाश की।
यह समाज
तक नहीं काम

नाटक का
दृप्ति नहीं
है। यह या
दर्शक भी न
में अभिनेता
अभिनेता
निर्बन्धको
ना अवश्य

परन्तु
द्वीपसूखा
करना है।
कामा-प्राप्त
रहा है।
बाला दृ
क्षे। कर्ण दृ
हम किया
गृह दृग
में हुआ जी
गुड़ कर्म
गमा कर्म

भगवा में
मनुषा व
जनावर
कर रहे हैं।

मुख्यों ने तो हक्क अपनी अगलिला पर रख आ़नुभिके जाकिए का उपर्युक्त वह संवेदित नहीं हो जाता। उसके बाहर और उसकी भूमिका वे यदि कोई अन्य जगत् नहीं बन जाती।

‘उपर्युक्त’ हर एकी रास्ते में एक गाँधीजी का इस रहस्य देख रहे, तो वह हमें इस तरह अभिनन्दन समी आइए के मामन जहां हांकर तो अभिनन्दनस्थापन संघीत हृष के लिये रुक्त रुक्त रुक्त होता है। और उसका रहस्य प्राप्त करना है। और शान्ति और अमाराधिक चाहिए। इसी की हथारे महा

प्रत्युत्तरण के उभय में विषेषण हानी विषेषण, दृढ़क विषेषण।

जो किंग कल विषेष के वधा, गाँधीजी अपने जगत्, जूते में उत्तरवद्वयन का दृष्टा गया

उत्तरविषय नहीं गंभीर है जब ही। इसी ओर उसका आते। इन प्रश्नों में जो महत्वपूर्ण के प्रति एक महत्वपूर्ण, दूरा, सर, एक ही भूमिका को बास्तव का सुनन।

और कुछ भी लाते के लिया। उन्नु सा रंगभूमि पर उच्छित कर अनुग्रह गे अभिनन्दन। उन्नें जो भूमिका-प्रीति में रहता है। उर भूमिका को होमा ये बांधकर न भूमिका के अनुग्रह सांतित है

यहां

हो उपर्युक्त की जातक बोलते हुए विज्ञाली जरूर पड़ता, कभी सुनायी नहीं रहता। जातक अभिनन्दन के माझपम से देखना, सुनना और उस जातक एवं संबंध है जैसे उसके नान्दन और विज्ञाल ये वह जान्य सदा। ‘वह सामाजिक है ति वह अन्दनार से इकाज की ओर ‘कुछ’ ऐ जा रहा है। हित, ईमार और इस्लाम इर्होनों मत्तों में वह समाज विवरण है जो ईश्वर संवेदितसामाज है। स्वर्त भै पूज्यो भक्त, पक्षों से वहां तो जो कामल (दिरह) है, उसे पार करते के लिए यह यात्रा अनिवार्य है।’

जातक का प्रारंभ होने से उर्वर रागभूमि पर अधिक होता है। यह जारी जाता तो उपर्युक्त का अधिक होता है। अभिनन्दन के प्रवेश के साथ-साथ उम्र परिवर्तन उत्तरता है। यह यात्रा के गुभारेम का प्रवेश है। अभिनन्दन के स्वरूपों में साथ-साथ दर्शक-दीर्घ अभिनेता के लिए दूसा भव्य के अनुभव और ‘अभिनेता’ से अभिगुण होने लगता है। डमोलिंग और आभूषण करने ले जाय, वही लांबानों है। अभिनेता व्यवहर का आभूषण तड़ी करता। वह विषेषण की भूमिका जो लिंगविभितक होकर करता है। उत्तरविषयक को भूमिका म प्रवेश करना या अबन्दण करना, यही है भूमिका।

प्रत्युत्तरण वा अन्य अभिनेता अभिनन्दन, नृत्य, गाँधीजी, निर्णगामर लोक गाय, लोकनृत्य, लोक गायीन में, दृश्वर, देव, देवी, के बंदग ने ही अपना कार्य एक बदलता है। वह एक ओर अपनी सफलता के लिए पूरा बंदग करता है, इसी ओर अमान्य चाना करता है। इसलिए कि वह ईश्वरीय धोन में प्रवेश करते ही काहम बर रहा है। ‘भूमिका’ शब्द का मरी अर्थ है, दृमों की भूमि का होना या उभयं जीने वाला या उगमे प्रवेश करने वाला। इसी अर्थ में आभूषण का कर्म उपर्युक्त है। कर्म अपने दो-ती अर्थों में पहला, अभिनय कर्म, दूसरा अर्थ। जिदों में हम जिया ने स्थान पर प्रतिक्रिया की जीवन दीते हैं। किन्तु रंगभूमि पर अभिनन्दन गुम करने करता है। वह जानका है, और यह जान निर्दान आवश्यक है कि ‘यह’ में हूँ और ‘वह’ में हो भूमिका है। यह जान और शृंखल कर्म का आधार है। शृंखल कर्म में जिभो कल को सालमा नहीं रहती। जितमें निर्दान आवश्यक किया गया कर्म उसमें रंग आता है, वही भूमि पर भी रंग पैदा करता है।

पनुष्य में दो रूप हैं चिल्ला और मानवोंय। जीवन ने जब लोड अभिनन्दन या ननुपाल जवार्मित होकर (आभूषण) अपनी भूमिका निभाता है, तब वह अपने रंगभूमि वाला है। हम सब अपनी स्वभाव की विवादों पर बहने हैं, अभिनय कर रहे हैं। जिस दिन हमें अपने अभिनय का जात हो जायगा, हमारा अभिनय

सकार और संगृण हो जायेगा।

शिव नहराज हैं और शुभ्य नहरार। ये दोनों इमीलिए नहराज और नहरार हैं, पर्याप्ति ने लिया अपने 'इडब्ल्यू' में है और हम मन की आवाज तो 'स्क्रिब्बल' में जो आने के लिए मार्खें करते हैं। कर रहे हैं। भीना का एक अर्थ है—लौजना। लौजने की अत्यधिक शक्ति अभिन में है। अभिन का लगाए हो उसकी अराहत जितना है, उहीं दिमुओं में नहूं गवकालौजनी है। लौजने का अर्थ है, भीदा (अभिनय) और लौजा का अर्थ है, भज कुछ दिखाओ। ऐ जाना, जल्दी, इच्छा ने परोध लक। भाव में अभिनय, अभिनय से भाव, और भाव से रथ लक। रथ ज़ख्मीन तहीं होना, तथा रथहीन भाव नहीं होना, इनके परम्पर संबंध तो हो ही अभिनय ने जिद्दि दिखायी देती है।

इसी भाव, आन्यवोध को पुरस्कृत करके ही विषयबोध संभव है, अन्यथा नहीं।

इसी विशेष गंदर्भ में अभिनय करना मापने अंग को पुरस्कृत करता है। विषय कल्पना के तृप्ति, आनंद कल्पना, आलपाभिन्नक से ही निःसृत है।

अंगरेज ने जो 'नव' है वह धर्म विद्या नहीं है। जीवन में डाकिनों की अत्येक प्रौषिका वर्णन—अपने प्राप्तकों स्त्रीवती, शोधनी हुई भाँगकेल की विद्या में ले जाये जाते हैं। चेतना के अनंत रूप हो 'पात्र' हैं। उन्हीं पात्रों में रहकर देखकर हीं अपने इच्छ का गति होता है।

फिर भी अगर जान नहीं होता, तो वही पाठ्यवचन का द्रुमा है—दूरज़िदी।

पर भारतीय नाट्य में अत्यवाक्य का वही सकेत है कि विषयासानित वाक वो एक अवस्था पात्र है, पर वाक की भूमिका का फल है, उग आमित को देता जेता।

हमारा विश्व यह है, विषयासानित के यह अविवेतगत गीयन से ही दृश्य का यात्यन नहीं, वह याद्योग और मन में जी वडन का कारण है। सरकृत की मधों गहन्यमूल नायू-कलियों, यद्यवीं, कुवरांगव जैसे कालीरोंग वह छविता है। नायूर छारा विशुद्ध हुए विना, जीकन न गो-मर्वानित वह सकाने हैं न नयाय या राजकिंश।

सफलना शिव और इच्छा, अभिनी व्यापार-विश्वास, अर्थात् प्रशुष्टि और गिरुति : प्रशुष्टि और पुरुष के योग विना जाभव नहीं है।

परिवप के द्रुमा में जो 'एकिंग' है उसका आधार है, प्रशुष्टि और पुरुष के बीच एक भौतिक विभाजन की दृष्टि।

भारतीय नाट्य में अभिनय दृष्टि का आधार है, योग शाल में दृश्य द्वारा विभाग और विभुगि का भज निर्देश चलता रहेगा। अतः संस्कृत की आंग चलना चाहे है।

हमारी पुरा नाट्य जैसे इस विभाग पर लाधारित है कि प्रकृति गमित गमित से गंभीर के जिन पुरुष का देश और राज्य के ऐश्वर्य और पुरुषार्थ की मिहि गंभीर

न होनी।

तभी ही कल्पना में जनना

शक्ति वाले स्वरूप

अनुभव अंग

गोवत में

प्रवाह है। जो

मनिन से भव

उत्तरी अवधि

दाय का दुर्घ

गृहस्त है। तभी

मूल जनना

अभिनेता और

'बूनि' अंग

परमर्थ से, उनके

मन्दिरों द्वे हो

मनना है। जिन

विद्यानों से जो

पर मेना आव

करने वाले

अभिन-गमित

रागी औ

आपर्युगी। नहीं

अंगिन

बीर धारा औ

नहीं। केवल

पिलम समझ

नीता, त

धंडोकर राला

हमारे न

पक्ष ही भूमि

आनंदजन, त

मूर्मिकाजीन में

स्मीलिंग गवर्नर और स्टेटर हैं।
को भाव से 'द्वयभाव' में जै ल्याने
इर्हे हैं। लोकता लोकते को
उसकी अमर्त्य चिह्नित है, यहाँ
है, भील (अभिनव) और तोला
अन्धेरे ने गांधी लगा। भाव में
एक फालहोन नहीं होता, वहा
ही अभिनव में गिरि दिखायी
पड़ी। विषयबोध समझ दे, अन्धथा।

ये का प्रश्न उठ करना है। विषय
ही निःमुक्त है।

जीवन में दर्शनित नी प्रत्यक्ष
दुर्दृष्टि आमचतना। वो दिणा में ले
उठने पानी से अद्वितीय देखकर

का दृष्टि है, देखियो।
है कि विषयनात्मक भाव की
उस आगोचत को देख देता।
विषयवाद में ही दृष्टि का कारण
। यंस्कृत की सभी महान्वयों
हह अविनित है। तपाप्ति छारा
। विषयवाद में लावा या चाहमकित।
विषयवाद, अपने प्रवृत्ति तीर
है।

द्वय है, व्यक्ति और गुरुत्व के
प्रोत्त्व बात से युक्ता हुए चिना
ज्ञान। संभूति नी और चलना

न है कि ग्रन्थी गणित शक्ति
और गुरुत्व की नियंत्रित कान
। सौदर्य

न होती।

तीरी नी अभिनव शास्त्रलय नाटक का भवा वर्णन है। चाजा भवा के
कल्पना में रन हो। गारुप के धनियों द्वारा सरस्वती का आदर हो और व्यापक
जारिन वाले रघुनभू नीललोटिन शिव मुझे भी गुरुर्जन्म से नृत्यन है।¹⁰

अनुभव और अभिनव दोनों के अंतर को तापशना है।

जीवन में अनुभव के बाहर कोई अकिन और भूमिय नहीं है। अनुभव एक दुष्प्र
प्रत्याह है। जो अपने ही भावर के दोनों इच्छा, स्वन, अभाव और विषया-
गतिकों पर भरता हैना है। वहाँ ननुगम, जियांक पात्र ने इतना धनुभव भरा है,
उनकी 'अवस्था' है रूपक' का नाटक नियोग कर। और उसे अभिनवी बदर इनके
पात्र का दृष्टि (धर्म) ही हो काढ़ा है। अभिनवी, सुन- अभिनव एक अद्वितीय
मजन है। तभी यह उत्तमनमय है।

मुझ भगवान् है, रंगभूमि पर प्रन्तुन ताड़िय एक विशद जन राज है, जिसमें
अभिनेता और दर्शक सम्मिल अपना दग देता है।

मूर्मि और रजा जिनका प्रव्यक्ष और इन्हे उतना ही प्रत्यक्ष है। जिनका
प्रव्यक्ष है, उतना ही आव है। अभिनव कला की अवधियता यहीं अधिनित है। हम
उच्चाराएँ को ही नहीं, मर्म को देखना चाहते हैं। मन्य केवल भाव से ही देखा जाए
गक्का है। कलतः अमली अभिनव, भाव का अभिनव है। रजा, संवर्ध में विद्योत
विषयांपां ने नी। चित्र बना, विषय उभगी यहीं है अभिनेता की झूमि। उस झूमि
पर ऐसा आवश्यक क्या हुआ और न्या दर्शनमन है, यहीं है पात्र की शुभिका
करण बाला अभिनेता। उमकी यहीं शुभिका अभिनेता। का गाज है। ऐसी
अभिनवात्मकता से पैर अभिनेता की भाग बना दियाँगत होगी।

इसी और, इसी झूमि पर मैरी राजिता पात्रना में कला सोने पे बीज बोये
जाते। उन्हीं बीजों से नदगुणों के फल आयेंगे।

अभिनव का भाव वेदान् 'गमस' 'गहो' है। उगका लाज है। भाव में अद्वा
और लकड़ा ने विषयांपा। नभों नी हम गमग्राहनी से आर्य मन्य दो देस पायेंगे।
दर्जन के दर्जन 'गमस' में देवत और अभिनव या नदिलव है। नीरनी अभिनव,
फिलम रामग्र

नीरन, रजा, अर्जुन, दृष्टिन, धारि दिग्ग पात्र में यह 'र्जुन' उसकी भूमि में
संत्रोक्षन रघु हुआ है, यह दूसरे देखना और दर्शक को दिखाना, यहीं है भारतीय
अभिनव कला।

हमारे ताड़िय ने एक ही अभिनेता, नरेक, वात्यक, लीपाशारी चांगी आदि
एक ही अभिनव पर अनेक शुभिकाएँ करता है। अभिनव, वेदानां, दिव्याधर। क्यों?
आनन्दजान, अनन्दवांप के लिए। इसमें वजाना यह है कि ताना जन्मों में नाना
शुभिकाएँ नीं में आ चूका हूँ दियों।

संदर्भ

1. दृश्य का बड़ी अभिव्यक्ति के प्रतार के समीकरण में उपलब्ध है।
दृश्य... दृश्यमुक्त का उत्तर ही उपलब्ध है।
2. वना और वास्तविक की वास्तविक स्थितियाँ, विवरकर अवधि, पृष्ठ 65-66
3. कथा की वास्तविक की वास्तविक स्थिति, विवरकर अवधि, पृष्ठ 67
4. एह महाराष्ट्राना गांधीनाथ कार्तिक, भारतीय संस्कृति और सामग्री, भाग 2
पृष्ठ 210 से 1979, पृष्ठ 219
5. (a) वास्तविकी वास्तविकी रूप स्थिति।
जो उपलब्धता विवरकर अवधि प्रतीता करती समीक्षा ॥ — (खंड)
- (b) इस विषय परिणाम व्यापार, स्थिति वारचा अद्वितीय गुणात् ॥
जो वरचद वर वारचिकाम, द्वितीय विवरकर सुकृतास्ति चाहत ॥ — (मुख्योदात)
6. वास्तविकी विवरकर अवधि इत्येवं वस्त्रे ॥
वरिष्ठानु विवरकर अवधि इत्येवं वस्त्रे ॥
—अनुवाद, वास्तविकी विवरकर अवधि 3 ४०८
7. गुरुप वा गुरुप है वे वर्षे जब यह ये भित्ति है ॥ — श्रीमद्, १५५ द्वादश
8. What takes place between spectator & actor.
—Jerzy Grotowski, Towards a poor Theatre, p. 32
9. अस्त्राद वा श्री श्वर्ण और पर्वती का वास्तविक है। इनका (व्याप्ति श्री अस्त्राद व्याप्ति और अस्त्राद के) द्वेष का व्याप्ति व्याप्ति और अस्त्राद व्याप्ति ॥ व्याप्ति पूर्ण करना ही द्वेष है ॥
अल कुरान ३१९
10. वरचद विवरकर वास्तविक
वास्तविक विवरकर वास्तविक
वस्त्रे ॥ वा वारचा विवरकर वास्तविक
वस्त्रे ॥ वरिष्ठानु विवरकर वास्तविक

के स्थान कहन पर है

तथे, गुड ८५ ८६
वाहन लालों, युद्ध ८७
प्रीत वाहन, नारा २
उत्तर, १७७, २० २१०
शिव
नीति । (कृष्ण)
दृष्टि
प्रति नाम । — (प्रतिशब्द)

५, वाहनीयम् ३४ १२
इलाल, युद्ध युध
actor.
A poor Theatre, p. 32
कहे (प्रति शब्द, वाहन वाहा
तक हा, नारा युग २३८) ही
अल युरेन २१४

प्रस्तुति

हमारे वहां कारी कलाएँ उत्तरधर्मी हैं। वयोंकि माझे कलाएँ, अपनी चाहकति की अनिवार्य जीव हैं। इमणिए दुनियादी और परमवस्तु पहले वह जान जेना चाहिए कि वायों संस्कृति में उत्तर की अवधारणा वहा है? उत्तर किसका? भाव का या पदार्थ का? अपह का या अवधीर का? नारा ना प्राप्तव्य का? इत्यति का या कृत्य का? इनी प्रथा के दौरे पक्ष हैं। यत्तर, चाहे वह नाट्योचन ही या शर्मीलीभव, यहां तक कि शिवाह उत्तराय, वह अपने स्वरूप में प्रस्तुति है या प्रदर्शन?

प्रस्तुति यो अभिन्नान्त उत्तर भाव है और उत्तर भाव को प्रस्तुति संस्कृति की परम्परा है। नारानारों की उत्तरिति का दैगाना किरा है तक ही राज्य की गम्भीरा, दृष्टि, नारा ही यक्षों है, पर यह समाज की समृद्धि प्रकट करने का वैमाना नहीं ही भक्तों। गम्भीर को नमूड़ का ऐमाना उमरों कला प्रस्तुतियां ही हैं। जैस उत्तर वही आनंद भाव, जैस उम भाव की प्रस्तुति भाव ही उत्तर गम्भीरा और अदृश देव वी गम्भीरा।

प्रस्तुति का अध्यार जूकि स्तुति है, जितेष प्रकार की भूति, जितावे अक्षित, समाज, पश्चात्, युद्ध, सूर्य, शूष्म, रंग, देव-कला, अबूल गुरुम एवं ममिपति हैं। इसलिए वह मध्यको, पूरे भास्त्र की तेला संस्कार देती है कि ये अपने आनंद को जितना है, उनना ही कह दूसरों के साथ बाटना चाहता है। यह श्रावे जीवन में आनंद ग्रहण करने और उत्तर जानने की प्रस्तुति का निर्वय अधिकार हा जाता है। और अपना दण्डक भी होकर देखने जगा है कि जिन्होंना जानता है, उन्होंना ही बहुता है। यह किसी एक का, जहि वह शोई एक भाव, विचार ही, नव ही, अध्यति ही, कोई एक वज पा वैधव ही व्यों न हो, उनकी मौमा को नाइकर +वनेय हा जाता है। इसी संदर्भ में इस बोंजो चम्म समूड़ का विदु कहा गया है, यह यही चतुर्थ-हव्यागतः को अपन्ना है। और यही वह व्रतम्भा है जिसका यंत्र भारतीय नार्य चरित्राया में गृह दंग में लिंगित है—'अवलगानुकृतिनाशप्।'

है स्थान कहा यह है।

लेटर, पृष्ठ 65-66
प्रकाशन संस्कृति, पृष्ठ 67
गोपनीय गायत्री, पृष्ठ 2
० अंक १७२५, ३० अंक १७
प्रोटो
नीया १०० (फ़िल्म)
द्वितीया
पास नाम । — (११ नीया)

५, वार्षिकीय ३४ १२
—शिल्प, १२५ गुण
actor.

a poet's Theatre, p. 32
देख (पात्र शिल्प, बालाजी वाया
वाला) पात्र वृग्ण वृग्ण वृग्ण
प्रत्यक्ष वृग्ण ११५

प्रस्तुति

हमारे यहाँ सारी कलाएँ उत्सवप्रसी हैं। क्योंकि मारी कनाइ, अपनी राह इति की अनिवार्य चीज़ है। इसलिए तुमनपादी हौर पर, यवसे पहरे यहु जान लेना चाहिए कि आपनो शंखांति में उत्सव की भवधारणा नहीं है? उत्सव जिनका? भाव का या पदार्थ का? धूण का या जलीर का? नाम्य का या भटना का? स्थिति का या ज्ञान का? इसी प्रश्न के बांध पर है उत्सव, चाहे वह लाल्होंमेल ही या सर्वोभीमेल, यहाँ तक कि विहङ्ग उत्सव, वह जग्नी न्वरूप में प्रस्तुति है या प्रदर्शन?

स्थिति को अस्तित्वान्त उत्सव भाष्य है और उस भाष्य की प्रस्तुति संकलन भी उत्सव है। सम्प्रत्यक्षों की उमानि या ऐमानि किसी हडवाघ ही राज्य की रुमादा, छबियाँ, गला ही चकती हैं, पर यह समाज की समृद्धि प्रकाह की का ऐमानि नहीं हो सकती। यमान का नमूदिं का ऐमाना लमकी लला प्रस्तुतियाँ ही हैं। जैये जलाय बर्ने आनंद भाज, जैये उम भाष्य की प्रस्तुति भाज दूँझ मार। म और अद्युष दूँ ची रम्भुँ।

प्रस्तुति का आधार जूँकि स्मृति है, जिसे प्रकार की स्मृति, जिसे व्यवित, साधाज, पश्चात्, पुरुष, भूमि, रंग, देवा-काल, स्थूल गुणम् सब यादियोंति हैं इसलिए यह स्वयंको, पूरे समाज की प्रेसा। संसार देखी है कि तो अपने आनंद के जितना रित्वा है, उनना ही यह दूर्योग के साथ बाटना चाहता है। तर आपे बोवन में जान्हव ग्रहण करते और चरस्तर भाटने की प्रस्तुति या स्वयं अस्तित्वा हो जाता है। और आपना दृग्ंक भी होकर देवने जगता है कि जित्वा राटत है, जाना ही बड़ा है। जैया दृग्ंक एक वा, नहि, वह बोडे एक भाव, विभाव ही, पद ही, विविह ही, कोई एक वज पा वैभव ही अर्थ न हो, उसकी गोंमा को नोडकर स्वर्वेष हो जाता है। इसी मुदर्भ में रस को जो चरम समृद्धि का विहु कहा जाता है, वह यही चित्त-स्वात्मतः की आवश्या है। और यही यह अवश्या है जिसक। संकेत भारतीय नाट्य एविदाया में गृह उगा गे जित्वा २- 'अवरामायुक्तिनाम् ।'

अनेक वा संवेद चिन की मनुष्य पर निर्भर है। इसीलिए भारत ने भौतिक समृद्धि की सोमाजी और नवाँदखां को तमज़ कर ही चिन की मनुष्यपर उत्तम जीर दिया है। उसी की मनुष्यिक के लिए हमारे यहा भारत अनुग्रहन और उत्तम है।

चिन की यह मनुष्यिक का 'नेतृत्व' पूरे समाज की असेव्य रूपों से इस वरह बाहरी है जिसका आनंद चाचका है। जाना है। अपनी कला उत्तरी के बारे ही, हालांकि राष्ट्रपति रामनगर इस कठोर तिथि हुए वर्षावर्ष में किस भी आवेदनमार्ग के आनंद के बारे में दो किसी न रह जीवन चाहता है।

इसीलिए इस उत्तर का उत्तर हमें क्या देता है कि चिन की सामृद्धि से उत्तम अनंद भारत की प्रस्तुति हो सकती है या उनका विवरण? मानो कलाओं में न दृश्य कला ने भारत पर रखा और शूभ्रि के पांचरेत्र में हम इसका उत्तर देता चाहते, कलाओं की गारी कलाओं में विशेषकर नामूद कला संपूर्ण और एकात्मक है इन्हीं कला है। ऐसीकिं हमारे पास इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि भारत ने अपनी राज काव्यमहोन के गाथ-ही नाथ अनुय कला उत्तरीजन प्रस्तुति में सार से 'प्रत्येक-उत्तर आज प्रदर्शन के रूप' पर चिराप्ती है। कलाएँ हम के मूल्य कारणों वे हम भाव ये जावेगे। यहाँ इसके दृश्य और प्रत्यक्ष वाक्यांशों ने निना होता। जब दृश्य अपने भावों और मूल्यों के प्रस्तुतियों द्वारा होती है उसी अनुग्रहन में हम बाधी उत्तरों और लापकी कलाओं की प्रस्तुतियों वाला पाते हैं। यह उभी भंगन है जब हमारे भाव, हमारे प्राणों से महान ही उपलब्ध हैं। यह भी उपरी भंगन है जब हाथी कला, हमारे लोकतंत्रों, हमारे जीवन के एक त्वाभाविक भंग होते हैं।

अपेक्षा उत्तर नाममहोन ने पढ़ने जैसे पूरे भारतवर्ष में हुगि महों के सोनों का उक्त नामी, उक्तोंकी जीवन वीरों की टीक उसी तरह उमी जीवन दर्जन के अनुभव नाथ्य प्रस्तुति भी हमारे जीवन का एक भंग हो। मैट्रोपॉलिस के प्रेक्षण एक अतीतका गतिशील नहीं थी, भारत के भवाँधान गवर्नर ने लोगों के नियंत्रण की एक कुनैदियों प्रस्तुति थी, औपनिवेशवादी उत्तराधिकार, नाथ्यप्रस्तुति लोगोंके नियंत्रण की एक कलात्मक प्रवृत्ति थी। यह नारी प्रस्तुति थी जो जीवन की गांधी भावावलनामा पूरी गतिशीली थी। नारीक क स्वर पर देखना का मनुष्य करता उसका भूम्य लघुत्तमा। तब यह प्रभावी कला थी, प्रदर्शन कला नहीं। प्रस्तुति कला थी। इसीलिए गमान की जीविक भवनी में भारी रुक्षाएँ और उसे सुरक्षा बनाने नाली थीं।

उनके एनिहाइक अमाल हमारे जाग गोदूद है जो १६वीं शताब्दी में गंग अंद्रेजो नाम के कला चूकने के क्षेत्र में अपनी कला और सूर्यिक कलों के संबंधों में कुछ योद्धा कलों पर विजय उठी गई। नाथ्य प्रस्तुतिकी पर अंद्रेजो राज था। प्रस्तुति और उनकी ओर भेद लगती है वाभाओं के उत्तर मध्यांतर और नाथ्यवर्ष के तंत्रों में फैल गया। हमारा नारीण यह हुआ कि जो नाथ्य कर समाज देवता के गांधी जीवन

की गहरा प्रस्तुति है उक्त उत्तरीजन की नाथ्य जन्म भवन के राजनीति।

जबकि उत्तर व उद्धो, उत्तर जाना भाव को बनाया है ग्रहण करना है।

'प्राह्ल' ने जीव निमित्त हाता आज अतक रंग उत्तरी यह दोहरा ग्राह्यप्रस्तुति करना लिया।

हमारे मनामान या मृत्युरार। नारी जीवा का भाव है।

मूर्दगार के उपर 'जा यनान स्व अनुग्राम गियाम' गुण भाव वाले उत्तर है।

मूर्दगार का उत्तर याको दा भम प्रकार के उत्तर व उत्तर के क्षेत्रों विद्युता जा या प्रकार का यादें करना उत्तर उत्तरी जीवन की गति उत्तर व उत्तरी जीवन की गति उत्तरी जीवन है। भूम्य प्रस्तुति उत्तर व उत्तरी जीवन की गति उत्तरी जीवन है।

104 / रंगपूर्ण : भारतीय नाथ्य स्त्रीदर्श

है। इसीलिए आराम में खोजिये हीं जिल की शनुदिग्दिश उगता रहता, अनुठान और उत्तम है। वर्ष की बातें यहाँ से इस परह नियमित रूप से के बहिरासी, और तो फिर भी आज आगाज में

के पिछे की हड्डियाँ से उद्धुत रहती हैं। यांते के लिए भी यहाँ चाहते हैं। इनके देना नहीं, और ऐसा वाहन से यहाँ आया है कि आराम में बिना एक लुट्ठन के दौर में बिना एक युद्ध के दौर में हड़ग बाट में होगा। यह आक बदले भावी अनुभाव में हड़ग अपने लोगों के हतों न भवत है जब हमारी उपरी दृष्टि संभव है जब हमारे के एक ग्रामाचिक अनुहाल होता है।

वे में कुछ यहाँ के लोगों का दर्शी जो इन के अनुभव से किए कर्मों के नाल एक आदित निवासी बन गये हैं। एक बुद्धिमत्ता के बिना नहीं है। एक की मनी आदितकामांचुरी का उपनाम सुन्दर लक्षण है। उनका अनुभव लक्षण है। उनका अनुभव लक्षण है।

कई दृष्टि ग्रामाचिक अनुभव कर्म के अनुभवों से बुद्धिमत्ता का विकृत और उत्तमों के अनुभव के अनुभवों ने किये पढ़ देवता का सम्मान आदि

की रहन प्रस्तुति थी। वही उन्नोन्नत आगाज बगतों चली गयी और उसे भज्वर होकर प्रस्तुति ने प्रदर्शन के रूप दर्शाया। इसके उदाहरण यह अनेक लाल की भास्तु भवता में स्तंखत है। और अभी उगता ब्रह्मन हमें उस अनुश से लेकर आज शक्ति के गमनीला, गमनील, वैग वर्तीमह उमदवधीं प्रस्तुतियों में मिलते हैं।

अबनी ज्ञानसंदर्भों न नानाक की जानी शुरू माप एक ही ग्राम से जाना नहीं, रखा जाता है वीर नानाक ही उम देता जाता है। अभीत् आभिन्नताओं द्वारा ग्राम की प्रस्तुति दीनी है, एवं दी द्वारा उग दस्तुतिको, उम ग्राम बो याहक बनकर यहाँ करता है। इसी नवमी महापार द्वारा यह अनिवार्या 'भावक' था और दर्शक 'याहक' इन दोनों पदों के बीच अदा। और अंधवाल से निर्मित एक ऐसा सेन्यु निविदा है। या जो हमारी वीरिय संस्कृत का वाण नवय गा। अभिन्नताओं द्वारा अनेक रुप तत्वों से निविदा है। मसूदा की मसूदी प्रस्तुति दर्शक याहक तक पहुंच देता है जो कोई ग्रामाचरण नहीं था। प्रदर्शन वा भावाचरण कार्य है। किन्तु प्रस्तुति कारण किसी ग्राम का कलाकार का ही नहीं है।

हमारे आदित नानाक ने यह महाव्यापुण्य व्यक्ति है, नानाकाचार्य, नानाकाचार्यता या नुवार। नानाकाचार्य और नुवार पहले दोनों भाग असर बदलकार है, किन्तु जैसा कि गंगाधरी नानाकर में प्रकट है नुवार ही बहु बदलकार है जो नानाकाचार्यता है।

नुवार के द्वारे में विजेयकर इसके गुण बनाने हृषि भरामुनि ने यह विद्वा है, जो भगवान् रुप ग गोप, याव और गाढ़िय का नानायशार ये विषय के अनुमान गियाकर उभल उद्योग कर रक्ष देते मूलधार कहते हैं। इस नुवारके गुण भागी बनाए हुए अस्तमि ने विद्वा है :

मूलधार का लभन यह है कि प्रारंभ में मांजाचरण कहे, उसमें इच्छा वाणी अना यकीन गत गत्तार है, वाल, स्वर, वाजे इत्यादि का पुरा लान ही, जारी प्रकार कबजे बदले में चक्र हा, आदि का अवहेल भलीभागि जानी ही अंक प्रकार के वर्णाचार कर गत्तार है, जीर्ण और शास्त्र का भलीभागि जानी ही, जीर्ण वाजी है। व एवं करने में अन्युग द्वा, कामर वा भलीभागि जानना ही, अंक प्रकार के जीर्ण का विवार देन वा है, एवं और शास्त्र का भलीभागि गमडाना ही, नानाय प्रस्तुति जी भव उपार्थी द्वलादीय जानना ही, पिरस और छड़ के निषय जानना ही, सब ग्रामाचार व्यजित ही, ग्रही और उपर्योगी जी वास्तु समझती ही, गर्भित वी नव नानार्थी या जाना ही, एवं, दोष, वर्ष, दैव तथा ग्रामकुल के लोगों के प्रामाणित जीवनार्थी जाना ही, अध्य का अर्थ करन जाना ही वात भलीभागि मुगवा ही। ग्रामकर गमधार ही, गमधार उगता जननन करता हो और उत्तरी ग्रामकर प्रन्तु तक नहीं हो। ये सब गुण विनाम हो रहे। नुवार का गवाना है। योग्य कानून की प्रस्तुति होनी है, एवं निषय सुनायार्थी ये गुण वीतवाये जाने गये हैं।

नेको। नाम सेनिहासिक कारणों से जब प्रन्तुति की जगह प्रदर्शन का अडाया गया हुआ वो दूसरे साथ प्रदर्शनकर्ता हमारे समाज में उद्दिष्ट हुआ। गती प्रदर्शनकर्ता एक और अमीदवार के नाम से जाना जाता लगता है। इसी ओर बैठक आज, जिसमें और प्रदर्शन के लिए दूलज और जीधी और इसी को मिलेगा को प्रदान किया।

परिचयमें नियंटर के डायरेक्टर अध्यक्ष नियंटर की ओर वहाँ की परंपराओं के बारे में अत्यधिक जानकारी देता है, किन्तु भारत में नाटक और नाट्य-प्रन्तुति दून योगों के बीच प्रत्युति का भाव हाल है, नहीं नियंटर की नई जैसी अवधारणा यही नहीं नहीं है। यहाँ एक किनीदकी, भारतीय नियंटर के में जिय अंत में नियंटर का डायरेक्टर है वहाँ कोई प्राणी नहीं है। भारतीय नियंटर में मुख्य कान से नियंटर के स्थान पर, वेटी भास्टर का ही स्थान है।

बम्हुता नियंटर का उद्योगाधिकारी कुण की है। विशेषता, वह हम कान और प्रन्तुति के भागाविक अवधारणा की उपज है। जब हमारे जीवन से पर्याप्तता पूर्ण और लालौल नियंटर की होने शुरू हुए। अपार्जित में जब प्रन्तुति संवध गान्धीजी के नियंटर हासा भला गया और सपात्र नियंटर वहाँ और वर्किंग चैम्बर्स के बीच नाट्य, तो स्वभावित नाट्य-केन्द्र में नियंटर एक ऐसी गतिशीलता की अवधारणा हुई जो नाटक और प्रदर्शन के विविध धरों, पहरों और हालों के बीच नाट्य-व्याप्ति कर सके, जोकि बीच गयात्रा कर सकता तथा नाटक और नाटक का नामने पदवों का एक नियंटर दिखा दे सके।

नाटक और उद्योग प्रन्तुतिकरण के लिये विशेष कला है नियंटर भाव्यम और साधन सर्वोत्तम प्रत्यय है। विशेषता नाटक के अर्थ का स्पष्ट जीर्ण पात्र के विवरण है। विशेषता का है, इस कर्त्ता और अभियक्षिका में नियंटर की दम्भुतता वह स्वतन्त्रता का है। भारतीय नाट्य का स्वतन्त्र गान्धी इस कर्त्ता में वहाँ जीवनी प्रवृत्ति है जो नियंटर की जीवनी में नाटक का ही गुण नहीं रहता है। वही यह प्रन्तुतिकरण के राष्ट्रीय कूटीं का ग्राहक होना चाहे।

वाचीन कला गवाये गए नाटक की प्रत्युति का आरंभ हुआ है, जब से लेटारहनों से नाटक नाट्य प्रन्तुति का एक ही समान अवधारणा है। प्रन्तुति के विविध धरों, पहरों वेटों एक सम्प्रदाय की स्थापिता होना। यह एक स्वतन्त्र विविधी आरंभिक है, उन्हीं हो जाती भी है। इन्हिए सपात्र और उद्योग जैसे गेंगे-जैसे आनंदिक मर्गील और एक सूखना, परमाणु संवेष दूसी जल गंगे, गेंगे-जैसे रंगभूमि, रंगमच, में बदलती जैसी गंगे, फलता यस्तुति के स्थान पर प्रदर्शन के कारण डायरेक्टर की अनियावेना बहुती बढ़ी गई। जब तक अपना 'संग' भी नव नाटक यह आपि अनुशासन, नियंटर, नाट्योहारी अवधारणा अधिक विश्वासी में जुड़ा हुा है। जब तक यह प्रन्तुति ना दर्शन करने शुरू ही आए। लगान और प्रयोग वर्षों में गहरायी होता रहा। किन्तु जब से परिचयमें दायत्रा के कारण यह और अभियक्षिका के दबाव

जगह प्रदर्शन का अडान
हुआ। यही एकांकित
लेवल, जीवन की ओर सर-
हि रेखा की मत्रा मिली।
नाटक करने वीच वहाँ
से एक और नाटक-
निरैक्षण्य की काई छोटी
मोटी विशेष रूप के लिये
ही है। यही विशेष से
मान है।

विशेषकर यह उग कल
नारे जीवन से परपरागत
व वर्षण नवध गम्भीर
उगो और व्यापकी से
ऐरी जक्का एवं व्यापक
में, पध्नों द्वारा ज्ञान
कर स। यथा नाटक आंच
है, जिनका मालिम
की राह पर आप क
देखते ही प्रभुता शुश्रृष्टि का
धर्म ऐ बहुत ही अवेदन
किया। प्रभुता के

हुआ है, जब ये अद्वैती
प्रभुता के लिया आयी,
नुक्का तिक्की आंचक
त में जैसे-जैसे अवारेक
बैसे राम्भुत, संगम व, में
के कारण दारकर्ता की
जा रही थी यह लड़ी
में संघुत हुआ है। जब
प्रभुता अपने न गहभावी
और अवधारण के द्वारा

से, रामाचिक जीवन से धर्म वा भाज, पर्व, उत्तर, लोहार का बोध कीण होना
गया और देखा, उत्तर, लोहार के इन अदिक्षाएँ दृढ़ होता चला गया, तब ने
स्वभावन भूमि की जगह एक प्रभुता के जगह पर प्रदर्शन के कारण नाट्य प्रदर्शन
में राज, याज, प्राप्ति और व्यवाह से युक्ती वापसे जो जनों के बहुती चली गई।
फलतः अदर्शत में दिक्षान का अहत्य चला गया। वह कल्प वहल भास्मिक
प्रश्नामो और प्रश्नामों से पारम्परिक भौतिक विषय के विषय लक्ष्य ही है। जीवन
धर्म, उप आगे अग्रह। इन से प्रकाश में जल रखिल्य, अवान प्रभाव आदि शिल्प
नामलागे द्वारा यहाँ किया गया रहा।

प्रभुता से वज्रलीदामा वाल्मीकि रंग पर है जो दर्शक, ग्राहक गमन का इन्द्रजित
धर्म से भूमिका होता है।

भौतिक: यही कि यह जीवन के दूसरे अपने देश काल वा स्मृति से वापस लौह है,
अपने वायु गुण-स्वित से। यह भूमि किये हुए है, वह गमन रहा है। प्रभुता में यही
दिक्षान वीर दिक्षान दो, जो प्रयत्न है कि वीरत दण्डाल ने परे, इसकी सीमा से
अग्राम अंत बहुत है। तन्म देवत देव वापस का अनुदान है। इस सत्य का अनन्त
भाव व वहा स्कृत में कारण, स्वयं जागा संदर्भ में न्यायित कर पाने के कारण
है द्वारा 'पात्र' वालों-परायी है। यह नाम्भीरण की भरतेन्दु (आगाम) ही
है द्वारा 'पात्र' वालों-परायी है। इस वायुमें से भरतेन्दु (आगाम) ही
प्रभुता का लक्ष्य है। किंतु यात्रीप्रभु का लक्ष्य वह जोड़ भूमि नहीं है, वही
प्रभुता का लक्ष्य है। इस प्रविष्टि वा आयोगी की से होता है, इस विषय में कि
अपने पाल पर लूँ रहता है। प्रभुता वीर व्यक्ति द्वारा वीर व्यक्ति द्वारा वीर व्यक्ति
प्रचलित हुआ है, जो वीर व्यक्ति द्वारा है, अपना नाम्भीरण की काई किया विषयों
होती है। किंतु यात्रा हुआ हुआ वीर व्यक्ति वीर है।

प्रभुता की यह प्राचीना, प्राचीन अनुष्ठय है। दर्शक, निर्देशक, भीमता,
प्राचीन वीर यह अपने जीव के गाय उस अनुष्ठय का नामता रखते हैं। इस
प्राचीन कर्त्ता प्रविष्टि में अपने अपने मुख्यों में वाहर आते हैं। यह जीव में
प्रविष्ट महात्मानों नाटकार, अनिष्टा द्वारा नाटकीयों, एक स्मृति बुलाई के हृषि में
है। यह बुलाई आप जीव के द्वारा दर्शक सपा व कर्त्ता है। इस वाहर यह
कर्त्ता जो भूमि हुआ प्रविष्ट यात्री अपने जीव द्वारा वीर व्यक्ति द्वारा, या यह जीवन
निर्णयों की सीमाओं के द्वारा रहता है। यह यात्रा में मनुष्य ही यापन है और मनुष्य
का शरीर, उमरों भव्य, उमरों आंचक भाव वही यान उस यात्रा के पार्श्व है।

नाट्य नहीं यह यात्रा है कि यह विषय विषय विषय है। यह यात्रा वह समूण था।
उमरों आंचकामा, नाटकानामा इवं द्वारा नामानं नामानं, नामानं से अभिभूत था।
इस नाम ही नाम यात्रा का यात्रा गया। अपने विषयवादी और आगामी वीर नाट्य-
प्रभुता से दूरी और दिक्षान करना था। यह दूरी का नामुन भी नामुनी और
दूरी के वायु विनाम्यहु का कोई आवश्यक नहीं था। योग्यमि पर अभिभूत यात्रा

जैव (ज्वला) लिये

इन दोनों के
आता है, एहसास
एक विशेष प्रका-
रिक आनंदन जैव
जैविक की उत्तीर्ण-
यह दृष्टिकोण से ही
कहा जाता है। ऐहसा-
भी होना है इन-
प्रकार के दुष्प्रभाव से
नांवा पाठ होना
महत्व पूर्ण है।

इसके बाद
गवाह गवाह
उम्मीद होती है।
प्रीति के दृष्टिकोण
विशेष रूपी से
प्रशोचना होती है।
इस दृष्टि जैव
दर्शक हो जाने
जाता तब नांवा

की शुभिकारी द्वारा जो भाव वरमता था वही सहा ही दर्शक के पात्र में भर जाता था। इस वीं भी पाठ गाकर ही कि जो रम द्वयक के पात्र ने वरमता द्वारा ही वज्री समान रूप ने रंगभूमि वा भी वरमता द्वारा है। न दृष्टि का मान। प्रस्तुतिकरण वरमता ही बो अधिक या दर्शक-यमाज भरती था। जो संवेद नम और पृथ्वी वा दृष्टि, जल और वायु नहीं है, यह और पात्र का है, वही परम्परा यावद्य नाटक अभिनेता, प्रभुतिकरण और दर्शक का है। इह संवेद तीव्र नहीं है, योग्यता गंजलकार है। जैव-संवेद, विशेषज्ञ, घट। इस घटह प्रस्तुति एक आवामुख्यि है जिसमें दर्शक, आभोना, दूरा यमाज एक साथ में दर्शक किसी पर्व, उम्मीद और भद्रामाद का त्रय होता है।

जैवपात्र विशेषित उम्मीद संवेदा भिजता है। न वह सामूहिक भव्य है, न वृद्धि और वर्षे के पारे जाने का यंकार। अभीनु उपनी सारस्वती निमेल है। यह अच्छे कि निर्माण निर्माण लूप में भव्य के प्राप्ति विशेषज्ञ अवधि भी है। पर यह विशेषज्ञ स्थाना अलग-जाता विशेषज्ञ रूप का है। कला और संस्कृति में वानर-अलग व्यक्तिगत विशेषज्ञ नहीं है जिनकी सामूहिक फैला और विषयाली भी है। नांवा का वास्तविक विशेषज्ञ नहीं है ही नहीं, इन्हें सूखे सप्तर्ग सामाजिक नहीं है। विशेषज्ञ वास्तविक विशेषज्ञ का जोड़ अरिष्टक नहीं है।

जैवपात्र की विशेषज्ञता है कि यह आवामाज चाय में एक अनुभव को दुर्घट यनुष्ठान से अलग करती है। और यमाज से यनुष्ठान को अलग नहीं है। कानूनिक दुर्घट और यनुष्ठानी अनुभव होते हैं। इनी अनुभव के आधार पर यनुष्ठान द्वारा यनुष्ठान में लपें भीनर और अपने मूल पर एवं और भूमीका जगत की विवरण है। इस पर्व श्वीर पृथ्वी की डाकारक दृष्टि किस ग्रामाजिक विशेषज्ञ का एक मुख्य काम है।

हमारे वास्तविक नाट्य में इस पर्व और यनुष्ठान की हटाने के उद्देश्य से ही 'पूर्वेण' का इतना व्यापक विपर्यास है। अभिन्न की सनुष्ठान, किस उम्मीद वाले के बदला जाई गायारण कर्म होती है। साता 'पूर्वेण' अनुभाव यनुष्ठान के दर्शक काम ने यादें बनाने का ही पहचानपूर्ण व्यापार है। विना दर्शक की विशेषज्ञता या विशेषज्ञता ही नाट्य नाट्य प्रस्तुति का युगान्तर के ही मकड़ा है? जोनी की आवाम दर्शक कीं और किंसी पूर्ख यथा?

हमारे अपने नाट्य प्रस्तुतिकरण के प्रारंभ में एक गोण्डारिक राम विशेषज्ञ का अनुदान किया जाता है। पहले नाट्यादि विशेषज्ञ नाटक यात्राभ हाग की मूलना दी जाती, किस नायक और राढ़क रंगभूमि में आकर यथाम्भास चैठ जाते, गंतों-यात्राभ होते। मूदद, वेणु वीका आदि नायक तनेकीं (कांस्तेन ली) के नूत्रर यांकार के साथ वह उत्तीते हैं। और इसक बाद नाटक के यूथेरट का उपायण होता है। उक्ते पक्त यार्थ स भंगार में जल लिये हुए। ०१ अंगारधर होता दुर्घटी और

पाप से भर जाता है वहाँ मायान
का दरगता दुःख का है उन और
माया पर्याप्ति हमें
जीवन की ;
उपर्युक्त आविष्कार
को अद्यता
की दृष्टि है।

को मनुष्य
भी कुछ और
मनुष्य के अपने
एवं एवं और
एक मनुष्य

इदेह से दी
उसके दर्शक
मनुष्य की होने का
मानिए द्या
ता है जीवनी

के रण विधि-
पर्याप्ति होनी वो
याम बेड जाते,
जाते) के दृष्टि
उपर्युक्त होना;
वो दृग्गे भ्राता

जर्जे (छवज) तिथे हुए एक दुगना अंजधर, इन दोनों को पारिपालिक कहते हैं।

इन दोनों के साथ सूचिता न मंच से पांच गग बढ़कर, विलकृत दण्डों के समीप आगा है, वहाँ नमूने यातों सूटिकर्ता की दृश्य होती है। इन पांच गग वहाँ के छह
एक विशेष पद्धति की अभिनवलभ्य होती है। फिर वह मुख्यार यथार ग जल
निकर आनमन प्रशाणादि ने पर्याप्त दी जेता है और विज्ञ तो जर्जर करने वाले
ध्वनि को उनोनिना करता है। तब विन्न-भिन्न देवताओं की व्रणास करता है।
यह बाहिने पैरों प्रभित्य मंशवनों, ब्राम पद के अधिनय से पार्की जीवनाम
पूर्ण है। यहाँ प्रदृश का दृगर रक्षी का पद चयक्षा जाता है। एक गृह्यक एवं
भी होता है। उस प्राणाम देने के लिए वादिते पैरों की वासित हक उत्पन्न कर दिया
जाता है। डग भवित्वा देवह जड़ा की प्रणाम करता है। फिर निपित्तुर्वक नाम
प्रकार के पूर्णों ने वर्ते जीव दृढ़ा करता है। फिर याद-दर्शन की जीव पूजा और नाम
नामों पाठ दीता है। प्रथमक शुभकर्ता की शमाप्ति परमार्थ-परिवर्त्तनों एवं
प्रस्तुति प्रदर्शन होते हैं और उब जीवों पाठ समाप्त होता है।

उपर्युक्त वाच यह ल्लोक पाठ हो। है, जिसमें जिल देवता की विशेष पूजा के
अवधार एवं नामक गोलों वाले रहा। होता या जिया उल्लाप पर नामक हो रहा होता है।
उनकी सूचि होती है। उब चारि नृत्य शूरु होता या। चारि वा प्रदेश पार्की जीव
प्राप्ति है उद्देश्य से किला जाता या। कपोकि पूर्वकाल में कपोकी जीव ने इम
विशेष भूमि से पार्की के साथ कोदा की थी। चारि के बाद महाचारि, निर
प्रगोचना होती, जिसमें नामक वी विषयप्रबन्ध आदि रामी जाने वना दी जाती।
इस तरह जब न दृष्टिव में आये हुए गमी मनुष्य अकिञ्चने सामाजिक, ग्राहक और
दर्शक हो जाते हों। डाकी मनःदिग्दि में एक विशेष रागामूला का अवलोकण हो
जाता तब तादृश वर्णानि चुक्क होती।

वर्तमान नगय में मनुष्य जब उत्तरीनाम अकिञ्चन से जी अगे 'दिन्दिविजुअल' (समित्य
हकार्द) होना चला जा रहा है तो इसके लिए किमी प्रस्तुतिकरण का इंगेन या
रातोंदर बनता कैसे गया है? इसके लिए विन्वय है कि मनुष्य की जनोत्त और
साधारकार उनकी विरासा में कराया जाय त कि नगके अकिञ्चन में। इसके दृष्टियों
में आज के व्यक्तियों का दर्शक बनने के लिए यह कठोर प्रयत्न किया जाना चाहिए। लिं
उत्तराको वह भग्न औहा हुआ वृक्ष निर्मी तरह दूर कि कोई भी अनुभव और अनुसृति
दिखती और अकिञ्चन होती है। यह नभी गंभीर है जब अकिञ्चन को उत्तमी परंपरा,
उत्तमी गति गति, उत्तमी संस्कृति (भर्म) से जीव दिया जाय। इनके लिए आवश्यक
है। कवाचन के ही मंदर्भ में परवरा से भूमि की जांड़ा जाय। मनुष्य अगर वरंग महीने
है, विवाह और आवश्यक है, दृश्य से प्रत्यक्ष गे अद्यत्य और अत्यत्यत (हमारे

यात्रा में भर अभ्यन्तर
होती है जहाँ मानव
के विचार का हुआ
कहा है, जल और
गांधीजी की विद्युति
का बोला, एवं
समीक्षा अद्वितीया,
जो आप हो रहे।
भाव न, न गुह्य
एवं गुरुत्व ह कि
विचारणा स्वामी
अभ्यन्तर का दृष्टिकोण
विश्वास की है।

को उत्तर मनुष्य
परिवर्तन कुरुते और
मनुष्य के अपने
उपर्युक्त और
नीचे। एक मुख्य

दृष्टि से ही
इसको धर्मका
सुख का दर्शक
माना जाता है। शीघ्रता

के रूप विभिन्न
मानवों होते हों
जाते हैं जब तक
उन्होंना जाता

जब (ज्ञान) जिसे हुए एक दृष्टि वर्तन्ते, इस दोनों को फरियादिका कहते हैं।

इन दोनों के सभ्य सूचिपाठ में ये गांत पठन वृक्षक, विश्वाल दोनों के गमीव
आता है, वहाँ वहाँ यानी गृहिणी की तुमा होती है। इस गांत पठन वृक्षन के लिए
एक विश्व पकार का विचारणी होती है। ‘पर तड़ दूसरार दृश्यार में जल
निकल आनगन प्राणाणादि में विविध हो गेता है और विष्णु ही वज्र वार्षो वानि
हाव फो डृश्यांग रखता है। तब विष्णु-मित्र देव इति लो प्रणाम करता है।’ है।
यह दाहिने पैर के अभियाय से उत्तर ज्ञान, गांत पठन के अभियाय में पार्वती ज्ञान रपाम
करता है। यहाँ गुरुपाल का गुरारा रथी का पठन समझा जाना है। एक नर्तुक पठन
भी होता है उत्तर एवं दक्षार उन के लिए दाहिने पैर को नामि तक दर्शाया जाते
जाता है। उत्तर भगवान से वह दक्षार को प्रणाम करता है। तिर विष्णुवेल भगव
पकार के गुरुओं में भजन की गुरु जारी है। फिर वाय-वर्षी की भी गुरुता और व्यव
नादी एवं ज्ञाना है। पर्याकरणाकारी को समर्पित वर वाय-वर्षीयवाक लोग व्य-
पन्नु वृक्षकर विनिवेदन होते हैं और तब यादों गाढ़ यामाल होता है।

उत्तर वाद यह उत्तर वाय होता है, जिसने देवता की विशेष गुणों के
अवगत वर भास्तु खला जा रहा होता यह जिस वरमन पर नारक ही रहा हीना है,
उत्तरकी स्तुति होती है। यह लाति तृतीय गुरु होता था। चारि का प्रथम लार्वों की
प्रोतीने उद्देश्य ते किया जाता था। व्याप्तिक पूर्वकाल में कभी जिव न छत
विशेष भंगी एं पार्वती के भाष्य लोडा की थी। लाति के बाद महानार्दि, फिर
प्रगोचन होती, विगती नाटक की विवरणरूप आदि सभी वर्तने बातों दो आई।
इस तरह लव एवं भृष्मडा में आज दूष सभो गमन्य व्यक्ति में भासानित, ग्राहन और
दर्शक हो जाते और उनकी स्मृतियाँ में एक विशेष वर्णाल्यकरता का अवनरप होता
जाता तब नाद्य वर्णनि शुरू होती।

वर्णगान भवति म समुद्रा जब उत्तरार्द्धा व्यक्ति से भी आगे ‘डॉडविजन्यवल’ (आंतरिक
द्वारा) होना जन्मा जा रहा है तो उसके लिए किसी प्रस्तुतिकरण का इतने का
साधारणता बनता बैठे गंभीर है? इसके लिए विनिवेदन है कि गमन्य की प्राणित और
माध्यमकार उमको परंपरा ग कराया जाय न कि उसके व्यक्तित्व में। दूसरे उपर्युक्त
में जान के व्याकरण को वर्णक बनाने के लिए यह कठोर व्यञ्जन किया जाना जाहिए जिन
उत्तरों पर भ्रम, विद्या हुआ। कृति किसी न तह दृढ़ कि कोई थी अनुभव और अनुभूति
दिव्यी और व्याप्तिकामना होती है। यह तभी गंभीर है अब व्यक्ति जो उसकी परंपरा,
उसकी गतिशीलता, उसकी मंत्रकर्ता (धर्म) से जोड़ दिया जाय। इसके लिए आवश्यक
है कि वर्तनाना करने संक्षेप में उसको बांधा जाव। गमन्य अगर परंपराहीन
है, विश्वात और अस्वाहीन है, दृष्य से प्रवद्ध गे अद्वय और अपलाप (हमारी

विश्व हर समय अक्षे के द्वारा प्रभावित के चिना । ॥५॥ अतः
दिवसवीरी बल न-

आज का ॥

बहु भी प्राप्ति देने के बीच एक अप्राप्ति रोकने ही जब
बातें पाता है उस आपका का अप्राप्ति, जिसका लोक
दर्शक के रूप में लड़का है ।

अस्तु विष्णुगद्यही । व्याकुन्ति नीं लोही व्याप्ति व्याप्ति, लोही अपना आकाश नहीं
रह जाता, केवल एक व्याप्ति व्याप्ति अपना अस्तित्व का व्याप्तिलाये करते रहता है ।
यही शूद्ध व्याप्तिलाये व्याप्ति प्रदेशी गति का अपना अनुकूल मिला, और उस शूद्ध
मनोव्यवहारी व्याप्ति द्वारा की दृष्टि दिया । केवल आंगिक रूप से सार्वत्र जड़ पर दुरी
वाप से न्यायामाः पदे भी शूद्ध था ।

जब इस भाषण के अन्त में अपनी व्याप्ति व्याप्ति व्याप्ति की त्रिपो

नहीं अनीय और शूद्धी के गहरे गहरे गी अपनी, गति, अप्राप्ति है ।) में दूरा हुआ है,
गिरने है । वह अभी भी व्याप्ति के दर्शक नहीं हो गए । वह सदा दर्शक में
'उद्दिष्टव्यवल' हो गए रहता, वह गवर्ते और व्युत्पन्नादी तोर पर अपन आप से
अजनकी गये गए ।

दशक हीन के लिये, यह समाज शूद्धि, एवं समाज आकाश, गे दीनों एवं
जनिवाये है, अपनी 'हृषि' के ३१, 'व्याप्ति' के ३१, और उही व्याप्ति रहे है । यह
ओं किसी का होता है, यही व्याप्ति का वहां और दूसरों की नीड़ समाज
है, और उग व्याप्ति के रूप दर्शक व्याप्ति रहता है ।

अस्तु विष्णुगद्यही । व्याकुन्ति नीं लोही व्याप्ति व्याप्ति, लोही अपना आकाश नहीं
रह जाता, केवल एक व्याप्ति व्याप्ति अपना अस्तित्व का व्याप्तिलाये करते रहता है ।
यही शूद्ध व्याप्तिलाये व्याप्ति प्रदेशी गति का अपना अनुकूल मिला, और उस शूद्ध
मनोव्यवहारी व्याप्ति द्वारा की दृष्टि दिया । केवल आंगिक रूप से सार्वत्र जड़ पर दुरी
वाप से न्यायामाः पदे भी शूद्ध था ।

जब इस भाषण के अन्त में अपनी व्याप्ति व्याप्ति व्याप्ति की त्रिपो

न्यायामाला व्यवहार और व्यवहार से भर जाय ।
हमार अपने सादकों ने जी व्याप्तिलाये रहने दिया मात्र है । व्यापक अभिनव
में अस्तित्व, शूद्ध और न्युयाया आपाता और अंतिक अस्तित्व का जी इनका
प्राप्तिलाये है उसके पीछे व्याप्ति रहती है । यह शूद्ध और अपाते व्याप्तिलाये ग
अपीलिंग द्विनियों की अपनी जी जाति आदि इसे उभयनी समूह । वो शोधे और खोक
हाथ दूर दूर ज्ञान के जी जाता है, जहां गव रामायन है, गव एवं ही आकाश के
नीचे एक ही व्याप्ति पर विश्वव्याप्ति एवं समान शूद्धतुल्य है ।

जब इस प्रथमा, व्याप्ति और व्यवहार नीं दी । यही है, और अपनी भूति और
जीवना वा प्रसन्न द्वितीय दी, जो यह गति एवं समान ही है । अद्वितीय न्यायामाला
रूप व्यवहार में ज्ञान प्राप्तिलाये रहती व्यवहार जी इनका जाँड़ व्यवहार गया तो वह
अपनियन (जुड़) ही रहा र उभयों द्वारा दृष्टि दिया । यह जाता जाता जाता ही रहा है ।
मानवीय और प्राप्ति अभिनव की अपीली ने सुखद में पिछे पिछे अभिनव भला
दर्शक को मौहा मौहा ही मकता है ।

आज का अकेला व्यवहार (उद्दिष्टव्यवल) जब भी कुछ रहने जायगा, जोड़े रह
गए ही, जाहे उगको हीने वाली फूली ही या दीर्घ गामान हो, वह स्वास्थ्यके
इस द्वारा एक उपयोगी भाव से ही देखने की मिलत है । वह उसके महान् रूप में
है कि वह अपेक्षा है, अपनी इच्छाओं को शूद्धि के लिये उठाना है, उसलिए इस द्वारा
उपयोग व्याप्ति व्यवहार है ।^{१२} उपर्योग का यह जो शूद्ध और भला का
शूद्धतुल्यादी भाव है, इसके जहां जहां रहे रहे नहीं रहता । उग संभवतः एक व्याप
क जिए वह अपने नीरी सप्तरी, अनिवार संपाद का विश्वरण हो ही नहीं पाता ।

राज्यीय

होगा । अतः

है, यह उत्तरा

प्रवासीय योग

गया है । इस

वह नित तुलन

जो दोष

दिलाते हैं, व

पुण्यवृत्ति द्वारा

दृष्टिलाय आपना

प्रत्यक्ष है। वह दृष्टा हूँ था है,
जिसमें। उस सदा राति। पे
री तो वह अपने आप में

न आता था, ये दृष्टों चल
कर ही गए न रहे हैं। यह
ऐसा कुपीरी की ओर चला

कोउ भगवा आकाश जहाँ
उत्तराखण्डी रहा है।
कुल भित्र, और उस उत्तर
में भाव वह एक पूरी

है जिसका जो अपनी
भूमि है विश्वास अधिना
क अभिनव नहीं है। उसका
उत्तरी गोपनिय दृश्यमा ऐ
स्मृति का जीव अपने लोक
है, तथा एक ही आकाश के
है।

तहीं और अपनी पूरी ओर
विआकृत युद्धामरणों
बोर्ड चलाना चाहे तो वह
मना जाना ही सहज है।
चिर एक व्यक्ति। एका

एक देवने जाना, जहाँ वह
मना ही, वह इस बात से
है। एक उसी गमकार में
जाजहाँ, उसीमें, हर नवंश
एह जो एक और एक का
है। उसी मनवाँ एक ताप
वस्त्ररण है। ही नहीं पाना।

जिसे हर यमग अपने अस्तित्व के भीष होने का भय है, वह सबकं नाय एकनाय
कैसे हो गए। है ? एकाकार दृष्टि विना और दर्शक नहीं हो गए। और दर्शक
के विना ! ! ! प्रस्तुति करने संभव नहीं। दर्शक विना प्रदर्शन ही संभव है। प्रदर्शन
विना दृष्टि वल का लोना है अगली भाव का नहीं।

आज यह एको लिंगहर तिवस प्रगः अधिक दृष्टि से कृपन व्यवित है। और
वह भी प्रायः 'प्रेम' के तिर्यक-प्रदर्शन दृष्टि वल है, उभये भावों और वलह
के बीच दृष्टि अपेक्ष व्याप्ति खुदी होती है। वे बाक्त्रा तो विनां सामना होता है दृष्टि
से जानी है कोणाल। विना कमाया हुआ एवं और देखत्वयां पूर्णते दृष्टि
वान् अन यों वह अधिनि है गहरे और दृष्टिकृत्यामाजक होना जो नहीं आहुक।
इस अनियं वा भावा इत्यन् अभिया एवं जी के दृष्टि। है, कला या गृनि के पासें भी
धन, तिथि और विनेक लगा दृष्टि है, जो स्वकारन् कर्म नहीं देता मनदा।
दर्शक वाला है वहाँ विद्युत्ता वह जो महार्मा नहीं होता। वे बाक्त्रा अपने भव
(प्रस्तुति) ने दृष्टि देगा।

प्रस्तुति-प्रदर्शन के पूर्ण में पूरे अमृत का अल्पना जनिवाय है। दृष्टिकृत
लिंगहर में अपने वह तात्त्व + अपना, रामाय और नहीं है, तो उसका प्रस्तुति-प्रदर्शन
कभी भी दर्शक दृष्टिकृत नहीं हो सकता। वह प्रदर्शन मात्र होकर नहीं दृष्टिया। वह
किनता भी ईमानाय, चटक-चटकायून कभी न हो, वह प्रभाव तुम्हें हो देगा। अल्ली
प्रस्तुति-प्रदर्शन वह है जो अकित की दृष्टि बना दें। अस्ती दृष्टि बन है जो 'एकल'
की अधिनि... दृष्टि है। 'एकल' भावें जो कोई 'एकल' नहीं होता है, अशोक-नामवान
वा एक विदेशी उम्मीदों पूर्णिका क अनुकार न हो काम उम दिया दै, और जो
वह कर रहा है, वही कर्मी बाला 'एकल' है। पर इसके लिपरीय अधिनियं वह
है जो किसी वास का अधिनग नहीं है, जो गाय लगोंकी जी जड़ी जा रहा
है। 'प्रकृत्यां वायं प्रधान है, वांगमय मंकर और अभिनवस प्रधान है। इसमें
अपाप सुविद्या के लक्ष्यों से दूर अधिनियं हैं।

रंगनूर्मि लल वस्तु एक रंग रंग-नया, प्रयोग होते हैं भी यदा याराँ के
होता अस्त्रवाले विदेशक प्रायः वर्णों की गारंगा तो विभिन्न सामग्री चलते
हैं यह उनका नाम अज्ञान है। इसीम अन्दर जो अर्थ है, अ। ५००, अर्दोन् विदेश
प्रस्तुति वह योग। इसी योग के ही नंदमें हमारे यह प्रत्येक प्रस्तुति जो वर्णन गाना
करता है। उग-जह प्रत्येक प्रस्तुति, जो अपेक्षाभाव और विनान यह आवाजी है
वह नियं तुमान होता। इसी अद्युत्तीर्ण वाला होता।

जो लोग प्रधान की परायता से विद्युत्ता भावकर प्रयोगवादी कर्त्य का अहंकार
विश्वास है, उसका प्रयेक प्रदर्शन अवसावतः उनके पहले प्रदर्शन की जड़त्वा
पूर्णत्वात् होती है। ३०१। प्रदर्शन, उनके अहमाय वा ही दृष्टिकृत होता। अहंकार में
व्याजत आहुत्त होता है। व्यक्ति उस अहंकारपूर्ण दृष्टिकृत का, ३१। दृष्टि-वहलाय,

तथा मनोरंजन मार्ग समझाता है। उसके बहुहोषण में गान्धीजी-
नाट्य अनुसंधान के निरीशक दृष्टि अनुसारी का काम लिया जा सकता है और उनके
सभी गिरजाएँ भी काम।

इस प्रत्युत्तरण में एक बुल भवितव्य है कि जला की आपनी एक
गिरजाएँ इच्छा है। हर वर्ष यह जालगा। निश्चिन्त लड़के और बयांदाएँ हैं।
रंगभूमि जाला के नाम से अड़ा जान के गान्धीजी व्यक्ति है, उसे एक प्रीत्युत्तर
विष्णाम के माध्यम से कला का अभिनन्दन होना चाहिया। यह भाव है, यह रंगभूमि
में आया हुआ प्रश्नोक्त व्यक्ति अपने आप ने पूछ दुखना जल्द देता है। वह
अभी, जब व्यक्ति अपनी रीढ़िया में पूर्व है। दूसरे होना है। वह जल्द, जब व्यक्ति
अपने अड़ी-उड़ी वीर्यमाने वाले अपने दूसरों से जुटता है, अर्थात् जानकिरन, फूर्ति
तामाजिक होना है। इस संदर्भ में प्रश्नोक्त अभिनन्दन (दृष्टि दुखना जालगा) होता है। वह
चाहिये किसी जाले द्वारा दर्शन का क्षमता न हो। द्रिग्भाव का क्षमता है उहम सुकृत
मनुष्य का अवश्यक। इस जाल का नहीं पूछा है कि दर्शन क्षमता रीढ़िया में बाहर
दिक्कलकर् भव्य स्त्रीमातृ कर्तव्य वाला है, अर्थात् उभयं हो जाना होता है, और
वही स्त्रुति, प्रस्तुति है, जो तब प्रदर्शन है।

प्रदर्शन

1. अनेक नाटक गिरजाएँ गुरुवारम्।
2. वार्षिक, १९५५-५६।

पिठोने
के नाम्य
निया।
सच्चाई
रहा जा-

यत्
लौ
स्त
है।
इ
कम से

प्रश्न है
काल तो
का मम
मामाल
है
तनाव।
जीवन
लकिय
परिवर्त
वर्तन।

के उदाहरण में राष्ट्रीय-
समकान हैं और इनके

। कला की अपनी एक
देखभौतिकीयता है :
है, जिसमें सारिशुल्ल
पह आन है, तो देख-
ना चाहिए है । वह
वह जन्म, जब व्यक्ति
स्थान आने के बारे में
चाहत है । ही वह
अपने है उसमें एक नज़
अपनी अपनी ने अन्तर
में देखा है, और

समापन

गिल्ले गुल्मी ने कुछ जीव विचार कर रखा, वह इसीलिए कि अपने साथ
कि नाट्य जीवन और रंगदृश्य की सच्चाई का अर्थात् आज्ञा में देखा और अनुभव
किया । जिसने का प्रयत्न भी उसी विचार में किया कि उसी ने निष्ठा भी इस
राज्यार्थी की लपाईयना है । उसी अमझ में लात कि वह अनुभव बनावें भिन्न नहीं
रहा जाएगा ।

यह रंगभूमि-अनुभव सबक पररपर भृड़ने के लिए है ।

जैसे दूरामा-विवेत्र का अनुभव सबको वरस्तर टोड़ने के लिए है ।

रंगभूमि अपनों संस्कृति की है । उसमें यह स्वतः और भीतर ने अपना हुआ
है ।

दूरामा-विवेत्र (वर्तमान रंगबंद और नाटक) हम पर आहुर के गुनियोंगत
तंग से भावा हुआ है ।

प्रस्तु है, रंगभूमि विल मधार, देश, काल की वस्तु है, वह समाज, देश और
काल तो जीवन में है तभी । जब तो एक समय-संग्रही जीवन दर्दी, जीवन अधिकान
का समय-संग्रही रहा था । वह एक जीवन सूखा था । वाज रंगमंच (पृष्ठें) की
साथें प्रारम्भ से उत्तमा बया संवध ?

हमारा उत्तर यह है । नुस्खा दो प्रकार के होते हैं । एक नमम इसका अधिकान-
स्मक । अद्यता एक माध्य, जो स्वयं अपने निष्ठ कामना का निष्पत्त होता है ।
लैंगिकाय यह है कि जीवन ना चरम मूला पा साथ्य लवं भीतर ही होता है ।
नेतिन जीवन वैष्ण विद्वन्मनु नहीं है । उसमें देश-काल परिविलित-अनुगार निरंतर
परिविल जीवन रहता है । परिवर्तन से ही भावनों से भी रथभावनः गरिवर्तन होता
चलता है । भावनों के परिवर्तनों के ही कारण वीति हुए भीवन प्रकार अवना जीवन

के उद्दरण्य में गढ़ीय-
सम्प्रदाय के और हमके

। कला की अपनी एक
दृश्य ओर लोकोच्चार है ।
है, किन त्रिभवित्युल
यह भाव है, जो सं-
गम बनाता है । वह
वह जन्म, जब वर्षिक
स्थान आवर्तक रूप से
जाग रहा है, वह
अर्थ है इसमें एक नव
जन्मीयता जो आठर
निश्चय होता है, और

समापन

विद्वान् गृहों में नीति नामनावन्दार कर रहा, वह शार्मिणि जिस आनंद सम्प्र
के नाम पर जीवन और रात्रियों की भवताड़ की अपनी आपों में होता ही, अनुभव
किया । जिसी का प्रवन्त भी दो विश्वात ते किन । त्रिमग्नि निषेधी इस
रात्मार्ह की उपादेयता है । इसी समझ में लगा कि यह अनुभव बंदाने किन, नहीं
रहा जाएगा ।

यह संग्रह-अनुभव सबके पररपर जृड़ी के लिए है ।

वैसे द्रामा-गिरेटर का अनुभव सबको परस्पर तोड़ते के लिए है ।

संग्रहीय अपनी संस्कृति को है । उसमें यह स्वनः और भोवर में उपराहनी
है ।

द्रामा-धियेटर (दर्शकान् रंगमंच और नाटक) हम पर बहुत गे चुनियों निन
तंग हो जाता हूआ है ।

प्रथा है, संग्रहीय जिस समाज, देश, काल की वस्तु है, वह समाज देश और
काल जो योग्यता में है तरीं । यह एक समय-सापूर्ण जीवन दर्शन, जीवन-प्राधिकरण
का समय-सापूर्ण स्तर या । यह एक जीवन मूल्य या । जीव रंगमंच (धियेटर) को
जाभान्य घारणा में उत्तमा क्या संवेद्ध ?

इसमारा उत्तर यह है । क्षुल्य दो प्रकार के होते हैं । एक जरन, दूसरा साधन-
त्वन् । अपनी इक स्थिति, जो स्वयं अपने लिए, कामना का विषय होता है ।
अभिभाव यह है कि जीवन का चरम मूल्य या साध्य तत्त्व जीवन ही होता है ।
लेकिन जीवन बोई बिक्रवस्तु नहीं है । उसमें देश-काल परिस्थिति-अनुग्रह नियंत्र
परिवर्तन होता रहता है । दीर्घियोंने ही नायनों में भी रखभावनः परिवर्तन होता
चलता है । याधरनों के दोनों ओर ही ही कारण वो द्वृष्टि बोतन प्रकार अभ्यन्तरीन

जितन; यह
से जीतन पड़

अपनी ग
मारी अपनी
अपनी प्रणा
के नगरन

होते ह
हैं, उसमें यह
गदान का द
नोन हो जाए
चीजें से बग
में दूर कोन
वास्तव वह
बोले हो जाए
आग आ जाए
करना यह क

है नि लिख
करन व
हात याता।
उनीं। जली ह
कर हमें वह
कमी के लिए

उभान
मन्त्र भास्तीय
गान्धारी मे
रंगानि
मुख्याल ला।

मुझे भूत मे व
म हो जाए ह
संसदनी मे रिय

ल्यादेर हमारी अद्य यही रोता। हमारों के अनुभार पिर भी हमारा नहीं यह
जीवन हमारा है जो हमारी अन्मा के लिए प्रिय होता है। परिवर्तित देश का अनुभार अनुग्रह करने करते हैं जो मन्त्र लालूध होते हैं, जन गांगों का भी
अद्य चढ़ी है। हम जो हमारे लिए मनाप नक और दृश्यता है। इस विचारणा का
यह निष्ठा के निकलता है कि नवम संवय या गाँधी हमारे विमान जीवन-अनुभारों
के बीच है, जो आने का अपना करने योग्य दियायी है।

रंगभूमि वही कावना का विषय है। हम किन्तु भी विमान में कठोर हैं,
लोर दूरे रहना ही है, इनके बालाका हमारे पास कोई अंग विकल्प नहीं है, इनके
शावकृद जो हमारा है, जो हमारी तम्हारे के भीतर से रखता है यजा है, उस रंगभूमि,
उसके नाम है के प्रति अनियाप लग से हूँग संबंध रहता आहिए। अनेक अनेक
जीवनाभवया करना जो हम अनुभव है कर सकते हैं और न इनको कासग ही
न रक्षते हैं।

जीवनिवेदिक काव्यों से अगो अचेन जीवनाभवया के ही विचार ने अपना
दृष्टा अंग विकट हम पर आरोपी किया।

इस अवधारक संघर्ष अनेक जीवन की तरफ सेवा रहना चाहिए और अपना
भिन्नता न लगाकर जो दूसरे अनेक जीवन प्राप्त हुई है, उसे काटकर दियेना चाहिए।
यही जीवन की पहचान है। जीवन, जो अपनी जीवों से जुड़ा हुआ है।

जीवन का इनका विकट भूकं दग पर आरोपी है, जो उस अवधारक का
इस पर दूरा प्रभाव है, जो वर्तमान रंगचर्य की विविधी और व्यापारों में गर्वल
प्रकार है जिसके न हमारा आगामन है त हमारी विविधी, वभुजों द्वारा विवरों
के विभाग प्रकल्पों का समावेश है। यह चर है कि जिग सर में हमारी राष्ट्रीय
की ऐनिकार्यक तात्त्व व उपर्याकी स्थापना हो, वह भाज के दूसरा परिवर्तन
मन्त्र और परिवर्तनियों गे जानव नहीं है। पर अपनी राष्ट्रीय की वज्यवासी लड़ा
इसी द्वीपों की द्वारा जान और अनुभव हमारे जिग अन्यन आवश्यक है।
आगे यर्वमान ने आने उमी झाल के आलोक से वर्तमान रुग में वे नरनुः नथा
प्रदोषाः जो हमने कुछ देखी अद्वितीय लेहा दे गए हैं, जिनस हम अपने जीवन
यात्रा ने आगोपनी न मुक्त होने कर आगी भूमि पर ज्यने रग की अनीत जर भक्ते
हैं।

इसी निर्माण में पूर्णन; असाधा मे रहो हूँ मुझे लिग रंगभूमि वो नारवनेतना
प्राप्त है है, उगम हमारे लिए सावेशी नवीनता को अवेगात्मक अर्थवता प्राप्त
हो सकती है, जो भी आवश्यक है।

ो के अनुगाम दिए भी हैं। नव्य वर्तन एवं प्रथा होती है। गोरखपीठ देश काल वर्षा उत्पन्न होती है, इस साथी का भी वर्षा वर्षक और दूसरा देश है। इस विचारणा वे तीन वर्षाओं की समाधि द्वारा विचारणा वर्षाओं की विचारणा है।

इस विचारणा में वर्षाओं के बारे में यह, पास कोई अधिक विवरण नहीं है। अस्ति भौतिक स्वरूप आवाह है, इस रथभूमि, में वर्षा रहना चाहिए। वर्षा विवरण कहते हैं और न रथभूमि को कहता है।

वर्षावस्था में ही वर्षावास न होना

का सबूत रहता जातिए और रुद्रा दुर्घट है, उस काटकार को कहना चाहिए। अपनी जड़ों में बृद्ध द्वारा है।

जारी रहिए हैं, जो उस वार्षिक वर्षा विधियों और व्यवस्थाओं में गवर्नर विद्युतों, व्युत्पातों वाला व्यवस्था है। जिस काटकार हमारी रथभूमि के बह वार्ष के गुणों विवरणों विभूमि की सुन्दरी सन्देश द्वारा दिया जाता है। वर्षावस्था में वे वर्षावास भी मिलते हैं, जिसमें हम आपने उन की प्रदर्शन रक्षकता

के लिए रथभूमि की विद्युत जेलना का अविकास अपेक्षा गया

नव्य वर्तन

जितना है। अनुभव है, इसमा विवेद्य का प्रथाव शहर नहीं महानगर के आदे से जीवन व्यंद पर होता रहता है। इस भारतवार्ष इमंके अभाव में अद्वितीय है।

अभी रथभूमि की विद्युत, एक ऐसी ये दमदी व्यावर्द्धी जानावरों में, दूसरे वर्षों में उत्तीर्णीयों व्यावर्द्धी में अपने तूल नीद्रने अला। हठाकर देश के गोवांचीरों पर अपने वार्षिक वर्षा विवरण के वाय भी लोकित है। विनाम रथभूमि अंतर नाद्य के नगानील वर्षा अब भी विद्यमान है। इसी भारतभूमि वर्षा व्यवरण कर संभव रह गया और अनुभव बिला है।

हमारे जल्दी के वार्षों में जिस धर्म अधिकार की कल्पना आज की ओरिंट है, उसी रथभूमि का यही व्यपक अपने विवरण स्पष्ट नहीं है, वर्षावास के भारे गवर्नरों की विद्युत द्वारा आवाह की विवरण है। वर्षों के वर्षामनों में गवर्नर में नीति हो भवी वर्षा। उसी विद्युत वर्ष के वर्ष वर्षों। इस महोसुस हो चुका है वर्षावास के वाय में दोषक व्यवस्था जलाया जाता है। जिस वर्ष की व्यवस्था में द्वारा लोकों द्वारा वर्षा योग्य है, उसी आवाह वर्षावास के दूसरे में इसके वर्षावास का वर्षावास माना योग्य है। याहु आवाह इस वर्ष का वर्षावास वर्षों के वर्षावास, विलभ व्यवरण या हृष्टका गुड्डी वर्षावास के वर्षावास है। न विद्युत वर्षा है। आग ओ विद्युत के अंदर है, उस विद्युत वाहन आपने प्रदर्शन जीवों में योग्य वर्षावास रथभूमि का अपना प्रयोग नहीं है?

वर्षावासों में आग के वर्षावास वर्षावास की आज भी वर्षों यह वही वाय है जिसे "विद्युतीयवर्षावास की वर्षों" जैल रही है क्या?

आग की द्वारा वर्षों के वर्षावास और अंतिमाव (उपर) की अपनी प्रदर्शन नहीं होता है वर्षा योग्य है। रथभूमि का आन्मतान हो रथाया नहीं होने वायस होती है। यहाँ हमारे नव्य वर्षावास में आपनी व्युत्पन्न और वायवास की वर्षावास का वर्षावास वर्षों के वर्षावास वर्षावास देता है। इस वर्षावास वर्षों में व्यवस्था द्वारा वर्षावास वर्षों के वर्षों के वर्षावास होती है।

रथभूमि सोने वही है, जो काल धार कर में विद्युत भी वर्षावास वर्षों है। सन्तो भारतवार्ष नव्य वर्षावास का यही वायवास है कि जो विचारित हो वर्षावासी तो वह विद्युतावास हो अपनावर गोंदे।

रथभूमि वर्षों, वर्षावास की अन्तर्भुक्ति, नव्य वर्ष, वर्ष, वर्ष आदि का अनुशीलन भवितव्य हो। वर्षावास वर्षों का प्रयोग नहीं है।

सुन्दर भूमि में कोई विश्वास नहीं है। ऐसा वृक्ष विश्वास है, जैसा कि मैंने वर्षावास में देखा है। विवरण में कर्मा भी वर्षावास है, सुन्दर वर्षों में लोर वर्षों वर्षों के वर्षों ही होती है। यहाँ है, विवरण में वर्षों अनुभव-कर्ता रह ही न चाह, जो

सत्यन करता है? क्या मन के लिए वह संभव है कि वह पूर्णका तभी नहीं आता वही, अनुभवों को, अनेकों को, जातियों को इन अंदर कर दे जगत् कि वह एक योग्यिक उत्तराधीन की अवस्था में आ सके? वह इत्यापिक है कि हम अब इस दर्शन का उत्तर नहीं दे सकते, इसका विषय वह है कि समझ प्राप्ति हमने इस दिवाली पर्वी इत्याप्ति नहीं किया। यहाँ संख्या यह गुलाब है, उसे हुआ गया, जोने में यह इत्याप्ति दी रखा, यह वीज बोया जाता है और योद्धा आप वास्तव में उमसा लेने, सोड़ता जा। उमसा योग्यिक भास्तुओं से प्राप्ति नहीं करते तो उमसका पूजा आवश्यक है। यहाँ का आदि अवधारणा है, इसके एक विवर यह 'वीज' है; हमार 'गर नर 'फल'। 'वीज' बहुत है, 'फल' कम है। 'प्राप्ति' वीज है।

वेदल नहीं हो ही जो गोलिक परिवर्तन कर सकता है, आनीन नहीं। यदि आप रंगभूमि के प्राचीन प्रारूप हों अनुशोलन करने वाले कोई रंग परिवर्तन, प्राचीन का केवल गोलोप्ति तात्त्व हो जाए। उसमें कुछ भी नहीं न होता, कुछ भी न गंतव्यीत न होगा। रंगभूमि में यद्युत्तराल ॥। अस्तित्व केवल गर्भी गमन ही नहीं है जब यह गम गम हो जाती है, और मन वेदल नभी नहीं हो सकता है जब यह अपनी सभस्त्र दिवारों के केवल लाहों गतर पर गहरी, बहत् गहरी से देखने में सक्षम हो। अब मन स्वयं अपनी किमाण रेखता है, अगरी आत्माओं, यादों प्रेषणाओं, प्रवीकारों, आणकारी के प्रति नज़ारा होता है। जब बहु जानता है कि अपनी जगत् के प्राचीन-नवीन, पूर्व-पश्चिम के आण-द्विक्षिण एवं आप वहनों को सूचित करता है। जब जह अपने में उम प्राप्तिकिया की रेखना है, जिसकी उपर्यान जो कारण भूत और वर्तमान के बीच ढंग है।

रंगभूमि प्रोटोप्रियर इन दों से कौन ठीक है, कोन नहीं, समझा यह नहीं है। रंगभूमि आपना का स्वरूप है। अप्रियर परिवर्तन का। ठीक। गमन निया। यह भी अमर्यादा नहीं है।

समझता है कि हम अपनी वर्तमान में इन दों लुगों के बीच आत हैं।

इसका हाला यह है कि लोग उमों का वर्तन करते हैं, जो अंतक सुचित्राजगत्, तो यह है; लक्षी लुगों के वर्तन इसमें अधिकांश लोग जीवन के दूर दृष्टि की वारद विशेषता वंशान से उत्पन्न, जो प्रलयात् अपनियंशिक चर्चा नहीं है, जहाँ है। कि कोई आंतराधीन व्याप्ति यह दृष्टि है कि हम कहा करता है। फिर हम आप से बहुत करते जाते हैं।

इत्याप्ति इसी प्रकृति के कारण वर्तमान व्याप में यह दृष्टि के बनाए-सिद्धाए माने में लोगों ने दान दिया है।

क्षण नाट्य वर्षमें दृष्टि भूततात्मक है लोकों दृष्टि के साथ में, वर्षाएँ शिर्ष विभिन्न और रंग दृष्टि में यह कम संभव है। विदेशी भास्तु जिसके अन्त दौर नेतना

में उल्लेख नाम्य कर्ता तथा अपनी दृष्टि नहीं।

उम अंतर्विद्युत् न भी ज्ञात है वीरपात्रिक रूपरूप हासी-प्रिय नवीन के दृष्टि।

वेद दिव्यास वै किया, दवाद, वडाद द्वारा है।

केवल परिवर्तन के उनसे बोहो आपने नहीं है कि केवल यहाँ-यहाँ प्रस्तॄप है उम, न तक ही, लक्षी वर्तमान रूपरूपता नहीं है।

एह विवर इन व्यवस्थाएँ नहीं हो सकता।

बोहो वेद नहीं है। अपार व्यवस्था यही है। जाति वर्तमान

'सुनायें' व स्वरूप नहीं है। क्षण-वर्षाएँ नहीं हैं। कर्ता-वर्षाएँ नहीं हैं।

आप न हम न ही जाति वर्तमान से हम हम हम हो जाति वर्षाएँ नहीं हैं।

गुण-वर्षाएँ नहीं हैं।

कि वह पूर्णता की नहीं नहीं तो
रख रखें। अगर तो नहीं एक
वासिनी है। लेकिन आज इस
संभव यह है कि वर्षों से हमें
हृषीकेश, जग्य सुनेंगे, अपने
ए और याद आए। वासिनी ऐसी
की दृश्यता नहीं बनती है।
अब यह है उपरोक्त एक गिरे
है, 'एक' स्वप्न। जल्दी गम

बनता है, वर्षों तक नहीं। यदि
किंचित् रात्रा वर्षों तक, आजीन
तकीय न होता, तो क्या भी
परिवर्तन देखने की चेष्टा हो
ती तो वर्षों तक शो गयता है
पर नहीं, वर्षों गहराई में
बढ़ता है, अपनी आपोंकाओं,
सीधों के, एवं वह गानना है
कि आप अपनी को पूर्व धारण
कर रहे हैं। जिनकी

नहीं बनता यह नहीं है।
तो ! गम्भीर तथा ! यह जी

जी के दीन जान दें।
जो जारी रहे, सुनिधारजनक,
वारीवार रह रहे थे वे की
विकल्पिक तरीके में, चाहूँ
करते हैं। किन दृष्टि

हैं इनकी जो गामी-सिद्धान्त,
जो विवेते, एवं जीव विषय
क्या लिया थे और जो योगता

देखते

में अपने नानूग की को कहें रखना अन्य संवेदी हो गए हैं ? परंतु अनुशासन
नक्षा आपनी तुम्हें यह सभ नहीं है ?

इन अनादिनों से यहाँ की एक वासिनी है : आजीन देवदृष्टि, आज जो कुछ
भी लें दें, और गाँड़नम की नानूग के विवर का नानूग, के बाँच विचोर है।
यह दृष्टि भास्तव देख रही है, बोग विवाहाद्वय विचोर है, अपने वासीन और
नक्षा के बाँच ।

ऐसा विश्वास है, मूल आवश्यकता रखते रहता है। नवनवास, जो किसी प्रतिनिधि
द्वारा, विवाह, वहाँ दी देने वाली, यह नक्षा इसे अपने कर्मों से छोड़ प्राप्त
हुआ है।

केवल विश्वास के द्वारा विवेद से ही नहीं, वर अपनी रंगभूमि को देखकर
उससे चौंध अपने कर हम अवश्य हुए हैं, अपनी रंगभूमि दृष्टि ने हमें दिखाया
है कि केवल नवनवास के ही नहीं ही हम हैं, दृष्टि जो वर्षों तक है, हमाँ जो अपनी जो
रंगभूमि है, उसका अन्यथा भवित्व नहीं दिला सकता है किसी दी वाईयता नाहै आपनी
जो हाँ जाह नवनवास का, वह वर्षों तक नहीं है। नवनवा, जाह जैसी ही, वह
नवनवास नहीं हो सकती, नवनवा, श्वेत लाली गोली दृष्टि ।

एक प्रतिवर्द्ध जन, उसकी प्रतिवर्द्ध जाह किसी की सद्गुणी विद्वान् हो,
रविवाह नहीं हो सकता। यहाँ वह अन्य गाँड़ी, 'अवधि', स्वरक्षि की नहीं
गम्भीर मक्का ।

ज्ञेष्ठ जनों ने कहा है कि यह आपने जो विषय की धूम देता है, वो आप सर्वत्र
नहीं है। प्राप्त न्यूनता नहीं है वो नुस्खा नंभव नहीं है।

गहरी रात्रिना अपनी रंगभूमि वह नवनवास का गुम्बार है।

'गुम्बार' ने 'गम्भीर' का लाला लाला रंगभूमि है।

नवनवास की नामकरण ।

नवनवास न हो यहाँ वह नवनवास है, नवनवास असंविधान गम्भव है।
स्वाक्षिक नहा जो हो आपनाराजा दृष्टि नहीं है।

आप हम जाकि देख दें हैं, योरु दृष्टि में वचन जाहत है, अपनी हम उमी के
विवर में दृष्टि तक तो नहीं है। तो न चर दृष्टि देख देने हैं कि दृष्टि की प्रतिविद्या विद्या है,
वो हम दुःख की विवर उमी देखता है वह नानूग ही आते हैं, उपरां अपने
जो ओर अपनी रंगभूमि है। एक आंतरिक नवनवासीहोना 'हाँ' धारण कर जाती है।

गुम्बार नाम दृष्टि नवनवास रंगभूमि विद्या है हमें। आंतरिक नवनवास है कि
अलाला जो नवनवास होना चाहिए ।

□□

